काग़ज़ की है नन्हीं नैया नहीं डाँड़ पतवार।
जिसमें साहस हो आजाये चले समुन्दर-पार॥
बड़े ज़ोर की घटा उठी है शोर करे पुरवैया।
पर दोनों से टक्कर लेगी काग़ज़ की यह नैया॥

सम्पादक—श्रीनाथसिंह

वर्ष २१] [जुलाई १९३७—आषाढ़ १९९४ [संख्या ७

गीत

द्वार पर आये तुम्हारे।
शक्ति दो ऐसी, लगा दें, देश की नौका किनारे॥
छल-रहित हो मन हमारा,
बल-सहित हो तन हमारा,
गुण ग्रहण कर्त्ता बनें हम, दूर दुर्गुण हों हमारे॥
शूल को हम फूल समझें,
धन पराया धूल समझें,
ध्येय पर हो ध्यान, हम हों दीन-दुखियों के सहारे॥
स्वार्थी संसार सारा,
भारतीय विचार न्यारा,
उच्चतम आदर्श से विचलित न हों हम बाल प्यारे॥

—'अनन्य'

घड़ियाल और चीते की लड़ाई

सच्चा घड़ियाल

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०
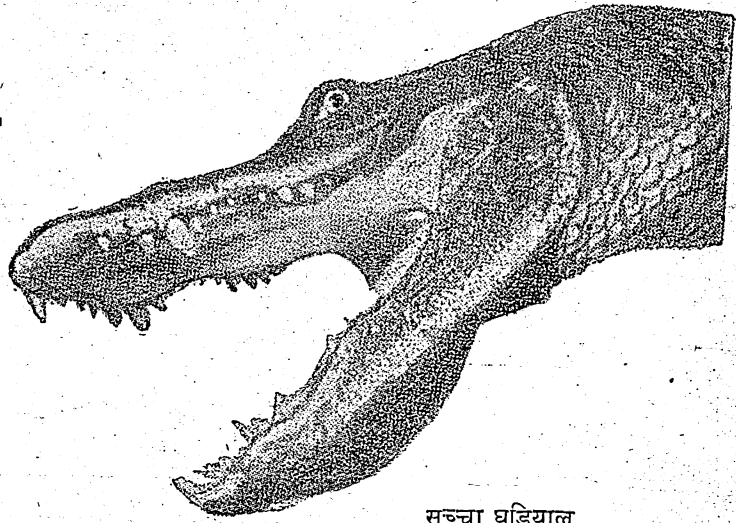
मेजर होवर्ड एस० रीड हाँडूरास में थे। एक दिन वे नाव में एक भगोड़े को लिये जा रहे थे। भगोड़े के हाथ-पैर बँधे हुए थे। जब नाव उस जहाज़ के निकट पहुँची जिसमें भगोड़े को अमेरिका के संयुक्त-राज्यों को ले जाना था, तो मेजर साहब ने भगोड़े की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ खोल दीं। भगोड़े ने मेजर के मुँह की ओर देखा और अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए एकदम नदी में छलाँग मार दी। वह समझता था कि मैं तैर कर किनारे पर जा पहुँचूँगा, परन्तु वह नदी घड़ियालों से भरी पड़ी थी। उसके नदी में गिरते ही पानी में एक भँवर-सा पैदा हुआ, मज़बूत पूँछों की मार से झाग उठी और मनुष्य के रक्त से पल के पल में पानी लाल हो गया। इसके साथ ही उस अभागे भगोड़े की आत्मकथा समाप्त हो गई।

हाँडूरास की नदियों में मगर और घड़ियाल बहुत होते हैं। वे पानी से निकल कर जङ्गल में आ जाते हैं और मनुष्य या पशु जो भी उनके हाथ आ जाय उसे घसीट कर पानी में ले जाते हैं। इसलिए वहाँ के निवासी, चाहे घर से दस क़दम भी बाहर जाना हो, हाथ में तीस इंच का छुरा लेकर चलते हैं।

मध्य अमेरिका के प्रजातंत्र राज्यों में सब कहीं प्रतिवर्ष एक उत्सव मनाया जाता है। वह पाँच दिन रहता है। इसमें वहाँ के निवासी अपने लम्बे छुरे लेकर मनुष्य-भक्षी घड़ियालों के साथ लड़ते हैं। लोग दूर दूर से आते हैं और नदी के किनारों पर खड़े होकर तमाशा देखते हैं।

घड़ियाल की पीठ पर सींग की-कड़ी चादरें होती हैं। उनको छुरी से चीरना बड़ा मुश्किल होता है। यहाँ तक कि चीते और बाघ के मज़बूत दाँत भी इन चादरों में नहीं घुस पाते।

उत्सव के दिन मेजर रीड एक हलकी-सी नाव पर बैठ कर नदी में गये। हलकी नाव में यह आराम रहता है कि जब घड़ियाल अपनी
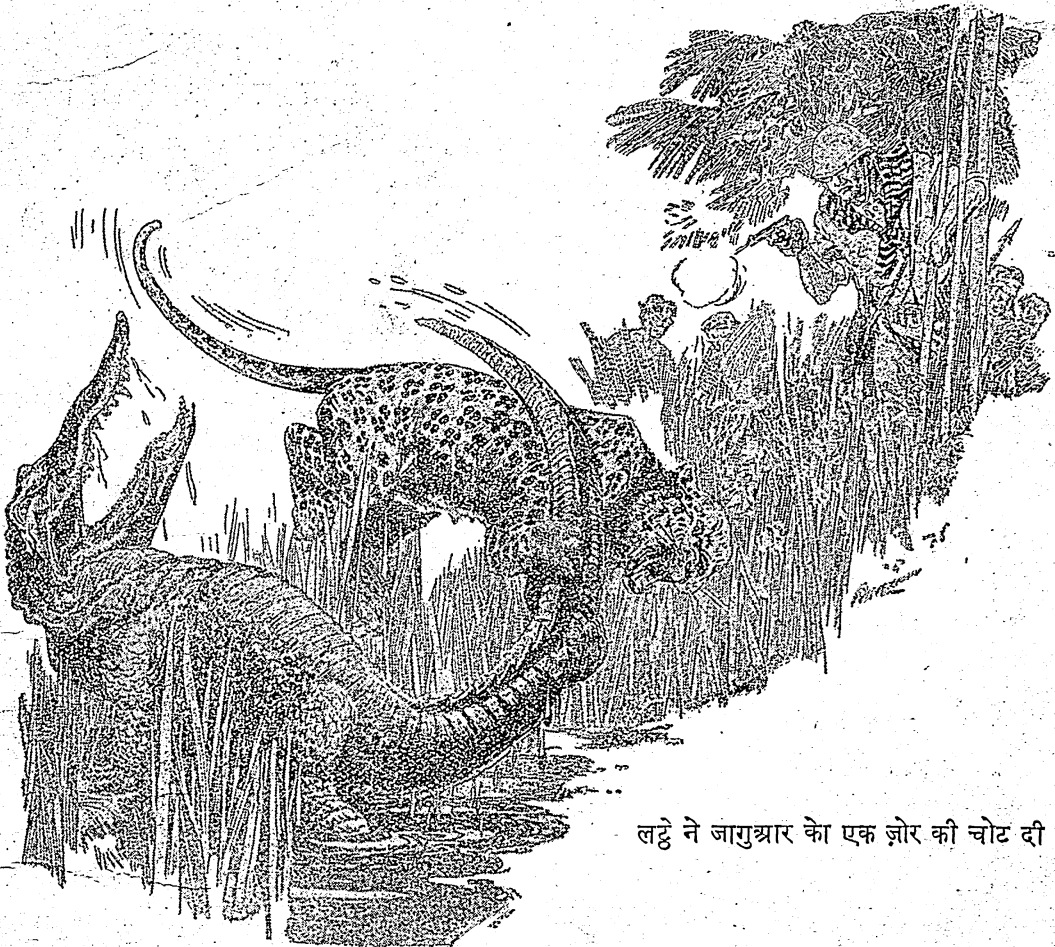
लट्ठे ने जागुआर को एक ज़ोर की चोट दी

पूँछ मारने लगता है तो नाव को जल्दी से इधर-उधर हटा कर बचाया जा सकता है। यदि उसकी पूँछ नाव में लग जाय तो उसकी चोट से नाव एकदम उलट जाती है।

नदी के इस भाग में पानी उथला था। इसलिए घड़ियाल दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता था। एक बड़ा घड़ियाल दिखाई पड़ा। मेजर रीड नाव को खेकर तुरन्त उसके पीछे दौड़े। यह देख नदी के किनारे खड़े दर्शकों ने ख़ुशी से शोर मचाना शुरू कर दिया।

मेजर रीड और उनके दो साथियों ने नाव लेकर घड़ियाल के गिर्द घेरा डाल लिया। वे उसके मुँह की ओर ही घूमते थे, क्योंकि पीछे होने से पूँछ की मार का डर था। ज्यों ही नाव घड़ियाल के निकट पहुँची मेजर और उनके एक साथी ने एक ओर झुक कर अपने तेज़ छुरों से उस पर गहरे घाव लगा दिये। इतने में उनका दूसरा साथी जल्दी में नाव को खेकर घड़ियाल से परे ले गया।

घड़ियाल ने भाग कर बचने का यत्न

किया। परन्तु इतने में मेजर साहब ने दूसरी ओर से नाव लाकर उस पर दुबारा धावा बोल दिया। जब जब भी उस भयङ्कर जीव पर घाव लगता था वह बड़े क्रोध के साथ अपनी पूँछ को पानी पर मारता था, जिससे नदी झाग से भर जाती थी। इस दृश्य को देख लोग ख़ूब प्रसन्न हो रहे थे। इतने में मेजर ने एकाएक अपने को सिर के बल उलट कर पानी में गिरा पाया। वहाँ उनका दम घुटने लगा। दो मनुष्यों ने बड़ी मुश्किल से उन्हें खींच कर नाव पर रक्खा। यह देख किनारे पर खड़े दर्शकों ने चिल्लाना शुरू कर दिया।

मेजर रीड और उनके साथियों ने कुछ मिनट आराम किया। उनके शिकार को भी आराम करने का मौक़ा मिल गया। इसके बाद उन्होंने दुबारा उस पर धावा बोला और उसे घसीट कर पानी से बाहर ले आये। बाहर रेत पर लाकर उन्होंने उसको समाप्त कर दिया।

यह एक बहुत बड़ी मादा-घड़ियाल थी। इसका पेट चीरा गया तो उसमें से कोई एक मन सफ़ेद अंडे निकले। वे बत्तख़ के अंडों से बड़े थे। वहाँ के निवासी उन्हें भून कर खा गये।

मेजर साहब ने कुछ सुअर पाल रक्खे थे। केमेलिकन नदी के किनारे किनारे घास उगी हुई थी। वहाँ सुअर पानी पीने जाया करते थे और चीते उनको खा जाते थे। मेजर ने बहुत-से चीतों को मार कर जङ्गल को उनसे ख़ाली कर दिया, परन्तु फिर भी सुअरों का ग़ायब होना बन्द न हुआ। उन्होंने समझ लिया कि कोई दूसरा शत्रु भी उन्हें खा जाता है।

एक दिन वे घड़ियालों को देख रहे थे। उन्होंने मुड़ कर देखा तो एक सुन्दर चितकबरे चीते को आराम से पानी पीते पाया। उसके निकट ही नदी के किनारे के साथ एक लकड़ी का लट्ठा-सा पड़ा देख पड़ा। वह लगभग पानी के भीतर डूबा हुआ था। यह एक घड़ियाल था।

मेजर साहब अभी अपनी बन्दूक़ को ठीक तरह पकड़ भी न पाये थे कि उस लट्ठे ने तेज़ी से दौड़कर इतने ज़ोर से चीते पर अपनी पूँछ की चोट की कि वह अचेत होकर पानी में गिर पड़ा। तब दोनों की लड़ाई शुरू हुई। घड़ियाल ने अपना लम्बा मुँह खोला और अपने दमकते हुए दाँतों की पंक्तियों में चीते को पकड़ लिया।

चीता चीख़ें मार रहा था और अपने तेज़ पंजों से घड़ियाल की पीठ पर की सींग की चादरों को चीरने का यत्न करता था। परन्तु उससे कुछ भी बन न पड़ा। घड़ियाल चीख़ते-चिल्लाते और छूटने का यत्न करते हुए चीते को लेकर गँदले पानी के नीचे चला गया।

घड़ियाल की मगरमच्छ से एक पहचान है। घड़ियाल की थूथनी तंग होती है और सामने के दाँत साफ़ दिखाई देते हैं। इसके विपरीत मगरमच्छ की थूथनी चौड़ी होती है। घड़ियाल

का मिज़ाज बड़ा ख़राब होता है। इसकी आवाज़ भी अनोखी होती है। नर-मगर बड़े ज़ोर से डकारता है। इसका डकारना मीलों तक सुनाई देता है। इस समय इसके गालों में से कस्तूरी की गंधवाला मद टपकता है। मादा की आवाज़ में थरथराहट पाई जाती है। इसकी खाल के लिए इसका शिकार किया जाता है।

शिकार का हाल लिखना बड़ा आसान है। परन्तु प्राणों को जोखिम में डालकर ऐसे भयङ्कर जीवों से लड़ना बड़ा मुश्किल है।

पंडित जी की मूँछ

लेखक, श्रीयुत हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

भली है पंडित जी की मूँछ।
नहीं है बिल्ली की यह पूँछ॥

नीचे होठों से लड़ती है।
ऊपर नाकों में गड़ती है॥
कुछ खाते हैं तो अड़ती है।
झाड-सी मुख पर पड़ती है॥
यही है पंडित जी की मूँछ।
नहीं है बिल्ली की यह पूँछ॥

है दोनों ओर बढ़ी कैसी।
बरछी की नोक बनी जैसी॥
अँगूठी बनी हुई ऐसी।
कुत्ते की पूँछ मुड़ी जैसी॥
अजी! है पंडित जी की मूँछ।
नहीं है बिल्ली की यह पूँछ॥

रोज़ाना तेल लगाते हैं।
हाथों से उसे सजाते हैं॥
जब दफ़र में डट जाते हैं।
तब ऐंठ ऐंठ सुख पाते हैं॥
अनूठी पंडित जी की मूँछ।
नहीं है बिल्ली की यह पूँछ॥

लड़कों को ख़ूब डराते हैं।
गालों पर उसे गड़ाते हैं॥
मोछन्दर यदि मिल जाते हैं।
तब उनसे तुरत लड़ाते हैं॥
लखो जी पंडित जी की मूँछ।
नहीं है बिल्ली की यह पूँछ॥

मरदों की शान समझते हैं।
ख़ुद वीर बहादुर बनते हैं॥
जब तोंद फुलाकर चलते हैं।
तब हा हा हा हा हँसते हैं॥
लुभावन पंडित जी की मूँछ।
नहीं है बिल्ली की यह पूँछ॥

काबुली और पंजाबी भाषा

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, करसियांग

क्या आप काबुली और पंजाबी भाषा सीखना चाहते हैं? यदि हाँ तो यह लेख पढ़िए। इसके पढ़ते ही आप दोनों भाषायें बोलने लगेंगे।

उस दिन जालन्धर-शहर की गलियों में घूम रहा था। पहाड़ का जंगली जीव जा पहुँचा पंजाब के जालन्धर में। दोपहर का समय था, एक खोमचेवाला दाल पीस रहा था, उसकी दूकान पर, दही बड़े, आलू की चाट, गोल गप्पे वगैरह वगैरह सजे सजाये रखे थे। गोल गप्पों का नाम ही सुन कर मैं दंग रह गया, और उन्हें पेट के हवाले करने की बात सोच रहा था कि इतने में एक हट्टा कट्टा पठान भी वहाँ आ खड़ा हुआ। बेचारा था भूखा। दूकान की चीज़ें देखकर मेरी तरह उसके भी मुँह में पानी आ गया, मगर काबुल की तरफ़ से यह पठान एक-दम पहले पहल ही यहाँ आया था। पठानी भाषा को छोड़ कर, हिन्दुस्तानी आदि क़तई नहीं जानता था। फिर उसने कैसे अपना काम चलाया, यह सुन लीजिए।

खोमचेवाले से, जो सिल पर पीठी पीस रहा था, पठान ने पूछा, "ईं चीश्त? (यह क्या है) इधर खोमचेवाले साहब दिल्ली की तरफ़ के थे, और पठानों की भाषा से बिलकुल नावाक़िफ़! सोचने लगा—क्या जवाब दूँ? सिर खुजलाकर झट बोल पड़ा, "बैठ कर सिल पर पीठी पीश्त" हमारे पठान साहब के लिए हिन्दुस्तानी एक बला ही थी—सो बिना समझे फिर पूछ बैठा, "चे में गोई?" (क्या कह रहे हो) खोमचेवाले ने बचपन में शायद तुकबन्दियाँ करनी सीखी थीं—उसी-दम जवाब दिया, "घी में पोई"। (यानी घी में बड़े बने हैं) पठान ने उसकी बोली बिना समझे फिर सवाल किया कि, "बाज विगो" (यानी, फिर कहो)

उधर खोमचेवाला भी तैयार था, फ़ौरन हाथ उठाकर उँगलियों से उसे समझाया कि, "डबल की दो"। (यानी एक पैसे में दो बड़े दूँगा)

पिछला जवाब, पठान के दिमाग़ में अच्छी तरह घुस गया और उसने चार पैसे के ८ दही बड़े ख़रीद कर अपने पेटराम की ज्वाला शान्त की। इस तरीक़े से घोड़े की टाँगें गधे में जोड़ कर दोनों ने अपना अपना काम निकाला, और मुझे इस घटना से एक नया सबक़ मिला।

संक्षेप में—ईं चीश्त, बैठ कर सिल पर पीठी पीश्त।

चें में गोई, घी में पोई

बाज़ विगो, डबल की दो।

शहर ख़त्म करके पूरे ४ मील का रास्ता तय कर जालन्धर कैन्ट आया। उस दिन वहाँ कोई मेला लगा था। मैं किसी उचक्के की नाईं इधर-उधर फिर रहा था। देखा, एक पनवाड़ी की दूकान पर दो पंजाबी सज्जन पान ख़रीद रहे हैं, वे आपस में पंजाबी-गुरुमुखी

बोली में धूएँ की रेल उड़ाये जा रहे थे। मैं भी अलग एक खुफ़िये की तरह उनकी बोली आँख बचा कर अपने कानों में उँडेल रहा था। बातों बातों में मेले का ज़िक्र छिड़ा। एक साथी ने दूसरे से कहा कि, "सरदाराँ! मेला-मेली-दा, पावला-धेली-दा"। टूटी-फूटी पंजाबी समझने में मैं भी ज़रा क़दम रखता था, पर इस मेला-मेली को सुन तो मेरी पंजाबी अक़्ल का दिवाला ही निकल गया। मैंने सोचा अगर किसी से इसका अर्थ पूछूँ तो बड़ी भद्द उड़ेगी। और इसे हल किये बग़ैर कल नहीं पड़ती थी। आखिर सफलता खुद आगे आ खड़ी हुई। सुन लीजिए, इस 'मेला-मेली' के मानी ज़रा आप भी।

उस दिन मेला था बड़ा। उस भले आदमी को मेला देखने की प्रबल इच्छा हुई, और उसने अपनी जेबें टटोलीं तो खाली पड़ी थीं। उदास होकर बोल रहा था कि भाई, "मेला-मेली-दा, पावला-धेली-दा" यानी मेले-ठेले में जाना हो तो मेली यानी साथ में मित्र ज़रूर हो और जेब में—पावला-धेली—चार आठ आने पैसे भी हों।

सो मेरे बाल-सखाओ, अब से आप भी यही प्रतिज्ञा कर लें कि मेले-ठेले में अकेले नहीं जायँगे और साथ में कुछ पैसे रखकर ही जायँगे अन्यथा किसी नई चीज़ पर मन चला गया और उसे ले न सके। व्यर्थ का अफ़सोस ही पल्ले गिरा।

गेंद

लेखक, श्रीयुत पूरनचन्द्र कुकरेती, कक्षा ४

(१)

मेरी कैसी प्यारी गेंद।
मेरी कैसी न्यारी गेंद॥
उछालने से ऊँची जाती।
मेरे मन को है हरषाती॥

(२)

देखा छोटी बहनों ने जब।
दौड़ीं जल्दी लेने को तब॥
दोनों ने जब उसको पकड़ा।
शुरू हुआ आपस में झगड़ा॥

(३)

गेंद हाथ से लुढ़क पड़ा।
कीचड़ में वह गिर पड़ा॥
छोटी बहिन थी नादान।
उसने समझा इसे पकवान॥

(४)

खाने को ज्यों मुँह में डाला।
त्यों ही मुँह सब होगया काला॥
माँ भी थी तब वहीं खड़ी।
देख उसे वह हँस पड़ी॥

विचित्र चिड़िया

लेखिका, कुमारी कमलमणि हाल्दार

बहुत दिनों की बात है, जापान देश के एक नगर में एक बुड्ढा और उसकी बुढ़िया रहते थे। उन्होंने एक चिड़िया पाल रखी थी, जिसको वे बहुत प्यार किया करते थे। प्यारे बालको! हमारे देश की भाँति जापान देश में चिड़ियों को पिंजड़े में क़ैद नहीं रक्खा जाता है। प्रतिदिन वह चिड़िया उनके घर पर दाने चुगने आती और प्रसन्नता से इधर-उधर उड़ती फिरती। कभी कभी वह उस बुड्ढे के कंधों पर बैठ जाती और सुन्दर राग अलापने लगती। एक दिन बुढ़िया अपने बग़ीचे में फूल चुन रही थी। उसकी एक बुरे स्वभाववाली पड़ोसिन ने चिल्लाकर कहा, "सुनती हो, अब तुम अपनी प्यारी चिड़िया को कभी न देख पाओगी। वह मेरे चावल के दाने चुगने आई थी। मैंने उसकी चोंच काट डाली है।" वह दुष्ट स्त्री इतना कहकर ज़ोर से हँसने लगी।

यह समाचार सुनकर बुड्ढे, बुड्ढी दोनों बहुत दुखी हुए। उनको इस बात की चिंता हुई कि बेचारी चिड़िया भूख से तड़प तड़प कर मर जायगी। वे दोनों उस चिड़िया को इतना प्यार करते थे कि अब उसे देखे बिना उन्हें एक घड़ी भी चैन नहीं पड़ा। वे पूरे जंगल में चिड़िया को खोजते रहे। बहुत देर के बाद वे जंगल के एक ऐसे भाग में पहुँचे जहाँ रंग-बिरंगे सुन्दर सुन्दर फूल खिले थे। रंग-बिरंगी सुन्दर तितलियाँ उन पर मँडरा रही थीं। वहाँ उन्होंने एक अति सुन्दर छोटा-सा मकान देखा जो केवल एक फ़ुट ऊँचा था।

वहाँ पहुँचते ही मकान का द्वार स्वयं खुल गया। भीतर से उनकी वही प्यारी चिड़िया अपने छोटे-छोटे बच्चों-सहित निकली। चिड़िया मधुर आवाज़ में चहचहाने लगी मानों किसी का स्वागत कर रही हो। उस चहचहाने में बुड्ढे को यह शब्द सुनाई पड़े, "मेरे दयालु मालिक! आपको अपने घर पर देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आज आप मेरे मेहमान हैं। आपने सदैव मुझे प्यार किया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ।" इतना कहकर चिड़िया घर में से गुड़ियों की-सी छोटी-छोटी चटाई, प्याली और थालियाँ निकाल लाई। बुढ़िया ने जैसे ही उनको अपने हाथों से छुआ वे सब बड़े बड़े हो गये।

उस जंगल की हरियाली में सबने बैठकर एक साथ भोजन किया। चिड़िया के छोटे छोटे बच्चों ने नाच और गाकर अपने मेहमानों का मनोरंजन किया। जब उन्होंने लौटने के लिए उस चिड़िया से बिदा माँगी तो उसने नम्रता से कहा, कृपया थोड़ी देर और ठहरिए। फिर वह घर के भीतर गई और दो पिटारियों को लाकर उनके सामने रख दिया और कहा "इनमें एक भारी है, दूसरी हलकी" आप कौन-सी लीजिएगा। बुड्ढा दुर्बलता के कारण भारी पिटारी नहीं उठा सकता था इसलिए उसने

छोटी पिटारी ही को चुना। इसके बाद दोनों अपनी प्यारी चिड़िया से बिदा हुए। घर पहुँचते पहुँचते टोकरी बढ़कर बड़ी हो गई। जब वह खोली गई तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह सुन्दर सुन्दर वस्त्रों, अशर्फ़ियों, हीरे और जवाहिरातों से भरी थी। उनके मुरझाये हुए चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे। अब उनके दुःख और ग़रीबी के दिन समाप्त हो गये।

पड़ोस की उस दुष्ट स्वभाववाली स्त्री ने जब उनको प्रसन्नता से चिल्लाते हुए सुना तो दौड़कर वहाँ आई और उनके ख़ुशी का कारण पूछा। बुढ़िया ने जंगल का सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर वह भी दौड़ी दौड़ी जंगल की चिड़िया से बहुमूल्य जवाहिरात की पिटारी लेने गई। वहाँ जाकर दरवाज़ा खटखटाया। चिड़िया क्रोध से भरी हुई घर के बाहर निकली और उससे वहाँ आने का कारण पूछा। स्त्री ने कहा—"मैं आपसे क्षमा माँगने आई हूँ। मुझे बहुत दुख है, आपकी चोंच काटकर मैंने आपको कष्ट पहुँचाया। सभी से कभी कभी भूल हो जाती है। आशा है आप मुझे क्षमा करेंगी और कृपा करके जवाहिरात की एक पिटारी मुझे भी प्रदान करेंगी।" चिड़िया चहचहाती हुई घर के भीतर गई और दो पिटारियाँ लाकर स्त्री के सामने रख दीं। लालची स्त्री ने भारी-वाली पिटारी लेना पसन्द किया। ख़ुशी से उसको लेकर घर आई। रास्ते में वह पिटारी और भी भारी हो गई। बोझ के मारे उसके हाथ और कमर दुखने लगी किन्तु बहुमूल्य जवाहिरात पाने की आशा से उसको सिर पर लादे घर पहुँची। थके हुए हाथों से जब उसने पिटारी का ढक्कन खोला, भीतर से दो भयानक चुड़ैल कूद कर बाहर आईं और उस स्त्री को मज़बूती से पकड़ लिया। फिर उसे वे उस स्थान पर ले गईं जहाँ जीव-जन्तुओं और पक्षियों को कष्ट पहुँचानेवाले पापियों को सज़ा दी जाती थी।

अभिलाषा

लेखिका, कुमारी सौन्दर्यलता साँडल

मेरे मन है आज समाया,
मैं भी कवि बन जाऊँ।
पूजा शुरू अदृश्य की करूँ,
भूल दृश्य को जाऊँ।
नेत्रों से सरितायें उमड़ें,
नभ के कोने नापूँ।

टूटी वीणा की तारों में,
अद्भुत राग अलापूँ।
चारु चन्द्र को कहूँ कलंकी,
प्रेम-जलधि में डूबूँ।
संध्या को नववधू बतलाऊँ,
लिखते कभी न ऊबूँ।

जर्मनी की बानर-सेना के शेर बच्चे जिनका हिटलर को बड़ा गर्व है

जर्मन-बानर-सेना का एक शेर बच्चा जिसमें हिटलर अपने बचपन को जीवित देखता है

हिटलर का बचपन

लेखक, श्री बालेन्द्र भट्ट

हिटलर का जन्म तारीख़ २० अप्रैल, १८८९ ई० को बवेरिया के ब्रौनो नामक स्थान में हुआ था। हिटलर के माता-पिता कोई राजा, रईस या अमीर घराने के नहीं थे। उस समय उन्होंने यह आशा भी न की होगी कि बालक हिटलर एक बड़े भारी साम्राज्य का सर्वेसर्वा बन जायगा।

हिटलर की माता एक ग़रीब किसान की लड़की थी। उसे चित्रकारी से बहुत शौक़ था और इसी लिए वह चाहती थी कि हिटलर भी एक प्रसिद्ध चित्रकार बने। उसने हिटलर को और चीज़ों के साथ चित्रकारी भी बचपन में ही सिखा दी थी। पर उसकी वह लालसा पूरी न हो सकी।

हिटलर के पिता ने अपनी योग्यता से एक सरकारी पद प्राप्त कर लिया था। वे चाहते थे कि वह भी एक सरकारी अफ़सर बने। हिटलर को अफ़सरी पसंद नहीं थी। किसी के अधीन रह कर काम करना उसे भाता ही न था। अपना जीवन काग़ज़ काले करके और क़लम घिस करके वह बरबाद नहीं करना चाहता था। पिता की भी इच्छा को वह पूरा न कर सका। पर आज पिता की कल्पना के परे न जाने कितने अफ़सर उसके पुत्र के अधीन कार्य कर रहे हैं।

जब हिटलर पढ़ने योग्य हो गया तब उसे उसके पिता ने गाँव के एक स्कूल में पढ़ने के लिए बैठा दिया। उस स्कूल में बालकों की एक सभा थी। बालक इसमें आपस में बहस करते और भाषण देते थे। हिटलर को भाषण देने में बचपन से ही रुचि है। यहीं से उसने भाषण देना शुरू किया और आज तो वह अकसर ही लाखों की सभा में भाषण दिया करता है। भाषण देने की इस शक्ति ने भी हिटलर को इतना बड़ा आदमी बनने में मदद पहुँचाई है। आज वह संसार का सबसे प्रभावशाली वक्ता कहा जाता है।

स्कूल में हिटलर सबसे तेज़ था और सदा ही सर्वप्रथम आया करता था। बालक उसे अपना 'नेता' मानते थे। उसमें शासन करने की योग्यता बचपन में ही काफ़ी थी। यही कारण है कि वह जर्मनी जैसे विशाल देश पर अकेले शासन कर रहा है। उसने आज अपने को एक सफल नेता सिद्ध कर दिया है।

भगवान् की इच्छा ! इसी समय हिटलर के पिता का देहान्त हो गया। १६ वर्ष की उम्र में ही वह अनाथ हो गया। उसके पिता जितना भी धन छोड़ गये थे सब माता की बीमारी में ख़र्च हो गया। उसी समय एक संदूक़ में अपने कपड़े भर कर आस्ट्रिया की राजधानी वियना को चला गया। यहीं उसका बचपन समाप्त हो जाता है।

घास की तरह पददलित जर्मन-जाति के बीच में हिटलर एक ऐसे विशाल वृक्ष की भाँति उठ आया है जिसे कोई झुका नहीं सकता।

चरित्र-निर्माण-सम्बन्धी एक शिक्षाप्रद कहानी

व्यङ्ग का असर

लेखक, देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए० एल-एल० बी०

मोहन बहुत चिड़चिड़े स्वभाव का लड़का था। उसके माता-पिता उसको बहुत समझाते परन्तु वह अपने साथियों से बात बात में उलझ पड़ता था। उसको ज़रा-सी बात की बरदाश्त न होती थी। पाठशाला में भी गुरु जी ने उसको बहुत समझाया कि हर एक आदमी को चाहिए कि वह दूसरे लोगों की सुविधा का ध्यान रखे। यदि इस गुण को कोई सीख लेता है तो सब लोग उसको प्यार करते हैं—चाहते हैं। जो लोग अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की सुविधा का ख़्याल नहीं करते उनसे लोग दूर रहना चाहते हैं और उनको संसार बुरा कहता है परन्तु मोहन के मन पर इस सिखापन का भी कोई असर न हुआ।

मोहन होस्टल में रहता था। एक दिन गुरुजी जो कि होस्टल के सुपरिण्टेण्डेण्ट भी थे होस्टल के सब लड़कों को नाटक दिखाने को ले गये। कोई अच्छा शिक्षाप्रद नाटक था। सामने की क़तार में ऊँचे टिकटवाले भले आदमी बैठे हुए थे। उनके पीछे की क़तार में मोहन और उसके साथी थे। मोहन के बिलकुल सामने की कुरसी पर बाहर से आये हुए कोई सज्जन थे। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो मोहन असुविधा के साथ गर्दन ऊँची कर करके नाटक का अभिनय देख रहा था। उक्त सज्जन ने यह देखकर अपनी कुरसी कुछ बाज़ू में हटा ली और मोहन से मुसकरा कर कहा "बच्चे लो अब अच्छी तरह देखो। तुमने पहले क्यों न बताया कि तुमको तकलीफ़ हो रही है।" मोहन मन में प्रसन्न हुआ। धीरे से गुरु जी ने मोहन से कहा—"मोहन! देखो भले आदमियों को दूसरों की सुविधा का कैसा ख़्याल होना चाहिए। इस बात का यह उदाहरण है।"

इसके कुछ दिनों बाद मोहन के स्कूल की छुट्टी हुई। मई का महीना आ गया। गर्मी की आम तातील डेढ़ माह के लिए हो गई। मोहन अपने कुछ साथियों-सहित घर जाने के लिए रेल पर सवार हुआ। कुछ स्टेशनों के निकल जाने के बाद एक छोटा स्टेशन आया। मोहन का डब्बा ख़ूब भरा हुआ था। सब बेंचों पर आदमी बैठे थे। रेल चलने को ही थी कि दौड़ता हुआ और हाँफता हुआ एक आदमी आया और मोहन के डब्बे में घुस गया। गाड़ी चल दी। मोहन बेंच के सिरे पर ही बैठा था। गाड़ी के चलने के थोड़ी देर बाद उस आदमी ने मोहन से कहा—"भाई, अगर तुम थोड़ा सरक जाओ तो मुझे भी बैठने को थोड़ी जगह हो जावे। हाँ, ऐसा करने में आपको थोड़ी असुविधा अवश्य होगी।" मोहन बोला—

"जनाब, आपको शायद यह धोखा हो रहा है कि हमने अपना टिकट कम पैसों में ख़रीदा है इसलिए हमको असुविधा से बैठना चाहिए।"

वह—"सो बात तो नहीं है। मुझे यह धोखा नहीं हो सकता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि रेलवे कम्पनी कम ज़्यादा भाव में टिकट नहीं बेचा करती और टिकटों के रेट मुक़र्रर हैं।"

मोहन—"तो फिर?"

वह—"हाँ, धोखा मुझे ज़रूर हुआ। परन्तु......."

मोहन—"कहो कहो, चुप क्यों हो गये? क्या धोखा हुआ?"

वह—"नहीं कहना ही अच्छा। मुझे केवल दो स्टेशन ही जाना है। मैं खड़ा रह कर भी जा सकता हूँ। आपको असुविधा न हो इसमें ही मुझे ख़ुशी है।"

कौतूहलवश मोहन बार बार पूछने लगा और बोलो—

"परन्तु हाँ, बताओ तो तुमने कौन-सा धोखा खाया?"

वह आदमी मुस्कराकर कुछ हिचकिचा-हट के साथ बोला—

"बाबू, आप ज़िद करते हैं तो लो बतलाये देता हूँ। परन्तु बुरा तो न मानोगे?"

मोहन—"नहीं, ज़रूर बतलाओ।"

वह—"मैंने यह धोखा खाया कि आपको मैंने एक 'भला आदमी' समझ लिया।"

मोहन सुनकर अपने मन में बहुत लज्जित हुआ। उस दिन के नाटकवाली घटना भी उसकी आँखों के सामने फिरने लगी। वह बेंच पर से उठ खड़ा हुआ और बड़े आग्रह के साथ उस आदमी को अपनी जगह पर बिठाकर बोला—

"क्षमा कीजिए। आपके इस व्यङ्ग ने जो शिक्षा मुझे दी है उसको मैं कभी न भूलूँगा। और दूसरों की सुविधा का हमेशा ख़्याल रखूँगा।"

—

एक प्रार्थना

लेखक, श्री 'गुरुघंटाल'

निर्बल के बल हो तुम भगवन,
दीनबंधु कहलाते हो।
सदा मार खाया करता हूँ,
तो भी तरस न खाते हो॥
पाठ नहीं है याद, हुई,
शाला को भी जाने में देर।

ख़ूब पीठ पर छड़ी पड़ेगी,
अगर ज़रा भी हुई अबेर॥
करुणा-सिंधु दया करके तुम,
इस संकट से दो अब टार।
कोई युक्ति सुझा दो जिससे,
आज न खाने पाऊँ मार॥

—
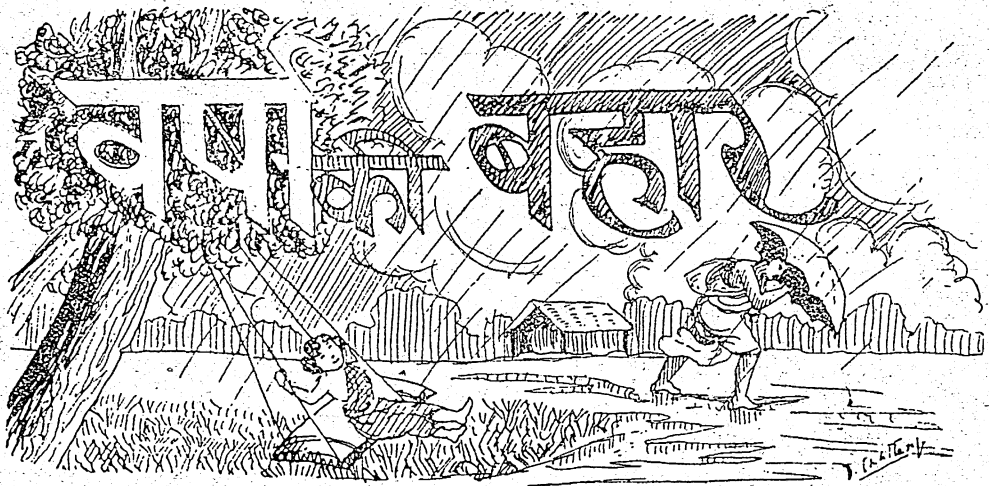
(१)

गई आसमाँ की है रंगत बदल,
है छिपता कभी, आता सूरज निकल;
घटा बादलों की चली आ रही,
क्यों पुरवा हवा धीरे धीरे बही;
अरे यह तो बरसात है आ गई।

(२)

रुको, बूँदा-बाँदी शुरू हो गई,
दिखाती है दुनिया की रंगत नई;
जो शिद्दत की गर्मी से थी बेकली,
वह बरसात में अब किधर बह चली;
है चारों तरफ़ पानी पानी हुआ।

(३)

अँधेरे में कुछ भी नहीं सूझता,
किधर रास्ता है न चलता पता;
चमक जाती बिजली कहीं बार बार,
दमक जुगनुओं की दिखाती बहार;
समाँ झींगुरों ने है बाँधा अजब।

(४)

पपीहे भी 'पी' 'पी' सुनाने लगे,
हैं मेंढक भी टरटर मचाने लगे;
लगे मोर अब बोलने बोलियाँ,
बनाकर चले खेत में टोलियाँ;
बड़े मौज में नाचते ख़ूब हैं।

(५)

भरे ताल पोखर बहो नालियाँ,
हरे पेड़ पौधे हरी डालियाँ;
किसानों की खेती हरी हो गई,
है धरती पै कैसी तरी हो गई;
है मौसम बड़ा ही रँगीला बना।

(६)

ज़रा बंद पानी हो तो साथ मिल,
चलें सैर करने बहल जाय दिल;
बड़े शौक से सुर मिलाते हुए,
नये गीत सावन के गाते हुए;
यह बरसात भाती हमें दिल से है।

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

अर्जुन का नाम कपिध्वज क्यों पड़ा ?

लेखिका, कुमारी लाजवन्ती गोबा, लैय्या

महाभारत का युद्ध छिड़नेवाला था, सारे योधा युद्ध-विचार में संलग्न थे, विशेष अर्जुन संलग्न थे, उनके मुख्य सहायक थे भगवान् कृष्ण।

प्रातःकाल का सुहावना समय है। मनोहर समीर चल रहा है। पक्षीगण अपने मधुर कलरव से स्तुति कर रहे हैं। ऐसे समय में अर्जुन ने विचारा कि चलो कहीं चलकर घूम आयें। इसी विचार से वे बाहर निकले।

एकाएक उनके ध्यान को एक गर्जना ने उचाट कर दिया। वे क्या देखते हैं कि सामने से भीमकाय, स्वर्णवर्ण वानर गरजता हुआ चला आ रहा है। देखते ही देखते वह निकट आ पहुँचा। इसे देखकर अर्जुन पहले तो बड़ा विस्मित हुआ परन्तु फिर साहस-पूर्वक पूछा—आप कौन हैं?

वानर—मैं हनूमान् हूँ।

अर्जुन—क्या आप वही हनूमान् हैं जो रामचंद्र जी के दास कहलाते थे।

हनूमान्—जी, हाँ।

"तुम्हारे स्वामी रामचंद्र जी तो धनुर्धारी कहलाते थे, फिर उन्होंने पत्थरों की अपेक्षा तीरों का पुल क्यों न तैयार कर लिया।"

"वे सर्वसमर्थ थे, तीरों का पुल भी बना सकते थे, किंतु वानरों की प्रकृति को देखकर उन्होंने ऐसा नहीं किया। क्योंकि चंचल वानर उसे झट तोड़ डालते। वे वानर-स्वभाव की मर्यादा बचाना चाहते थे। क्योंकि जगत् की मर्यादा स्थापन करने के लिए तो उनका अवतार हुआ है।"

"वाह यह भी कोई बात है, तुम भी वानर हो मैं इसी नदी पर ही तीरों-द्वारा पुल बनाता हूँ यदि शक्ति है तो तोड़ दिखाओ?"

"बहुत अच्छा! मैं तैयार हूँ, परन्तु किस शर्त पर"।

"यदि पुल तोड़ दिया गया तो मैं तुम्हारी दासता स्वीकार करूँगा या चिता में जल मरूँगा, अन्यथा तुम्हें मेरी दासता स्वीकार करनी पड़ेगी।"

पवनसुत ने यह बात स्वीकार कर ली।

वीरवर कौन्तेय ने तीरों-द्वारा नदी पर पुल बनाया और बजरंगबली ने उसे तुरन्त ही तोड़ डाला अब क्या था, कुंतीनन्दन बड़े सोच में पड़े कि अब क्या किया जाय। दास होना तो क्षत्रिय-धर्म के विरुद्ध है, इससे चिता में जल मरना ही अच्छा है। ऐसा निश्चय करके अर्जुन लकड़ियाँ एकत्र करने लगा।

उधर सर्वान्तर्यामी भक्तभयहारी, मुरारी को भी अपने भक्त की रक्षा का ध्यान आया तो वहीं पर प्रकट होकर बोले—अर्जुन यह क्या हो रहा है? आज तुम्हारा मुखारविंद कुम्हलाया हुआ क्यों है?

अर्जुन—दीनानाथ! मैं कब से आपकी बाट जोह रहा हूँ। आओ आज मिलकर गले

लगा लें। प्रभो ! अब अन्तिम बिदा दीजिए।

कृष्ण—हे अर्जुन क्या बात है ? बताओ तो सही।

अर्जुन ने आदि से अंत तक सारा हाल कह सुनाया। तब आनंदकंद सच्चिदानन्द भक्तरक्षक भगवान् बोले—उफ़ ! इतनी बात पर इतना सन्ताप ! मेरे होते मेरे भक्तों पर दुःख। अर्जुन तुम लौट जाओ और पवनकुमार से कहो कि इस कार्य में साक्षी का होना परमावश्यक है। अतएव तुम दोबारा पुल तैयार करो। मैं ब्राह्मण के रूप में आ रहा हूँ मुझे ही साक्षी बनाना।

अर्जुन लौटे—पवनकुमार से बोले कि देखो मैंने लकड़ियाँ एकत्र कर ली हैं। और भस्म होने को तैयार हूँ। शोक ! इस कार्य को देखनेवाला कोई नहीं है।

हनूमान्—यह कोई बड़ी बात है, तुम दोबारा पुल बनाओ मैं किसी के साक्षित्व में तोड़ सकता हूँ। कौन्तेय बोले कि वह देखो ब्राह्मण देवता आ रहे हैं उन्हें ही साक्षी बनाना चाहिए। इतने में ब्राह्मणरूपधारी कृष्ण भी पास आ पहुँचे। अर्जुन ने उनके साक्षित्व में पुल तैयार किया। पवनकुमार उसे तोड़ने के लिए ऊपर चढ़े किन्तु दयालु, भक्तरक्षक, भगवान् ने एक दूसरा रूप धारण कर पुलके नीचे जा उसका भार अपनी पीठ पर ले लिया। पवनकुमार ने बड़ा ज़ोर लगाया परन्तु पुल का तोड़ना तो दूर रहा, हिलाना भी कठिन हो गया।

अन्त में हारकर श्रीमान् हनूमान ने अर्जुन की दासता स्वीकार कर ली। तब से अर्जुन का नाम कपिध्वज हो गया है।

सीख *

बोल-बोल कर मीठी बोली,
कोयल पाती जग में मान।
घोल-घोल बातों में मिश्री,
बोलो प्यारे लो सम्मान॥
निज प्रकाश से छोटा दीपक,
अंधकार को करता दूर।

प्रेम, ऐक्यता, शक्ति-बुद्धि से,
करो अविद्या सारी दूर॥
लौ में आकर कीट पतंगे,
जलें मरें हो जावें राख !
सेवा में तुम जान लगाकर,
कर दो क़ीमत अपनी साख॥

—बद्रीप्रसाद पाण्डेय, साहित्यभूषण

---

* अप्रकाशित शिशु-गीत-प्रकाश से।
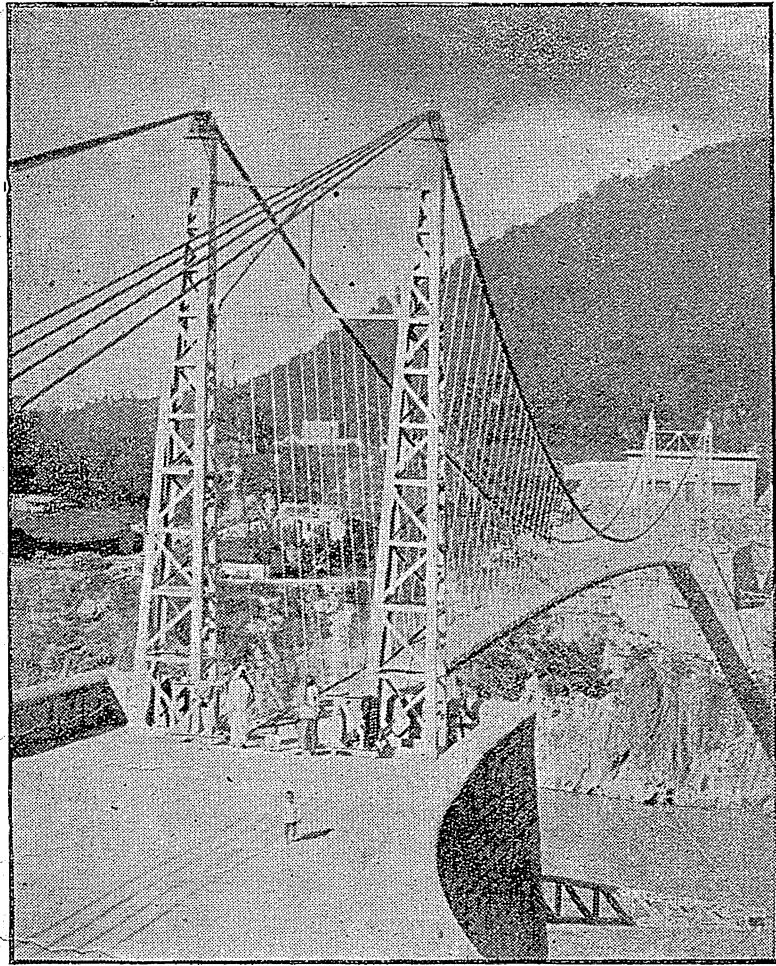
[लछमन झूला

मेरी ऋषिकेश-यात्रा

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, करसियांग

मेरे प्यारे बन्धुओ ! मेरे इधर के किये पापों के बोझ से मैं लदा जा रहा था और सोच में मग्न था कि इनको कैसे दूर किया जाय। 'जा पर जाकर सत्य सनेहू, सो तेहि मिले न कछु सन्देहू' के अनुसार मुझे परमात्मा ने मौक़ा भी भेज दिया। मैं अपने हिसार की कुटिया में पड़ा था, एक दिन मोटरों और ताँगों की बड़ी चहल-क़दमी मैंने पड़ोस में देखी। कारण पूछने पर पता लगा कि परसों "वैशाखी" का पवित्र पर्व है, लोग बाग़ हरिद्वार जा रहे हैं। और चूँकि मैं भी एक 'लोग' ही था और लुगाई नहीं, मैंने परमात्मा का स्मरण कर मिनटों में सामान बाँध कर अपने को एक ख़ासा तीर्थ-यात्री बना डाला। ख़ूब तड़के उठकर मोटर से दिल्ली आया, मेरे साथ, सौभाग्य से मेरे एक भतीजे साहब भी हो लिये। बस फिर यात्रा में जो मज़ा आया, वह अनुभव करने की चीज़ थी—कहकर

बताने को नहीं। दिल्ली से देहरादून एक्सप्रेस में सवार होकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही हरिद्वार आ धमके। एक शानदार धर्मशाला में सामान पटक नँगे सिर और नँगे पैर, हम जा पहुँचे "हर की पेड़ी पर"। गंगा मैया के सुदर्शन किये और जी खोल कर डुबकियाँ लगाईं और स्नान भी किया। सचमुच मुझे लगा कि पापों का मानसिक बोझ एकदम जाता रहा और अपने राम अपने को बहुत हलके मालूम देने लगे। वैशाखी के पर्व पर, उस दिन, काबुल, कन्धार, चमन, पेशावर मुलतान तक के हिन्दू-परिवार—जिनमें २-३ मास के शिशुओं से लगाकर ८०-९० वर्ष के वृद्ध-वृद्धा मातायें थीं, गङ्गा-स्नान के निमित्त आये थे। उस दिन का नज़्ज़ारा देखकर मैंने हिन्दू भाइयों की धर्म-परायणता की मन ही मन बड़ी बड़ाई की। माँ गङ्गा जी के चरणों में मस्तक नवा कर वापस डेरे आये और एक लारी रिज़र्व कराके क़रीब १॥ बजे हम ऋषिकेश पहुँच गये। वहाँ गङ्गा जी का दृश्य, हरिद्वार से अधिक मनोमोहक था। श्री सीताराम जी और श्री भरत जी के मन्दिरों में दर्शनार्थ गये। फिर श्री १०८ काली कमलीवाले बाबा श्री रामनाथ जी का क्षेत्र देखा। क्षेत्र क्या था, हज़ारों मनुष्यों का भोजन रोज़ तैयार होता और मुफ़्त बाँटा जाता था। श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ जानेवाले सहस्रों यात्रियों को भोजन, औषधि और डेरा आदि इसी क्षेत्र की ओर से दिया जाता है। हरिद्वार से ऋषिकेश तक ई० आई० आर० रेलवे जाती है। फ़ासिला केवल १५ मील का है और किराया सिर्फ़ ≡) आने। चूँकि हमें एक दिन में सारी यात्रा समाप्त करनी थी हम ।!) फ़ी आदमी के हिसाब से देकर मोटर से गये।

ऋषिकेश-दर्शन कर हमने फिर एक मोटर ली और भारत-विख्यात 'लक्ष्मण-झूला' देखने चल पड़े। पहाड़ की जलेबीदार चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते हमारी कार क़रीब घंटे भर में लक्ष्मण-झूला के क़रीब क़रीब पहुँच गई, ठेठ झूले तक बिचारी जा नहीं सकी, उसका दम घुटने लगा। हम आख़िर धर्म-प्राण तीर्थयात्री थे। उस समय दया आ ही गई और जय गङ्गा मैया की कहते हुए तीन मील की चढ़ाई हमने पैदल ही तय कर डाली।

लक्ष्मण-झूले का पार्वतीय दृश्य बड़ा ही मनोहर है और यहाँ से लौटने को जी ही नहीं करता। श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ के यात्री यहीं ज़रा विश्राम लेते हैं। दोनों ओर ऊँचे पहाड़ हैं, बीच में पुण्य-सलिला भगवती भागीरथी कल-कल ध्वनि करती हुई बह रही हैं। यात्रियों के सुभीते के लिए, कलकत्ते के सुप्रसिद्ध धनिक राय बहादुर शिवप्रसाद जी झूनझूनवाला ने यहाँ रस्सियों का एक पुल पहले-पहल बनाया था मगर कई वर्षों तक काम देने के बाद वह कमज़ोर हो गया। इसलिए सरकार की ओर से अभी हाल ही में ख़ूब मज़बूत नया पुल बना है। यह पुल साहब, यात्रियों के आने-जाने के समय ख़ुद भी झूलने

लगते हैं और इसके पास ही श्री लक्ष्मण जी का विख्यात मन्दिर है, इसी से—लोहे की मोटी मोटी रस्सियों से बने हुए, और झूलते रहने-वाले इस पुल को "लक्ष्मण-झूला" कहा जाता है। रावण के बलशाली बेटे मेघनाद को मारने के पाप से पिंड छुड़ाने के लिए, श्री लक्ष्मण जी ने इसी स्थान पर बड़ा भारी तप किया था। 'लक्ष्मण-झूले' के पास ही, स्वर्गाश्रम, कैलासा-श्रम नामक पुण्य-स्थान भी बड़े दर्शनीय हैं।

'लक्ष्मण-झूले' के मनोहर और पवित्र दृश्य को देखकर मैं तो सारी सुध-बुध भूल गया। मन में सोचा कि अगर इस स्वर्गीय आनन्द और सुन्दर दृश्य का उपभोग अकेला ही करता हूँ तो 'बाल-सखा' के मेरे बाल-बन्धु बुरा ही मानेंगे। अतएव घर बैठे 'हिसार' की तरह 'लक्ष्मण-झूले' के भी दर्शन उन्हें करा देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। बस, झोली में से मैंने अपना कैमरा निकाला और वह दृश्य उसके हवाले किया। यह लीजिए, मेरे बन्धुओ, इस चित्र में ऋषिकेश, लक्ष्मण-झूला और माँ गङ्गा के सुदर्शन कर अपने नयनों को सुफल कीजिए। और सच बतलाइए, कितना आनन्द आ रहा है आपको ?

अगली दफ़ा छुट्टियों में 'लक्ष्मण-झूले' के दर्शनार्थ आप भी अवश्य जावें और अगर आपके गुरुजन टाल-मटूल करते दिखाई दें तो ज़रा रूठने और मचलने का सहारा लीजिएगा। बस जीत आप ही की समझिए।

हाकी

लेखक, श्रीयुत श्याममोहन श्रीवास्तव, कक्षा ८

मेरी प्यारी सुन्दर हाकी,
रंग चढ़ा है जिस पर खाकी।
सबसे अच्छा मुझे खेलाती,
देश-देश में विजय दिलाती॥
देख इसे लड़के ललचाते,
इसको पाने को अकुलाते।
मगर नहीं मैं देता उनको,
कहते सब 'हाकी प्रिय' मुझको॥
जब मैं खाना खाने जाता,
इसको भी हूँ तेल पिलाता।
संग सुलाता, संग उठाता,
सदा इसी से इसको भाता॥
जीवन-संगिनि है यह मेरी,
करती देश-देश में फेरी।
वर्ल्डचैम्पियन मुझे बनाया,
जिससे मैंने आदर पाया॥
इसको सोने से मढ़वाकर,
रक्खूँगा प्राणों से बढ़कर।
लड़को! छोड़ो अब तुम टाँकी,
खेलो हिरदय भरि भरि हाकी॥

बाल-महाभारत

हिडिम्बवध

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

चलते फिरते आन पड़े जब जंगल में सुनसान
नहीं दीखे था एक मनुष्य भी वहाँ रहें हैवान।
मनुष्य-मात्र जितने रहते थे एक राक्षस ने खाया
दाँत बड़े आरों से उसके नाम हिडिंब[1] कहलाया।
साथ रहे थी भगनी उसके हिडिम्बिक था नाम
पाप करे जब भाई उसका भागी बनता काम।
बहोत दिनों से कोई मनुष्य भी नहीं मिला था उसको
खा जाता वो जानवरों को पा जाता वो जिसको।
ऐसे जंगल आन पड़े थे पांडवगण एक रात
माता जब भयभीत हुई तो भीम कहें यह बात।
"थकी हुई हो माता प्यारी सो जाओ है रात
सो जावें सब भाई हमारे नहीं है डर की बात।
काम भवन का देगी हमको आज यह भारी नीम
ताके माता भाई को यह पुत्र तुम्हारा भीम।
भीमसेन जब ऐसा बोले लेट रहे सब कोई
नींद उन्हें फौरन ही आई थके हुए थे सोई।
पड़ी दृष्टि हिडिम की ज्यों ही एकाएक उस ओर
भगनी से वो ऐसा बोला भोजन आये मोर।
आज बहुत दिन पीछे ऐसा अच्छा भोजन आया
बहुत दिनों से कोई मनुष्य भी कहीं न मैंने पाया।
जल्दी जा तू मेरी प्यारी, देख कहाँ से आये
आऊँगा वध करने उनको जब तू मुझे बुलाये।
हुकुम मिला भाई का ज्यों ही गई हिडिम्बा दौर
पर देखो माया भगवत की हुआ वहाँ कुछ और।

कुन्तीपुत्र जगा बैठा था सुन्दर बड़ा शरीर।
सहम गई वह देख उसी को खैंची साँस गँभीर।
भेस बना सुन्दर नारी का उसके सम्मुख आई
हे नरसुन्दर! काहे को है मौत तुझे याँ लाई।
ऐसा सुन्दर नर तो मैंने कभी न देखा जग में
तुझे बनाऊँ पति मैं अपना ऐसी आई मन में।
दुष्ट निशाचर रहता वन में वह है मेरा भाई
खाये नर नारी सब उसने मौत जिन्हें याँ लाई।
प्यार मुझे तेरा है इतना आई बचाने तुझको
भाग चलूँगी साथ तुम्हारे संग सदा रख मुझको।
सोते माता भाई को मैं पीछे कैसे छोड़ूँ?
दुष्ट कोई संमुख जब आवे मैं सर उसका तोड़ूँ।
कुन्तीपुत्र कहा जब ऐसा हिड़मी यों कहती है
राक्षसों का बल क्या जानो भाग चलो जल्दी से।
सोते माता भ्राताओं को अब तुम शीघ्र जगाओ
भाग चलो तुम मेरे सँग में उनको साथ भगाओ।
निशाचरी! तू क्यों बकती है कष्ट न उनको दूँगा
निशाचरों की सेना भी हो उनके प्राण हरूँगा।
बात यही होती थी जिस दम दुष्ट हिडिंम भी आया
सुन्दर रूप बहिन का देखा तब तो वह गुर्राया।
तुझको मैंने क्यों भेजा था, क्यों यह रूप बनाया?
मालुम होता है यह मुझको इस नर पर दिल आया।
राक्षसों की जाति में क्या नहीं रहे हैं नर
उनमें से क्या योग नहीं था कोई तेरे वर?
मारूँगा पहले इस नर को फिर मैं तुझको खाऊँ
रुधिर पियूँ मैं तेरा लुचनी यम के लोक पठाऊँ।

---

१ हिडिम्बः

ऐसा कह तब दुष्ट हिडिंम ने दोनों हाथ उठाये
दिल में उसके ऐसा आया पांडुपुत्र को खाये।
भीम बड़ा बलवान पुरुष था, हाथ लिये जब थाम
ऐसा जकड़ा दुष्ट राक्षस को नहीं सके कर काम।
पहले उसको खींचे खींचे भीम फिरे सब ओर
बदन गया छिल उस जंगली का लगा मचाने शोर।
शोर मचा ऐसा उस वन में पांडु एक दम जागे
सारा युद्ध उन्होंने देखा होता था जो आगे।
गदा उठाकर भीमसेन ने दुष्ट यवन को मारी
चूर किया सारा सर उसका ऐसी थी वह भारी।
आये भीम हिडिम्बा ओरी हाथ उठाया उस पर
ऐसा देखा एकाएकी बोले भाई युधिष्ठिर।

नारी पर जो हाथ उठावे वीर नहीं रह जाय
हाथ उठावे अबला पर जो दुष्ट बड़ा कहलाय।
'मैंने तुझको पती बनाया' हिडिम्बिका तब कहती
कष्ट मिले पत्नी को तुझसे हँसी जगत में उड़ती।
धर्म तुम्हारा मुझ पत्नी की बाँह धरो महराज
दूर करोगे मुझको प्यारे प्राण तजूँगी आज।
कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर बोले सौंपा भीम तुझी को
एक वर्ष पीछे फिर हमसे देना मिला इन्हीं को।
ऐसी बात बड़े भ्राता की जब उसने सुन पाई
ख़ुशी हुई इतनी ज़्यादा वह फूली नहीं समाई।
भीम रहे सँग हिडिम्बिका के एक बिताया साल
पुत्र हुआ इनसे एक पैदा बीते पर कुछ काल।

नाम घटोत्कच उसका रक्खा लौटे माता पास
वन वन फिरते गुप्त भाव से बीते बहुत निरास।

गोरखधंधा
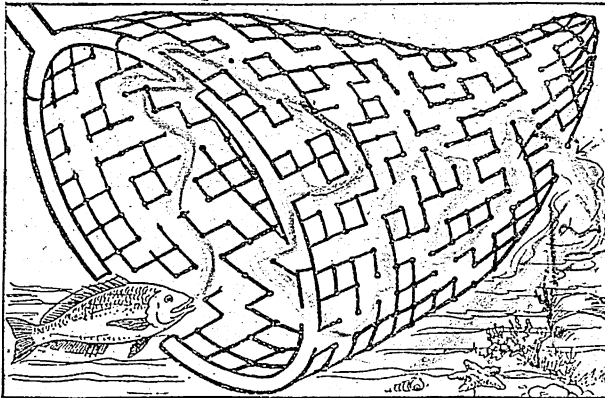
मछली जाल के मुँह में चली गई है। कैसे निकले ?

बुद्धिमान् बुढ़िया

लेखिका, कुमारी सरला, भटनागर, लाहौर

एक बुढ़िया थी। वह एक बार अपने भाई के घर जाने लगी। मार्ग में भयानक जंगल पड़ता था। परन्तु बुढ़िया के मन में तो भाई से मिलने की प्रसन्नता थी। उसे भला किसी का क्या डर था, अस्तु। वह चल पड़ी।

चलते चलते उसे एक भेड़िया मिला। बुढ़िया को देखकर उसके मुँह में पानी भर आया वह कहने लगा—"बुढ़िया री बुढ़िया! तुझे खाऊँ?"

बुढ़िया कहने लगी—

"भैया के घर जाऊँगी,
दूध मलाई खाऊँगी,
मोटी होकर आऊँगी।
जब खाइयो, अभी क्या खाय
सूखी हड्डियों को?"

भेड़िया बेचारा चुप होकर रह गया। भेड़िये से बचकर बुढ़िया आगे चली तो सामने से एक सिंह आता दिखाई दिया। उसने भी वही प्रश्न किया बुढ़िया ने भी वही उत्तर दिया। इसी प्रकार लोमड़ी, चीता इत्यादि भयानक जन्तुओं से उसकी भेंट हुई—बुढ़िया सबको बड़े साहस से यही उत्तर देती गई कि—

"भैया के घर जाऊँगी,
दूध मलाई खाऊँगी,
मोटी होकर आऊँगी।
जब खाइयो, अभी क्या खाय
सूखी हड्डियों को?"

इस तरह अनेक कठिनाइयों से बचती हुई बुढ़िया अपने भाई के घर पहुँची। भाई अपनी बहन से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ दिन भाई के घर रहने के पश्चात् जब वह अपने घर जाने लगी तो उसने अपने भाई से कहा कि "भैया जब मैं तेरे घर आ रही थी तो मुझे रास्ते में बहुत-से मनुष्य-भक्षी पशु मिले थे, वह जब मुझे खाने लगे तो मैंने उनसे यह कहा कि—

"भैया के घर जाऊँगी,
दूध मलाई खाऊँगी,
मोटी होकर आऊँगी।
तब खाइयो, अभी क्या खाय
सूखी हड्डियों को?"

सो अब मैं पहले से कुछ मोटी भी हो गई हूँ। इसलिए वे हिंसक जन्तु मुझे कच्ची ही चबा जायँगे। तू कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं कुशलपूर्वक अपने घर पहुँच जाऊँ।

यह सुन कर भाई ने बहन को धैर्य दिया और उसे एक काठ का तूँबा बनवा दिया जो चारों तरफ़ से बन्द और गोल था।

बुढ़िया उसमें बैठ कर चली। बस्ती के बाहर ही लोमड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

तूँबे को देखकर उसने पूछा—

"हे तूँबे, तूने कहीं बुढ़िया देखी है।"

तूँबे में से बुढ़िया बोली—

"तूँबा तो लुड्क पुड्क,
तूँबा तो गाँठ गँठीला,
तूँबा बुढ़िया क्या जाने ?"

बेचारी लोमड़ी चुप हो गई। आगे चलने पर चीता भेड़िया आदि को भी बुढ़िया ने वही उत्तर दिया। जब बुढ़िया का गाँव पास आने लगा तो उसे सिंह मिला। उसने तूँबे से पूछा "हे तूँबे, तूने कोई बुढ़िया देखी है।"

इस पर बुढ़िया ने हँसकर अन्दर से उत्तर दिया—

"तूँबा तो लुड्क पुड्क,
तूँबा तो गाँठ गँठीला,
तूँबा बुढ़िया क्या जाने ?"

उस पर सिंह ने क्रोधित होकर तूँबे को फाड़ डाला। उसमें से बुढ़िया निकल आई। सिंह बोला—"चालाक बुढ़िया ! अब तुझे खाऊँ ?" इस पर बुढ़िया ने बड़े दीनस्वर से कहा—"हे मामा ! वह जो सामने तालाब है उसमें से पानी पी आऊँ प्यासी को न खा।"

सिंह ने स्वीकार कर लिया। बुढ़िया ने आड़ में जाकर दोनों मुट्ठियों में रेत भर लिया। थोड़ी देर बाद वापिस आकर बोली :— "ले मामा ! अब खा ले।"

सिंह ने प्रसन्न होकर अँगड़ाई लेकर मुँह फैलाया। बुढ़िया यही अवसर देख रही थी। उसने झट दोनों मुट्ठियों का रेत उसकी आँखों में झोंक दिया और वहाँ से भागी। इधर सिंह महोदय अपनी आँखें मलने लगे। आध घंटे के चीखने चिल्लाने के पश्चात् जब उनकी आँखें ठीक हुईं तो देखा कि बुढ़िया नदारद है। बेचारा सिर पीट कर रह गया।

कुलफी

लेखक, श्रीयुत परमेश्वरदयाल माथुर

देखो देखो झम्मन आया।
खाने को यह कुलफी लाया॥
इसमें पड़ी है दूध-मलाई।
लेते जाना इसको भाई॥

उधर से निकला एक बच्चा।
कहता है ले दो इसको चच्चा॥
इसमें पड़ा है पञ्च मेवा।
खाकर करूँगा सबकी सेवा॥

मधुमक्खियाँ

लेखक, श्रीयुत मनोरञ्जनसहाय श्रीवास्तव, गुमला

जिन्होंने 'मधु' का स्वाद चखा है, कम से कम, हमारे उन भाइयों को "मधुमक्खी" की याद अवश्य आवेगी। सचमुच, "मधुमक्खी" का नाम स्मरणीय है क्योंकि, कम से कम बीमारी के बहाने भी 'मधु' चखने का अवसर आ लगता है!

मधुमक्खियों का जन्म अप्रैल के महीने से आरम्भ होता है और सितम्बर आते-आते इनका अन्त हो जाता है। मधुमक्खियाँ फूलों से पर्याप्त मधु नहीं इकट्ठा कर सकतीं। ये पुष्पों से एक प्रकार का द्रव निकाल कर मधु-संचय करनेवाली थैली में जमा करती हैं। वहाँ उनकी पेशियों से एक प्रकार का मीठा रस निकल कर संचित द्रव में मिश्रित होकर मधु तैयार हो जाता है। मधु-संचय करनेवाली थैली और उदर भिन्न है। संचय करनेवाली थैली उदर का काम नहीं देती। वह केवल मधु ही के लिए रहा करती है। इनकी जीभ रोयेंदार और लम्बी हुआ करती है। इसी कारण ये बड़ी सुगमता से मधु एकत्रित कर सकती हैं।

मधुमक्खियाँ तीन विभागों में बाँटी जा सकती हैं—१ रानी मक्खी, २ नर मक्खी, ३ श्रमजीवी मक्खी। रानी मक्खी का कार्य अपने अधिकारी-वर्ग की सेवा करना होता है। वह अपनी सारी प्रजा की माँ हुआ करती है और सारा देख-रेख उसी के हाथ रहा करता है।

श्रमजीवी मक्खियाँ ख़ूब शहद बटोर सकती हैं। उनकी जीभ अन्य मधुमक्खियों से अधिक लम्बी और रोयेंदार हुआ करती है। इनकी जीभ में बालों की सौ श्रेणियाँ हुआ करती हैं जो अन्य दो मक्खियों से अधिक हैं; क्योंकि रानी मक्खी की जीभ में केवल साठ ही हुआ करती हैं।

मधुमक्खियों को जमात अधिक पसन्द है; इसलिए वे जब उड़ने योग्य हो जाती हैं, तो वे जमात के जमात साथ निकला करती हैं। वे यदि कहीं छूट जाती हैं, तो सूँघते-सूँघते पुनः अपने गिरोह में सम्मिलित हो जाती हैं। पर, श्रमजीवी मधुमक्खियों को कभी-कभी घोर आपत्ति सहनी पड़ती है। शाम के समय अन्य मक्खियाँ समयानुकूल अपने छत्ते में प्रविष्ट

हो जाती हैं। ये भीड़ में भी अधिक हुआ करती हैं इसलिए कभी-कभी श्रमजीवी मधुमक्खियों का रिक्तस्थान अन्य सहयोगिनियों द्वारा लूट लिया जाता है। इससे जब श्रमजीवी मधुमक्खियाँ द्वार पर आकर यह हाल देखती हैं, तो बेचारियों को ठिठुर-ठिठुर कर रात बितानी पड़ती है।

ये सूर्योदय होने के बाद शीघ्र हो अपना घर त्याग पराग और मोम की खोज में निकल पड़ती हैं और सूर्यास्त तक अपने इस महान् कार्य की पूर्ति में संलग्न रहा करती हैं। रानी मक्खी जिस ओर जाती है उस ओर उसकी अन्य परिचारिकायें भी उसकी सेवा करने के लिए पीछे हो लेती हैं और कभी भी उसे अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देती हैं। रानी मक्खी के पीछे चलते हुए भी वे अपने नित्य कर्म को नहीं भूलती हैं।

एक छत्ता

श्रमजीवी मक्खियों को एक और काम सौंपा जाता है। वह काम 'छत्ता' बनाना है। वे मोम ला-लाकर 'छत्ता' बनाती हैं। जब यह कार्य हो जाता है तो वे अपने 'छत्तों' की कोठरियों में मधु भर कर बन्द कर दिया करती हैं जिससे मधु में कुछ हानि न पहुँचे और अपनी मधु की थैली को खाली कर अधिक मधु भर सकें। थैली पेट की एक पतली नली से जुटी रहती है, जिसके सिरे पर एक बन्द किया हुआ ढक्कन लगाया रहता है जिसे वे अपने इच्छानुसार खोल और बन्द कर सकती हैं।
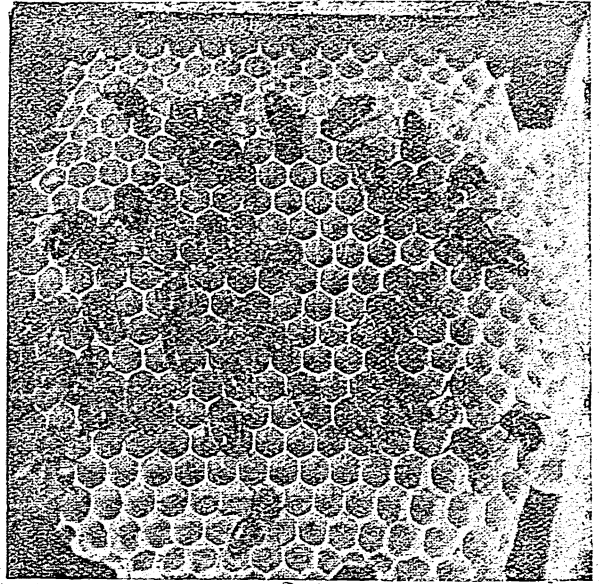
कभी-कभी रानी मक्खी की आज्ञा से इनका वध कर दिया जाता है। शायद यह काम उनकी अकर्मण्यता एवं वृद्धि पर किया जाता हो। छत्तों में प्रतिदिवस हज़ारों की तादाद में अंडे हुआ करते हैं। एक तो इनका परिश्रम, दूसरे पालन-पोषण, इतने पर भी वे विचलित नहीं होतीं और मगन हो भुनभुनाते जत्थे फूलों पर वर्षा की बूँदों की तरह उलझ पड़ती हैं।

जब इन्हें पर्याप्त संख्या में फूल नहीं मिलते तो वे उस जगह को छोड़कर दूसरी जगह चली जाती हैं। पर यदि वे चली भी जाती हैं तो अपना 'महल' पूरा कर। उन कोठरियों में शहद भरा रहता है। वे जाते समय उस छत्ते को नष्ट-भ्रष्ट नहीं करतीं और जहाँ उन्हें मधु की सुविधा होती है, वहाँ वे पुनः छत्ते का निर्माण

करती हैं। इनका छत्ता क़रीब १,२०,००० कोठरियोंवाला होता है। विशेषतया ये नई रानियाँ उत्पन्न होने के समय ही भाग जाया करती हैं; पर जब उन भावी रानियों की मृत्यु हो जाती है तो वे पुनः अपना कार्य आरम्भ कर देती हैं।

श्रमजीवी मक्खियाँ तो बहुत ही शीघ्र घर से बाहर निकल जाती हैं, इसलिए बारी-बारी कर उन्हें उस समय द्वार की रक्षा करनी पड़ती है, जब अन्य मक्खियाँ मधुसंचय एवं विहार करने निकलती हैं।

मधुमक्खियों में एकता का प्रबल प्रताप उनके नस नस में प्रवाहित है। जब किसी मक्खी को लोग मार दिया करते हैं, अथवा किसी प्रकार का कष्ट देते हैं तो अन्य मधुमक्खियाँ चट उस व्यक्ति पर आक्रमण कर काटने को उतारू हो जाती हैं। किसी नवसिखिये मधुमक्खी के गिरोह भूल जाने पर रानी मक्खी-द्वारा कई मधुमक्खियाँ उसकी खोज में निकल पड़ती हैं।

मधुमक्खियों को रोज़ बहुत परिश्रम करना पड़ता है। वे अपनी पसीने की कमाई से सुख का उपभोग किया करती हैं। दिन में कम से कम उन्हें २-३ मील मधु के लिए भटकना पड़ता है। भटकने पर भी उन्हें शीघ्र ही अपेक्षाकृत मधु नहीं प्राप्त हो जाता। सभी फूलों पर जाकर वे रस लिया करती हैं। वे रस तो एक फूल से पानी की एक बूँद के समान भी नहीं होते। १५-२० फूलों पर जाने पर कहीं उतना रस उन्हें मिलता है। तिस पर भी उन्हें केवल यही कार्य करना नहीं रहता है। उन्हें अपने 'छत्ते' की एवं अपने बाल-बच्चे की रखवाली करना और साथ ही साथ अपनी रानी की आज्ञा भी मानना पड़ता है। पाठक इससे समझ सकते हैं कि मक्खियाँ कितना परिश्रम करती हैं। और तभी तो उनके कठिन परिश्रम का फल मिलता है, मीठा मधु !

हवाई जहाज़

लेखक, श्रीयुत आनन्दकुमार चतुर्वेदी "कुमार"

वह जाता है जहाज़ हवाई।
कैसा सुन्दर दिया दिखाई॥
चन्द मिनट में कोसों जाता।
सैर कराकर वापस लाता॥
कितना ऊँचा उड़ता जाता।
नदी झील को पार कराता॥

सड़क गली सी राह नहीं है।
पटरी की भी चाह नहीं है॥
भोंपा हारन नहीं बजाता।
भर भर की आवाज़ सुनाता॥
सैर करूँगा इस पर चढ़कर।
मन बहलाऊँगा ख़ुश होकर॥

मज़ेदार लकवा

लेखक, डाक्टर रविप्रताप श्रीनेत

हँसना हँसाना स्वयं जिन्दा रहना और दूसरों को जिन्दा रखना है। इस कला में लार्ड सैलिसबेरी बड़े निपुण थे। इस लेख में विद्वान लेखक ने उन्हीं की एक मज़ेदार कहानी लिखी है।

बालको, तुमने इँगलेंड के मशहूर राजनीतिज्ञ लार्ड सैलिसबेरी का नाम सुना होगा। लार्ड साहब बड़े ज़िन्दादिल और हाज़िर-जवाब थे। .खुद भी बड़े हँसोड़ थे और अपने मित्रों को हमेशा हँसाते रहते थे। यही सबब है कि इँगलेंड के सभी छोटे-बड़े लार्ड साहब के साथ बात-चीत करके मुक्त हँसी का मज़ा उठाना चाहते थे।

लार्ड सैलिसबेरी जब हँसने लगते थे, उस समय मालूम होता था जैसे उनके आस-पास की सभी चीज़ें आनन्द के मारे नाच रही हों। उनकी हँसी और मज़ेदार चुटकुले तमाम योरपीय देशों में विख्यात हैं। वे केवल हँसोड़ ही नहीं; बल्कि बड़े ऊँचे दर्जे के विचारक भी थे। बड़े स्पष्टवक्ता थे। राजनीति में उनकी अनोखी सूझ का लोहा सभी मानते हैं।

बालकों के बड़े मित्र थे। उन्हें हमेशा हँसाते रहते थे। उनका तो कथन है कि वे ही लड़के होशियार और तन्दुरुस्त रह सकते हैं जो .खूब दिल खोलकर हँसते हैं। इसलिए ही शायद उनके हमउम्र उन्हें 'हँसोड़ लार्ड' कहते थे।

तुम्हें हम आज एक बड़ी मज़ेदार घटना सुनाते हैं। उसे सुनकर तुम अन्दाज़ लगा सकोगे कि ६५ साल की उम्र में भी लार्ड सैलिसबेरी कितने हँसोड़ थे। उनके बचपनें की आदतें आज भी उनमें उसी तरह मौजूद हैं। उनमें बनावटीपना और दिखाऊपना बिलकुल भी नहीं है।

एक बार उन्हें किसी सहभोज में बुलाया गया। ठीक समय पर आप पहुँच गये। यहाँ-वहाँ की बातों में समय कटा। धीरे-धीरे भोजन समाप्त हुआ। लार्ड साहब के मित्र भोजन समाप्त होते ही उनके इर्द-गिर्द टेबिल के पास बैठ गये। लार्ड साहब अपने मित्रों को अपनी मज़ेदार बातों और दिल्लगियों से .खुश कर रहे थे। उनके आस-पास हँसी का फ़ुहारा चल रहा था। सभी उनकी बातों में मस्त हो रहे थे। ऐसा मालूम होता था मानों कोई सिद्धहस्त जोकर स्टेज पर अपनी कला दिखा रहा हो।

वे हँसते भी जाते और दूसरों को .खूब हँसाते भी जाते थे कि सहसा वे चुप हो गये। हँसी की जगह भय और चिन्ता ने ले ली। वातावरण एकदम शान्त और सचेत हो गया। मित्रों ने लार्ड साहब से पूछा—"ख़ैरियत तो है? आपमें यह परिवर्तन कैसा?"

लार्ड साहब घबराई हुई आवाज़ में बोले—"डाक्टर ने सच कहा था। आख़िर, वही हुआ।"

लोगों का कौतूहल जाग उठा था। सभी घबरा-से गये। एक मित्र ने पूछा—"बोलिए तो सही कि क्या हुआ ?" इस पर उन्होंने गम्भीर चेहरा बनाते हुए कहा—"अरे भाई कुछ मत पूछो। जिस बात से मैं डर रहा था, वही हुई। क़रीब दस-बारह साल पहले मेरे डाक्टर ने मुझे बतलाया था कि तुम्हें लकवा हो जायगा और तुम मर जाओगे। आख़िर वही बात हुई। मुझे मालूम पड़ रहा है कि मेरे पैरों में लकवा हो गया। बस, अब (साँस लेकर) अन्त पास ही है !"

दोस्तों ने गम्भीर मुद्रा बनाकर पूछा—"अभी तो आप मज़े से चुहलबाज़ियाँ कर रहे थे, अभी यह क्या होगया ? आप कैसे जान गये कि आपके पैरों को लकवा मार गया ?"

लार्ड साहब पहली आवाज़ में बोले—"क्या बतलाऊँ आप लोगों को ? हम बेज़ार बैठे हैं और आप लोगों को हँसी सूझी है। ५ मिनट से पैरों में चुटकियाँ ले रहा हूँ, लेकिन दर्द मालूम ही नहीं हो रहा है। चमड़ा ज्ञान-शून्य होता जा रहा है।"

यह सुनकर अन्य मित्र भयभीत होने लगे और एक-दो तो डाक्टरों की तलाश में टेलीफ़ोन भी भेजने के लिए बढ़े। इतने में लार्ड साहब के बिलकुल नज़दीक बैठे हुए मित्र ने खिलखिलाते हुए बयान किया कि—"वाह साहब, वाह ! यह भी ख़ूब रही ! आप तो मज़े में मेरी जाँघों में चुटकियाँ ले रहे थे, लेकिन संकोच के मारे मैंने कुछ भी नहीं कहा। चुप्पी साधे बैठा था।"

लार्ड साहब ने कहा—"ऐं ! ऐसी बात है ?"

मित्रों की टोली क़हक़हा लगाकर फिर उस लम्बे-चौड़े और सुसज्जित कमरे की नीरवता दूर करने लगे। हँसी का फ़ुहारा पुनः चलने लगा। किसी ने कहा—'मज़ेदार लकवा' !

भगवन मुझको आज बचा लो

नित्य मार मैं खाता हूँ, शाला कभी न जाता हूँ।
क्रूर निर्दयी बड़े गुरु जी, खाकर आते शक्कर सूजी।
बेंत देख डर जाता उनका, काँपा करता जैसे तिनका।
छोटा-सा मेरा अपराध, पाठ नहीं होता है याद।
भगवन मुझको आज बचा लो, या गुरु जी को पास बुला लो।

—लेखक, 'श्री गुरुघंटाल'

हमारी-चित्रावली

सम्राट् जार्ज षष्ठ और सम्राज्ञी एलिज़बेथ, राजतिलक के बाद बकिंघम पैलेस में लिया गया चित्र।
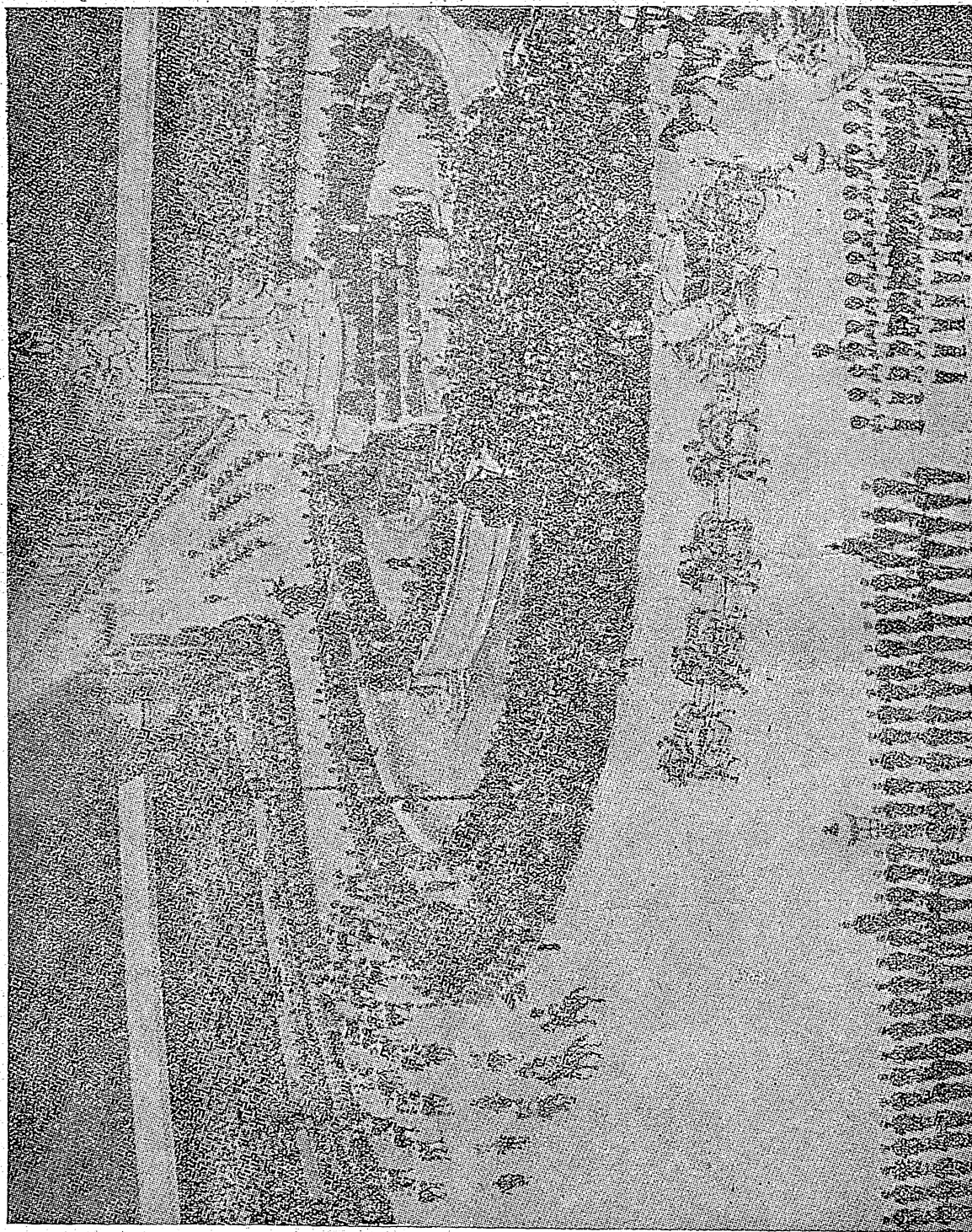
लन्दन में सम्राट् की सवारी का जुलूस । यह चित्र उस समय उतारा गया था जब जुलूस बकिंघम राजमहल से राजतिलक के लिए रवाना हुआ था ।
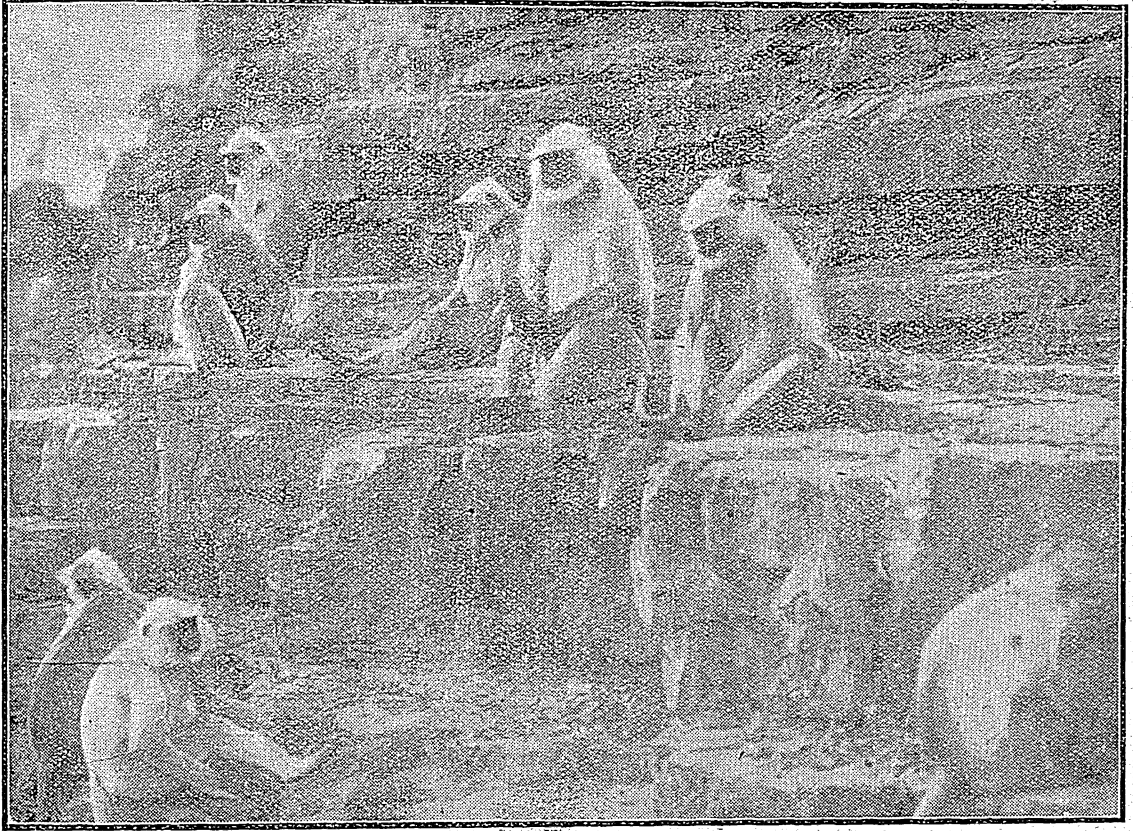
वृन्दावन में लङ्गूरों की पंचायत। वहाँ की म्युनिसिपैल्टी ने इन बन्दरों को अब सताना शुरू कर दिया है और पकड़ पकड़कर दूर भिजवा रही है। इस समय शायद वे इसी बात पर विचार कर रहे हैं।
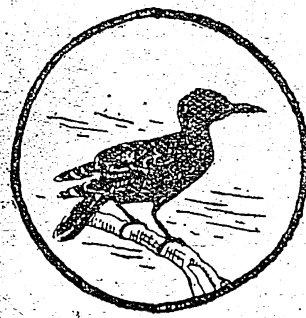
ये दोनों चिड़ियाँ एक ही घेरे में हैं या अलग अलग। ज़रा दोनों के बीच में नाक रखकर देखिए।

सुधीर गुप्त है इनका नाम ।
बाल-सखा पढ़ना है काम ॥

खेल रही सरला क्या खेल ।
आओ इससे करलें मेल ॥
प्रेषक—कुमारी सावित्री मक्कड़
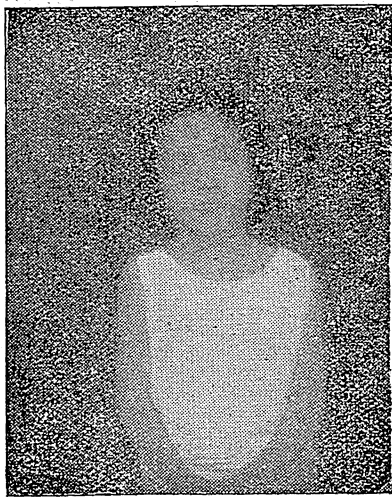
मुमताज़ फ़ातमा उर्फ़ लक्ष्मी, उम्र ४ वर्ष
प्रेषक—श्री टिल्लू ख़ाँ
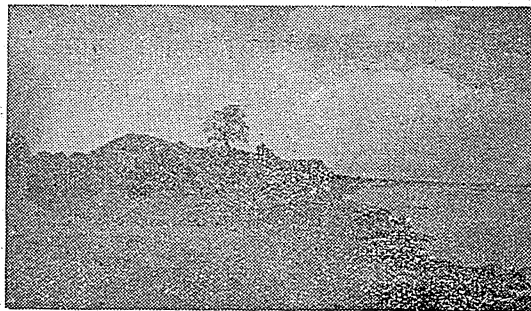
प्रयाग के पूर्व ओर गंगा-तट पर 'लच्छागिरि' नाम का एक स्थान है। किंवदन्ती है कि महाभारत में जिस वारणावत् के 'लाक्षागृह' का उल्लेख है वह यहीं स्थान है। चाहे जो हो, इस समय यह एक स्थानीय तीर्थ के रूप में है और ख़ास ख़ास पर्वों पर यहाँ हज़ारों यात्रियों का मेला होता है। यह चित्र हमें पं० अयोध्यानाथ मिश्र के सौजन्य से मिला है।

छोटों के कारनामें

लेखक, श्रीयुत अब्दुल रहमान ('रहमान' सागरी)

संसार में कोई छोटा और कोई बड़ा नहीं। सचमुच में छोटेपन और बड़ेपन का कारण ही हमारे छोटे और बड़े होने का असली कारण है। बड़ा वही है जिसके बड़े काम हैं और जिसके काम छोटे हैं यानी अच्छे नहीं हैं वही छोटा है। बड़े से बड़े किसी राजा के घर में पैदा होनेवाला बालक सिर्फ़ इस कारण बड़ा नहीं कहलाया जा सकता है कि वह एक बड़े घराने में पैदा हुआ है; और छोटे से छोटे एक भीख माँगनेवाले का बालक भी केवल इसलिए छोटा नहीं कहलाया जा सकता है कि उसने एक ग़रीब ख़ानदान में जन्म लिया है।

देखा जाता है कि बड़े से बड़े और ऊँचे से ऊँचे ख़ानदान के बालक आगे चलकर अपनी निज की करतूतों के कारण छोटों में गिनने योग्य हो जाया करते हैं; और एक ग़रीब बालक जो एक ग़रीब घर में पैदा हुआ है सिर्फ़ अपनी योग्यता और बुद्धिमानी के बलबूते पर आगे चलकर बड़ा नामधारी हो जाता है।

सच तो यह है कि किसी ऊँचे ख़ानदान में पैदा होकर यदि किसी ने नाम पैदा किया तो कोई तारीफ़ और बड़ाई की बात नहीं। जब कि उसे तमाम साधन प्राप्त हैं तो ऐसी दशा में उसका उन्नति करके आगे बढ़ जाना कोई कमाल की बात नहीं। कमाल तो तब है जब एक छोटे घर में पैदा होकर भी एक बालक ऐसे काम करके दिखलाये जो उसे ऊँचे आसन पर बैठने का अधिकारी बना दे।

बहुतेरे बालक शायद यह सोचा करते हैं कि हम ग़रीब हैं। हम कर ही क्या सकते हैं? यह उनकी बड़ी भारी भूल है। छोटों ने तो ऐसे ऐसे काम करके दिखलाये हैं कि जिनको देखकर दुनिया दंग है। हम यहाँ ऐसे लोगों के कुछ उदाहरण दे रहे हैं जिससे यह बात भली भाँति सिद्ध हो जावेगी।

क्रामवेल—यह एक शराब बनानेवाले का बालक था, जो आगे चल कर इँग्लेंड का बादशाह हुआ।

होमर—एक भिखारी था, जो आगे चलकर यूरोप का सबसे पहला कवि माना गया।

कोलम्बस—एक जुलाहे का लड़का था; जिसने जहाज़ चलाने में वह कमाल पैदा किया कि अमेरिका का पता लगाया जिसका यूरोप आज तक ऋणी है।

वाशिंगटन—मामूली किसान का बालक था। अमेरिकावाले इसे "अमेरिका की आजादी का बाप" कहते हैं।

शेक्सपियर—यह वह कवि है जिसके गीत आज इँग्लेंड का बच्चा बच्चा गाया करता है। यह ऊन साफ़ करनेवाले का लड़का था। आगे चलकर ड्रामा लिखने में ऐसा कमाल

पैदा किया कि आज भी जिसकी फ़िल्में तैयार करने में फ़िल्म-कम्पनियाँ गर्व अनुभव करती हैं।

होल्कर—चरवाहे थे। आगे चलकर इन्दौर के राजा हुए।

शिवाजी—एक साधारण घराने के बालक थे। आगे चलकर अपनी कोशिशों से राजा कहलाये।

मुस्तफ़ा कमाल पाशा—एक मामूली सिपाही थे। इन्होंने ऐसे ऐसे कारनामें दिखलाये कि आज टर्की के डिक्टेटर बने हुए हैं।

रज़ाशाह पहिलवी—ये भी एक सिपाही थे। उन्नति करते करते आज ईरान के बादशाह बने हुए हैं।

स्टालिन—पहले बिलकुल ग़रीब था। बढ़ते बढ़ते आज रूस का सबसे बड़ा नेता बना हुआ है।

मुसोलिनी—एक लुहार का लड़का था। आज इटली का मुख़्तारकुल बना हुआ है।

हिटलर—एक देहाती आदमी का लड़का था। आज जर्मनी का भाग्य-विधाता बना हुआ है।

कोकिल

लेखिका, श्रीमती रामकुमारी चौहान

कैसी कोकिल बोल-बोल कर,
डाल-डाल पर डोल रही है।
कुहू-कुहू के मृदु स्वर में क्यों,
अन्तर के पट खोल रही है॥

फुदक-फुदक कर भोली भाली,
जग पर मुग्ध मोहिनी डाली।
किसके स्वागत में मतवाली,
जीवन का सुख तोल रही है॥

है कुरूप तू काली-काली,
पर वसंत की छवि उजियाली।
मन को बनी मोहनेवाली,
कानों में रस घोल रही है॥

मधुर कूक से आम्र-डाल पर,
किसके गुण गाती जी भर कर।
मृदु ध्वनि में सन्देसा घर-घर,
देकर किसे टटोल रही है॥

सुन तेरी कल कोयल बानी,
दुनिया बनती है दीवानी।
ओ प्रभात की कोकिल रानी,
कौन मन्त्र तू बोल रही है॥

है न पास कुछ रुपया पैसा,
पर वाणी का यह गुण ऐसा।
प्रेम दरसता तुझ पर कैसा,
जो जग को ले मोल रही है॥

शिशु तुम भी कोमल बन जाओ, मधुर बोल अनमोल सुनाओ।
कोयल का भी दिल ललचाओ, आशा चूम कपोल रही है॥

मेरा हुक्क़ा-प्रेमी भैया !

लेखक, श्रीयुत सीताराम भुक़रकावाला

प्रतापचन्द है इनका नाम,
हँसना, हँसाना इनका काम।
हुक्क़ा रोज़ यह पीते हैं,
दो वर्ष अभी ही बीते हैं ॥

× × ×

ऐनक को वर्ष हुआ है एक,
रखेंगे यह हमारी टेक ।
मुझे बहुत यह प्यारे हैं,
मेरी आँखों के तारे हैं ॥

× × ×

इनको देख दूर दुःख भगा,
मैं हूँ इनका भाई सगा ।
लेकिन आप न हुक्क़ा पीना,
करना इनकी नक़ल कभी ना ॥
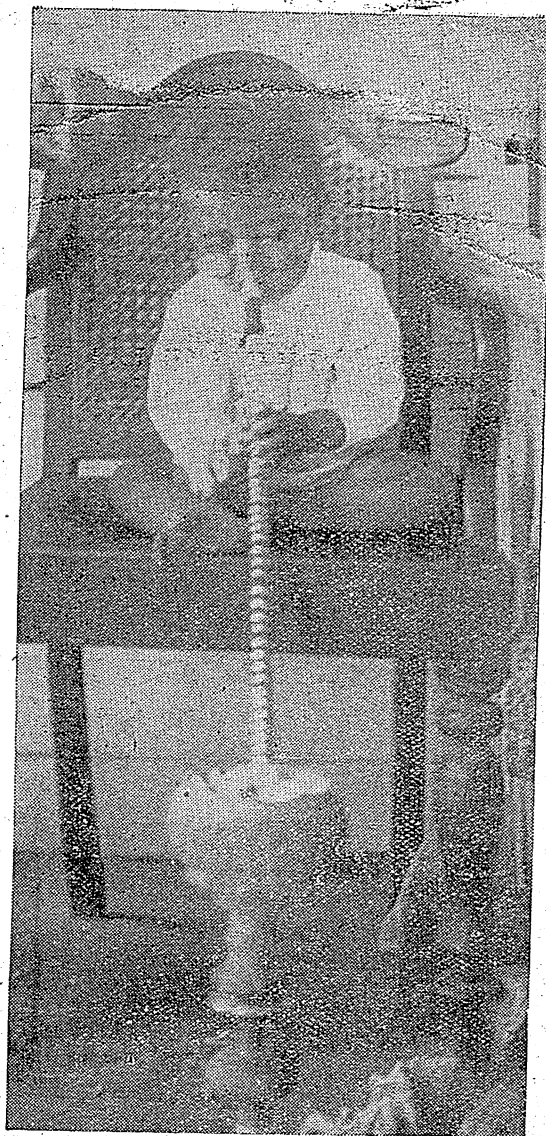
चन्दादीदी की चिट्ठी

प्यारे रविनन्दन—नानी को तुमने बड़ा मज़ेदार पत्र लिखा है। तुम्हारे पत्र से उसका ख़ूब दिल बहला पर उसकी नातिनें वापस आ गई हैं और उनमें उसका मन रम गया है। इसलिए उसने मुझसे कहा है कि मैं तुम्हारे सुन्दर पत्र के लिए उसकी ओर से धन्यवाद दूँ। तुम्हें कहानियों का शौक़ है। बाल-सखा के इस अङ्क में तुम्हें बड़ी मज़ेदार कहानियाँ पढ़ने को मिलेंगी।

प्यारे नैपेलियन और फ़्रांसिस—तुम्हारे पिता तुम्हारे मुँह में चीनी के बदले कभी कभी फिटकरी डाल देते हैं। यह सुनकर मुझे कुछ हँसी आई। जो ज़्यादा लालची होते हैं उन्हें इस तरह धोखा खाना ही पड़ता है। मीठा खाने की आदत कम डालो।

प्यारी कुमारी दयावती शर्मा—बाल-सखा के सम्पादक के नाम तुम्हारी चिट्ठी मैंने भी पढ़ी। ग्रीष्म की छुट्टी बिताने का तुम्हारा तरीक़ा प्रशंसनीय है। वास्तव में ग्रामीणों को पढ़ाने से बढ़कर छुट्टी बिताने का अच्छा तरीक़ा और कुछ नहीं हो सकता। तुम्हारे ग्राम का नाम "हटा" कैसे पड़ा? क्या तुम यह बता सकती हो?

प्यारे योगेन्द्रकुमारसिंह—तुम्हारे तुतलाने की बात मज़ेदार है। क्या अच्छा होता कि मैं तुम्हारे घर आकर किसी दिन तुम्हारा तुतलाना सुन सकती। बड़े होने पर यह आदत छूट जायगी। डरो मत।

प्यारे सुरेन्द्रविक्रम जी—नानी बूढ़ी हो गई है इस पर उसका मज़ाक़ उड़ाना ठीक नहीं। एक दिन सभी बूढ़े होंगे।

प्यारी कुमारी विपुला—मुझे यह जानकर ख़ुशी हुई कि तुम्हारी कहानी बाल-सखा में न छपेगी तो भी तुम निराश नहीं होओगी और नई नई कहानियाँ भेजती रहोगी। तुम साहसी लड़की हो। तुम्हें ज़रूर सफलता मिलेगी।

प्यारे महेन्द्रप्रकाश माथुर—तुमने यह बहुत ठीक लिखा है कि तुम्हारी कहानी अच्छी हो तभी बाल-सखा में छापी जाय वरना नहीं। न छपने से तुम निराश न होओगे। तुम्हारे ऐसे विचार की मैं तारीफ़ करती हूँ। एक दिन तुम्हारी कहानियाँ बहुत बड़े बड़े पत्रों में छपेंगी।

बाल-सखा के प्यारे पाठकगण—इस पृष्ठ पर मैं प्रतिमास तुम्हारे पत्रों का उत्तर दूँगी। मुझे ख़ुशी है कि कई वर्ष पूर्व बाल-सखा के सम्पादक जी से मैंने जो वादा किया था उसे आज पूरा कर रही हूँ।

सब बच्चों की प्यारी

'चन्दादीदी'

पता—c/o सम्पादक बाल-सखा

सम्पादक जी,

बाल-सखा का मैं बहुत दिनों तक ग्राहक रह चुका हूँ, हिन्दी का शौक़ होने के कारण ही मैं बाल-सखा का अत्यन्त प्रेमी हूँ, अभी हाल ही में यहाँ पर "हिन्दी प्रचारिणी साहित्य-सभा" का जलसा हुआ था, इसके कार्यकर्ताओं ने हिन्दी-भाषा से विशेष सहानुभूति प्रकट की थी।

उसी समय मुझे यह प्रतीत हुआ कि आपसे निवेदन करूँ कि बाल-सखा के पाठक तथा पाठिकाओं-द्वारा आप जगह जगह पर अनेक सँस्थायें खुलवायें जिनके द्वारा हिन्दी का प्रचार हो व बाल-सखा मध्यस्थ बने।

अगर आप मेरी राय से सहमत होंगे तो मैं आपको अवश्य धन्यवाद देता हूँ। हिन्दी का प्रचार तो वैसे और भी कई मासिक पत्र कर रहे हैं। परन्तु मैं बाल-सखा से उत्तम कोई मासिक पत्र नहीं समझता। इसी के द्वारा हम उन लोगों में हिन्दी पढ़ने का शौक़ पैदा कर सकते हैं जिन्हें नागरी लिपि का ज्ञान भी नहीं है जिस प्रकार अन्य पत्रिकाओं ने अपनी कई एक Clubs and Leagues खोल रक्खी हैं उसी प्रकार यह भी खोली जा सकती है।

अन्त में मैं श्रीमती रत्नकुमारी वर्मा को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बालकों को बाल-सखा मुफ़्त में देने का निश्चय किया है।

आपका

—आर० पी० दुबे

चुटकुले

हमें खेद है कि हम उन सब चुटकुलों को नहीं छाप सके जो हमारे पास हमारे प्यारे पाठकों ने भेजे हैं। भेजनेवालों के नाम के साथ कुछ चुने चुने नीचे छापे जाते हैं।

(१)

एक समय की बात है कि अकबर बादशाह ने वीरबल से पूछा, कि वीरबल संसार में ऐसे कितने श्रेष्ठ नाम हैं जिनके अन्त में "बर" शब्द आये। उसने कहा, सियाबर और राधेबर और वीरबर। अकबर ने जवाब दिया, क्यों वीरबल "अकबर" नहीं? वीरबल ने कहा, वैसे तो "गोबर" भी है।

—राकेशमोहन जोशी

(२)

माँ (बेटे से)—बेटा, उस काम को कभी नहीं करना चाहिए जिसमें मार खानी पड़े।

बेटा—माँ, तब तो पढ़ने में भी मार खानी पड़ती है। इसलिए अब से स्कूल पढ़ने न जाऊँगा।

—कुमारी श्री सावित्री देवी

(३)

जाड़ा के आ जाने पर एक दिन एक भेड़िया आग के पास जाता था। तब तक रास्ते में ही उसे एक भालू मिला।

भेड़िया—भालू भाई, भले मिले।
भालू—कहो भेड़िये ! कहाँ चले।
भेड़िया—जाड़े से डर जाता हूँ।
आग तापने जाता हूँ॥
भालू—जाड़े से मत डरा करो।
कम्बल मुझसे लिया करो॥
भेड़िया—"दाम
भालू—दाम फिर दे देना।"
भेड़िया—"जो चाहे सो ले लेना।"

—सुरेन्द्र विक्रम

(४)

जब एक छोटे-से बच्चे को उसकी माँ ने मारा तो वह डर के मारे चारपाई के नीचे जा छिपा। थोड़ी देर में उसका बाप आया और उसे बुलाने के लिए चारपाई के नीचे झाँकने लगा तो लड़का बोला—बाबा ! क्या तुम्हें भी अम्मा ने मारा है ?

—भारतलाल साह रानीखेत

(५)

महाराज पृथ्वीराज के राजकवि "चन्द" थे। दरबार में एक बार कुछ तातारी क़ैदी पेश किये गये। क्योंकि मुहम्मद गोरी ने हमला किया था। वह पृथ्वीराज की सेना से हार कर भाग गया था। कुछ लोग पकड़े गये थे। वे ही ये तातारी क़ैदी थे। ये क़ैदी फ़ारसी बोलते थे जो दरबार में कोई नहीं समझता था।

इतने में राजकवि चन्द जिनका पूरा नाम चन्दवरदाई था आये। महाराज पृथ्वीराज ने पूछा—

"कविराज ! अगर कोई फ़ारसी बोले तो क्या तुम उसे समझ सकते हो ?" चन्द—"जी हाँ, समझ लूँगा बशर्ते कि वह हिन्दी में बोली जावे।"

सब लोग हँसने लगे। महाराज इस विचित्र ढंग के जवाब पर कि चन्द फ़ारसी नहीं जानते बहुत प्रसन्न हुए।

—देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए०, एल-एल० बी०

(६)

एक मर्तबा मेरे नौकर ने मुझसे कहा—हुजूर, आपको कोई पूछ रहा है।

मैंने कहा—क्या कहा, कोई मुझे पूछ रहा है। क्या वह भला आदमी-सा जान पड़ता है।

नौकर—हुज़ूर, वह भला आदमी नहीं जान पड़ता वह तो आप ही जैसा है।

—विजेन्द्रनाथ अग्निहोत्री

पहेलियाँ

इस मास में हमारे पास पाठकों ने पहेलियाँ भी बहुत भेजीं। कुछ चुनी-चुनी हम नीचे छपाते हैं—

(१)

पैर कटे तो पुत्र बनेगी,
कमर कटे तो बने शहर।
इसने ही था कृष्णचन्द्र को,
दूध पिलाया मिला ज़हर।

(२)

सीस कटे तो रस्ता सकरी,
नहीं ढोर है औ न बकरी।
पाँव कटा औ हुई लड़ाई,
इसको मत तुम छेड़ो भाई।
इस नाम से चिढ़ते साथी,
जंगली है, न गधा न हाथी।

—महादेवलाल बरगाह

(३)

१९ दुवन्नियाँ, चवन्नियाँ मिली हुई हैं। बताओ कितनी दुवन्नियाँ और कितनी चवन्नियाँ हैं जब कि कुल का जोड़ चार रुपया हो।

—महाराज कृष्ण

(४)

आगे रहूँ कबूतर के मैं, अजी चोंच मत कह देना।
बकरी बीच लखोगे मुझको, कहीं न पेट समझ लेना॥
पाओगे बत्तक के पीछे, मैं नहीं पंख या पर हूँ।
गौर करोगे तो समझोगे, छोटा-सा अक्षर हूँ॥

(५)

काली कुतिया झबरे कान।
टोपी देके चली बिकान॥

(६)

हरी टोपी, लाल बदन।
कौन देश से, आये सजन॥

—रमादत्त शुक्ल

(७)

बिना धड़ के सिर पर जटा दिखावे

—राजकुमारी देहरादून

(८)

दो भाई देखने के चाकर, दो भाई सुनने के चाकर, दो भाई सूखे लक्कड़, चार भाई मीठे शक्कर चार भाई चलने के चाकर और एक भाई मक्खी उड़ाने का चाकर।

—हरगोविन्द नेमा

(९)

चार घड़े दूध से भरे।
जो की हैं, बिना ढक्कन उलटे पड़े॥

—बनवारीलाल डालमीया

(१०)

एक खेत में ऐसा हुआ,
आधा बगुला आधा सुआ।

—शकुन्तला देवी

(११)

लड़का पेट में डाढ़ी उड़े हवा में ।

—महीपालकुमार जैन ।

उत्तर

१—पूतना । २—जंगली । ३—१३ चवन्नियाँ, ६ दुवन्नियाँ । ४—"क" अक्षर । ५—भाँटा । ६—मिर्चा । ७—नारियल । ८—गाय । ९—गौ के थन । १०—मूली । ११—भुट्टा ।

नहीं छपेगी

खेद है कि हम नीचे लिखी रचनायें स्थानाभाव के कारण नहीं छाप सकेंगे :—

लाला सियारमल—वसंतलाल विश्वकर्मा कानपुर । आशा नहीं—रामेश्वरप्रसाद । लौंग का टापू—श्री वीरेन्द्रकुमार गुप्त महेशखूँट। फूल—छठुलाल गुप्त बिहारी जगदीशपुर। नटखट रामभगत और चुहे की कथा—कन्हैयालाल मिंडा सिसवाला । भयङ्कर परीक्षा—मास्टर बदलूराम शर्मा । तिलस्मी किला—सच्चिदानन्द सहाय । ककड़ी और लकड़ी की बातचीत—ओम्प्रकाश द्विवेदी कानपुर । भारत के शूरवीर—ब्रह्मप्रकाश शर्मा अलीगढ़ । भारत माता—मोहनचन्द्र जोशी 'अरुण' । अँगरेज़ी फ़ैशन—पशुपति लक्ष्मण खेड़ीकर लश्कर । हित की बात—रुक्मिणी बाई शुक्ल कटनी । आओ गाओ-चीटीं—अनिरुद्धकुमार और कन्हैयाप्रसाद गोरखपुर ।

पहेली-मेला झोला—राजकिशोरप्रसादसिंहभूमि । कब अच्छे बन पाओगे तुम—अक्षयकीर्ति दीक्षित मेरठ । सूर्योदय—व्रजलाल वासिष्ठ कमालिया । प्रेस का आविष्कार कैसे हुआ—श्री सुरेन्द्रविक्रम ।

कलम-सखा

श्रीमान् सम्पादक जी—

प्रणाम

मुझे टिकट-संग्रह का अत्यन्त शौक़ है और मेरे पास काफ़ी टिकट सब तरह के हैं । मैं प्यारे बाल-सखा के अन्य पाठकों से अपने इस शौक़ को पूरा करने के लिए पत्र-दोस्ती भी करना चाहता हूँ । मेरे और भी शौक़ हैं—जैसे—कैंची सिगरेट के टिकट, लिप्टन चाय के डिब्बों के लेबिल, सब तरह के सिक्के, तसवीरों के पोस्ट-कार्ड, हर चीज़ का सैम्पल (नमूना) मँगाना, हर कम्पनी का कैटलाग मँगाना इत्यादि ।

—महेन्द्रप्रकाश माथुर ।
c/o नाजिम साहब कोटपुतली
राजपूताना

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.
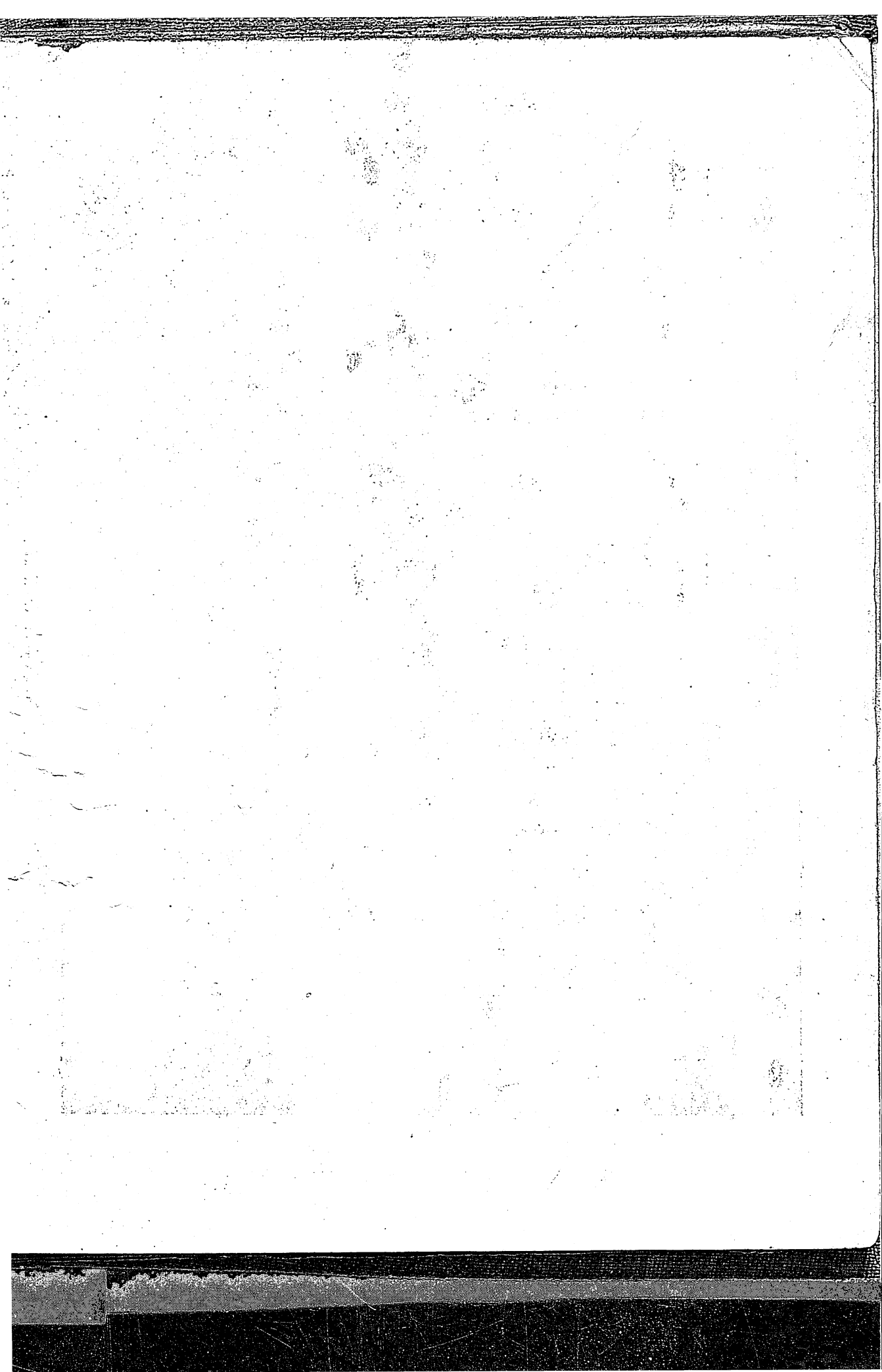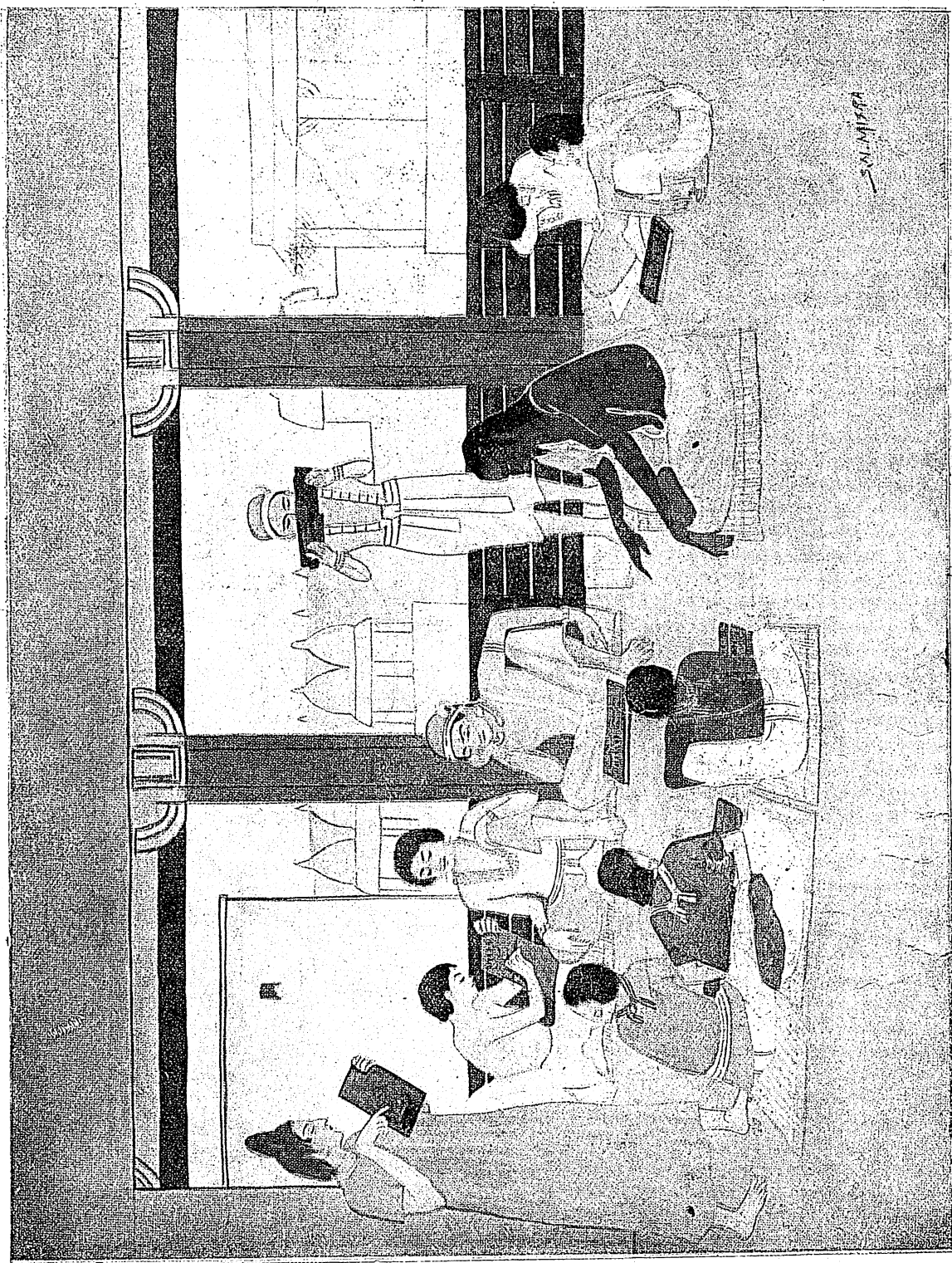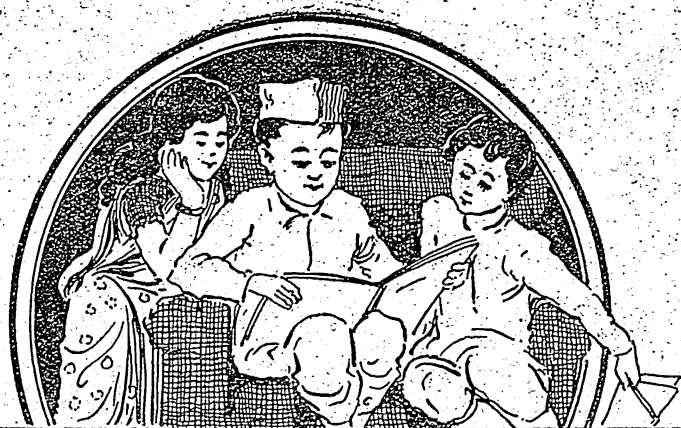
सम्पादक—श्रीनाथसिंह

वर्ष २१] सितम्बर १९३७—भाद्रपद १९९४ [संख्या ९

विफल वरदान

लेखक, श्रीयुत बल्लभदास बिन्नानी

देवी से वर लिया किसी ने,
लेकर उसका ही अवलम्ब।
संकट में जब तुझे पुकारूँ,
मुझे उबार दीजियो अम्ब॥

काँप उठा फँस एक बार वह,
रण में मृत्यु-नृत्य-सा हेर।
घिग्घी बँधी तदपि ज्यों, त्यों कर,
उसने वहाँ लगाई टेर॥

कहा प्रकट होकर काली ने—
"खड्ग उठा, है तेरी जीत।"
"उठा सकूँगा न मैं खड्ग तो",
बोला उनसे वह भयभीत॥

"तो फिर भाग, न कोई तुझको,
पकड़ सकेगा, जा उस ओर।
हाय! भाग भी नहीं सकूँगा,
जकड़ गये हैं पैर कठोर॥

"न तो खड्ग लेगा, न भगेगा",
कहा भवानी ने धिक पापि!
ऐसे कायर की सहायता,
मैं भी करती नहीं कदापि॥

—

बेतार की तारबर्क़ी के आविष्कारक श्री मार्कोनी

लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर तोषनीवाल

बेतार की तारबर्क़ी के आविष्कारक, मार्कोनी के देहान्त से वैज्ञानिक संसार में महान् शोक छा गया है। आपकी मृत्यु से जो हानि विज्ञान को हुई है उसको पूरा करनेवाला अभी तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता। विशेष कर बेतार की तारबर्क़ी तथा टेलीविज़न की उन्नति में तो आपकी मृत्यु से बहुत ही गहरा धक्का लगा है। मार्कोनी ने जिस प्रकार से अपनी ६३ वर्ष की आयु तक साहस, उद्योग तथा परिश्रम से कार्य किया वह बहुत ही सराहनीय है। आज हम उन्हीं के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

बेतार की तारबर्क़ी के जन्मदाता गुलियो मार्कोनी का जन्म २५ अप्रेल सन् १८७४ ई० को इटली के बोलोना नामक नगर में हुआ था। आपके पिता एक इटैलियन व्यापारी व माता एक आयरिश महिला थीं। बचपन ही से आपकी रुचि विज्ञान की ओर विशेष थी। जब आप फ्लोरेंस के विद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, आप विद्युत्-विज्ञान के अध्ययन के समय इतना उत्साह दिखलाते थे कि प्रोफ़ेसर लोग दाँतों तले उँगली दबाने लगते थे। और भूरि भूरि प्रशंसा करने लगते थे।

जून सन् १८९६ ई० में आपने एक मशीन बनाई जो कि तारबर्क़ी की ख़बरें भेज सकती थी। इस नये आविष्कार का प्रदर्शन करने के लिए आप विलायत गये। वहाँ ब्रिटिश पोस्ट आफ़िस के चीफ़ इंजीनियर सर विलियम प्रीस ने इस नई खोज पर आपको बधाई दी। जून सन् १८९७ में आप बेतार की तारबर्क़ी से साल्ज़बरी के मैदानों से चार मील दूर तक समाचार भेजने में सफल हुए।

इसी वर्ष प्रिन्स आफ़ वेलस (एडवर्ड सप्तम) के घुटनों में चोट आगई। अतएव आपको कावेस की खाड़ी के राजघरानों में आराम करने की सलाह दी गई। वहाँ शाहज़ादे साहब तीन सप्ताह तक बीमार रहे। इसी समय मार्कोनी को बेतार की एक मशीन राजकुमार के घर में तथा दूसरी ओसबर्न हाउस में लगाने की प्रार्थना की गई। मार्कोनी ने ऐसा ही किया तथा राजकुमार की बीमारी का हाल वे अपनी मशीन-द्वारा भेजने में सफल हुए।

फिर तो मार्कोनी अपने आविष्कार में

और भी शीघ्रता के साथ उन्नति करने लगे। सन् १८९९ ई० में आपने फ्रांस की सरकार से इजाज़त ले के विमीरेक्स में एक खंभा गाड़ा तथा बेतार के तारबर्क़ी की एक मशीन लगाई। आपने इसी प्रकार का प्रबन्ध डोवर में भी किया। और इस प्रकार आप इँगलिश चैनेल (३२ मील दूर तक) के एक सिरे से दूसरे सिरे तक अपनी मशीन के द्वारा समाचार भेजने में सफल हुए। इसी वर्ष बेतार की तारबर्क़ी से एक जहाज़ डूबने से बचाया गया। तब से हर एक अच्छे जहाज़ पर आपकी मशीन का विशेष तौर से उपयोग किया गया।

सन् १९०१ ई० में मार्कोनी ने रूस के ज़ार तथा इटली के बादशाह को बेतार की तारबर्क़ी से आया तार दिखलाया। इसके पश्चात् आपकी मशीन का जहाज़ों में आम तौर से उपयोग होने लगा।

कनाडा जैसे सुदूर देश से बेतार की तारबर्क़ी से वहाँ के गवर्नर-जनरल ने मार्कोनी के पास ख़बर भेजी। इस प्रकार १२ दिसम्बर सन् १९०१ ई० में बेतार की तारबर्क़ी ने अटलांटिक महासागर पर विजय पाई। कुछ दिनों के बाद मार्कोनी ने इटली व इँगलैण्ड के राजाओं के पास भी बेतार की तारबर्क़ी से ख़बर भेजी। इस आविष्कार का महासमर (१९१४-१८) में भी सदुपयोग किया गया। सन् १९१८ में इँगलैण्ड से आस्ट्रेलिया तक ख़बर भेजी गई। इस प्रकार आपके आविष्कार

स्वर्गीय मार्कोनी

का दिन दूना तथा रात चौगुना प्रचार होने लगा।

आपके आविष्कार से प्रसन्न होकर रूस के ज़ार और इटली के बादशाह ने आपको श्रेष्ठ उपाधियों से सुशोभित किया। सन् १९०९ में आपको भौतिक विज्ञान में नोबुल प्राइज़ मिला।

सन् १९१९ की पेरिस की सन्धि में आप इटली के डेलीगेट बना कर भेजे गये थे और सन्धि पर इटली की ओर से हस्ताक्षर किया।

अब आपने फिर अपनी नई खोज के प्रचार के लिए भ्रमण करना शुरू किया। आपने १९२३-२४ में जहाज़ों पर रह कर
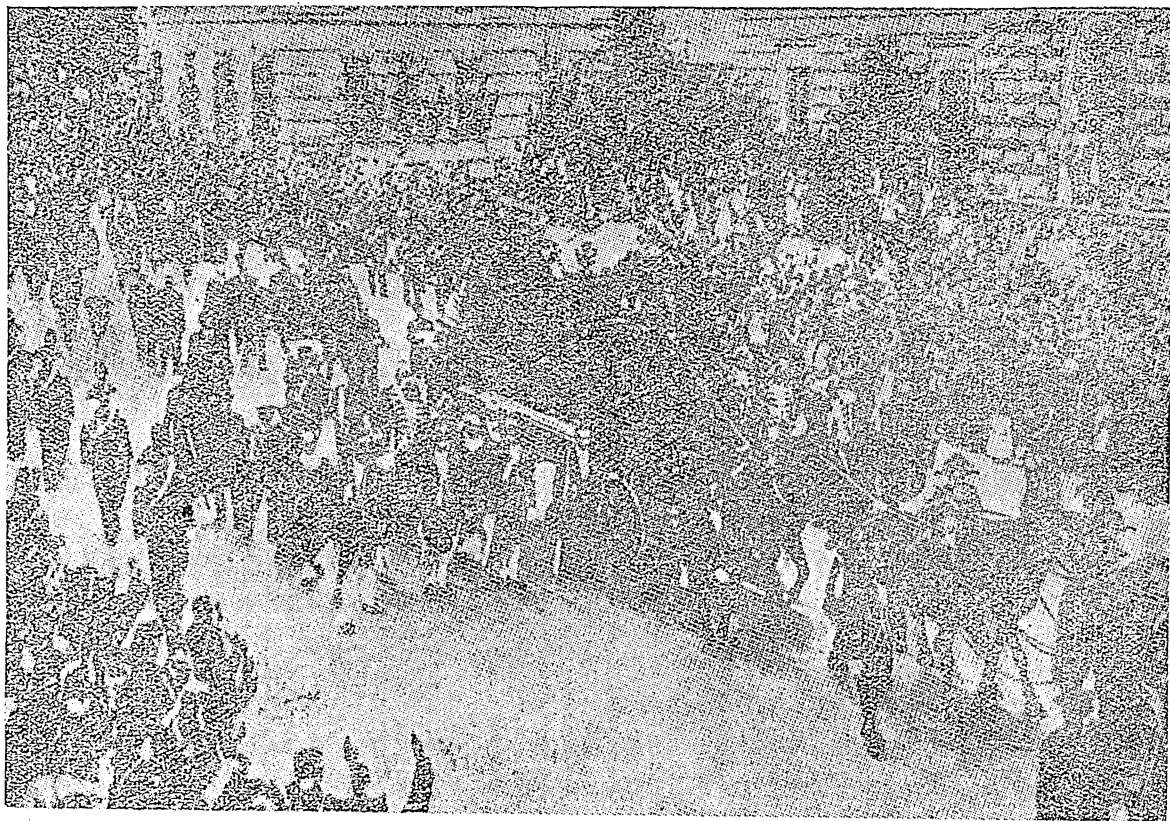
मार्कोनी के जनाज़े का एक जलूस

बेतार की मशीन को ठीक तौर से काम लेने का रास्ता बतलाया।

सन् १९२९ ई० में इटैलियन सरकार ने आपको मार्क्विस बनाकर आपका शाही मान किया। एक वर्ष पश्चात् आप इटैलियन एकेडमी के सभापति बनाये गये। अंतिम वर्षों में आप आल्ट्रा वायोलेट किरणों के आविष्कार में लगे थे। आपका नाम टेलीविज़न संसार में भी अमर रहेगा। आपने जुलाई सन् १९३६ में ई० एम० आई० नामक टेलीविज़न सेट तैयार किया जो कि बहुत ही सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। इसी सेट-द्वारा अभी हाल ही की आक्सफ़ोर्ड केम्ब्रिज की नौका-प्रतियोगिता का चित्र दूर दूर के देशों में भेजा गया था। इन दिनों आप मृत्यु-किरण की खोज में लगे थे और उसमें भी आपको काफ़ी सफलता मिली।

आपकी मृत्यु इसी २० जुलाई के प्रातः-काल ३—३० बजे हुई थी। इस समय आपकी आयु ६३ वर्ष की थी। आपकी मृत्यु बिलकुल ही अचानक हुई क्योंकि आप ज़्यादा बीमार भी नहीं थे। आपकी मृत्यु से इटली में महान

शोक छा गया। आपके शव को शाही धूम-धाम से दफ़न किया गया। इस समय लगभग २,००,००० मनुष्य आपको अपनी अंतिम श्रद्धांजलि देने इकट्ठे हुए थे। इटली के भाग्य-विधाता सिगनर मुसोलिनी ने भी आपके शव के पास जाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। आपकी मृत्यु के समय दो प्रमुख रोमन डाक्टर आपकी चिकित्सा कर रहे थे। आप १८ जुलाई को रोमन-धर्म के नेता पोप से भी मिले थे। यही आपकी पोप से अंतिम भेंट थी। यह विश्वास किया जाता है कि सिगनर मार्कोनी अपनी पत्नी तथा इकलौती पुत्री के लिए ५०,००,००० पौंड की सम्पत्ति छोड़ गये हैं।

श्री मार्कोनी अपनी सदी के महापुरुषों में थे। आपकी मृत्यु से सारे वैज्ञानिक जगत् में शोक छा गया है। जब तक बेतार की तारबक़ीं रहेगी, आपका नाम स्मरण किया जायगा।

चूहों की नानी

लेखिका, श्रीमती रामकुमारी चौहान झाँसी

बिट्टी ने है बिल्ली पाली,
है सफ़ेद कुछ काली-काली।
दूध गाय का इसे पिलाती,
रोज़ प्रेम से इसे खिलाती॥
करती है यह काम अनोखा,
देख शेर का होता धोखा।
आँखें चमकीली हैं ऐसी,
बिजली की चमकन हो जैसी॥
सदा अँधेरे में लख लेती,
डर को रोज़ चुनौती देती।

चूहों को यह दूर भगाती,
इनसे सभी चीज़ बच जाती॥
प्लेग आदि फिर पास न आते,
चूहों के सब साथ सिधरते।
कहीं ज़रा-सी आहट पाते,
चूहे झट बिल में छिप जाते॥
म्याऊँ-म्याऊँ की सुन बानी,
चूहों की मरती है नानी।
सुन कर इसकी वीर कहानी,
बिट्टी बन जाती दीवानी॥

गोरिल्ले का शिकार

लेखक, श्री सुरेशकुमार "शर्मा"

मि० एम० सी० स्काट शिकारी-जगत् में एक विख्यात शिकारी हो गये हैं। वह एक बार अफ़्रीका-भ्रमण को गये थे, यहाँ पर उनकी एक गोरिल्ले के शिकार की एक मनोरंजक घटना दी जा रही है।

गर्मी के दिन थे। रात्रि के आठ बज गये थे। स्काट साहब नाइल नदी के किनारे एक गाँव की मेड़ पर कैम्प डाले हुए थे। स्काट साहब आराम से कैम्प में पड़े हुए थे। उनके दो हबशी अनुचर कैम्प के फाटक पर पहरा दे रहे थे। एकाएक उनके कानों में रोने-पीटने की आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने जाँच-पूछ की तो मालूम हुआ कि गाँव में एक औरत के बच्चे को गोरिल्ला उठा ले गया है। अनुचरों ने स्काट साहब को ख़बर की। साहब ने अपनी प्यारी राइफल हाथ में ली और गाँव को चल पड़े ? बच्चे की माँ छाती पीट पीट कर पागल हुई जा रही थी। मि० स्काट ने उसको सान्त्वना दी और पूछताछ की तो मालूम हुआ कि गोरिल्ला बच्चे को गाँव के दक्षिण की ओर ले गया है।

मि० स्काट तीन मज़बूत हबशियों को लेकर ठीक उसी तरफ़ चल पड़े। साहब पगपग पर ठोकर खाते थे। अँधेरे की वजह से कुछ सुझाई न देता था। एकाएक सामने की झाड़ी से कुछ खरखराहट मालूम पड़ी और एक काली-सी छाया उठ खड़ी हुई। यह गोरिल्ला था। उसकी चमकती हुई तेज़ और भीतर को धँसी हुई आँखें बिजली के लट्टू ऐसी मालूम हो रही थीं। उसकी उँचाई देखकर साहब दंग रह गये। वह किसी हालत में आठ फ़ीट से कम ऊँचा न होगा। उसको देख साहब मंत्रमुग्ध-से हो गये। उनके साथी हबशियों ने अपने लम्बे लम्बे बरछे उस छाया को लक्षकर कर फेंके। सपासप की आवाज़ से तीनों बरछे उस दैत्य के शरीर में तैर गये। पीड़ा और क्रोध से वह जन्तु गरजा और स्काट साहब को लक्ष करके उछला। तब तक साहब की मोहनिद्रा टूट चुकी थी। उन्होंने एकदम बायें हट कर दना-दन दो गोलियाँ चलाईं। भाग्यवश दोनों गोली निशाने पर बैठीं। एक भयानक चीत्कार मार कर वह ज़मीन पर गिर पड़ा फिर उठकर और अपने दोनों हाथों से अपनी छाती पीटते हुए पासवाले हबशी पर झपटा।

हबशी न भाग सका। उस भयंकर दैत्य ने उसको दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर उछाल दिया। वह बेचारा अभागा एक चीत्कार मार कर ज़मीन पर गिरा और बेहोश हो गया। जब तक गोरिल्ला फिर उस अभागे को उठाये तब तक साहब ने दो गोलियाँ एक के बाद

एक मार कर उसकी कपाल-क्रिया कर दी और वह भयानक गोरिल्ला एक चीत्कार मारकर ज़मीन पर निष्प्राण होकर गिर पड़ा। बच्चा वहीं पास झाड़ो में सही-सलामत मिल गया। हबशी भी हफ़्ते भर में चंगा हो गया। इस गोरिल्ले को साहब लदवाकर कैम्प में लाये तो तौल में वह साढ़े सात मन और लम्बाई में लगभग साढ़े आठ फ़ीट निकला। गाँव में स्काट साहब की जय-जयकार मनाई गई और उनकी राइफल की ख़ूब पूजा हुई।

गोधाम के निवासी

लेखक, श्रीयुत केशव मल्लिक, कलकत्ता

इँग्लेंड देश के एक भाग में, गोधाम नामक एक गाँव था।

प्राचीन समय में, वहाँ के निवासी, बड़ी ही मूर्खतापूर्ण बातें किया करते थे। कई वर्ष बीत गये, तीन आदमी उस गाँव में रहते थे।

उन्हें कोयल की कूक सुनने का बड़ा ही शौक़ था।

इँग्लेंड में, कोयल केवल ग्रीष्म-ऋतु के आरम्भ में ही गाया करती है।

किन्तु, वह तीनों चाहते थे, कि कोयल लगातार बारहों मास गाती ही रहे।

सोच-विचार के बाद उन्होंने कुछ करने का निश्चय कर लिया। अतः वे गाँव के बाहर एक मैदान में गये, और एक छोटे-से घेरे के चारों ओर एक ऐसी ऊँची दीवार बना दी, जिसके अन्दर-भीतर जाने का कोई भी मार्ग न था।

तब उन्होंने एक कोयल को पकड़ा, और उसे दीवार में एक छेद करके भीतर धकेल दिया। और कहने लगे, "अब तुम यहीं बन्द रहो, और वर्ष भर हमें मधुर गीत सुनाती रहो, नहीं तो हम तुझे कुछ भी खाने-पीने को नहीं देगें।"

आप जानते हैं कि कोयल ने क्या चतुराई की? वह उनके हाथ से निकलते ही उड़कर जङ्गल में पहुँच गई। तीनों आदमियों ने पहले तो कोयल को उड़ते देखा, फिर एक दूसरे की ओर आश्चर्य से देखने लगे।

"बहुत अच्छा" उनमें से एक ने कहा, "भाइयो! क्या आपने ऐसी घटना, कभी इससे पूर्व देखी या सुनी है? मेरी सम्मति में यह दीवार काफ़ी ऊँचो नहीं थी।"

समुद्र की तलहटी के आश्चर्यजनक दृश्यों की तसवीर उतारनेवाले केप्टन क्रेग की चौथी कहानी

आक्टोपस की पकड़ में

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

एक दिन केप्टन क्रेग के मित्र अर्नी क्रोकट ने क्रेग से समुद्र की तलहटी पर फ़िल्म का नाटक खेलने को कहा। उसने कहा कि तुम वीर बन कर ख़ज़ाने को ले जाने का प्रयत्न करना और मैं दुर्जन बन कर वहाँ तुमसे लड़ाई करूँगा। मैं तुम्हारी पवन की नली काट डालूँगा। समुद्र की तलहटी पर दो डुबकी मारनेवालों का यह मल्लयुद्ध बड़ा रोमांचकारी होगा।

क्रेग ने उत्तर दिया, मैं वीर का खेल करने को तैयार नहीं। पहले भी एक बार मेरी पवन की नली कट चुकी है; अब दुबारा अपने को उसी जोखिम में डालना मुझे पसन्द नहीं। परन्तु अर्नी नहीं माना।

वह बोला, तुम चाहे कुछ भी कहो, मैं नहीं मानूँगा। चाहो तो तुम्हारी पीठ पर एक आक्सीजन (प्राणवायु) की भरी हुई बोतल बाँध दी जा सकती है, ताकि जब मैं तुम्हारी पवन की नली काट डालूँ और तुम मरने का बहाना करो, तब भी तुम्हारे पास साँस लेने के लिए बहुत-सा पवन रहे।

इस पर क्रेग राज़ी हो गया और बोला, अच्छा हम यत्न करेंगे।

अब उन्होंने आवश्यक यंत्र बाँध लिये, डुबकी मारने की पोशाक पहन ली, समुद्र की तलहटी पर एक उपयुक्त स्थान चुन लिया, केमरे लगा लिये और नाटक खेलने लगे। जब सब तैयारी ठीक हो गई, तो उन्होंने केमरों की मोटरों को चला दिया, जिससे अपने आप चित्र उतरते रहे।

वीर का काम करने के कारण क्रेग ने एक डूबे हुए जहाज़ में रक्खे हुए ख़ज़ाने के संदूक़ को खोलना आरम्भ किया। उसने अभी उसे हाथ ही लगाया था कि दुर्जन आ पहुँचा और उसके साथ कुश्ती लड़ने लगा। डुबकी मारने की पोशाक पहन कर कुश्ती लड़ना कोई आसान काम नहीं। जब भी वे एक दूसरे को मरोड़ने लगते हैं उनके शरीर पर पहनी हुई भारी भारी चीज़ें बड़े भयानक बल के साथ खड़कती हैं और खोदों के आपस में टकराने से ऐसा धमाका होता है कि सिर में पीड़ा होने लगती है। फिर भी वे कुछ देर तक कुश्ती करते रहे। जैसा कि उन्होंने पहले से समझौता कर रक्खा था, जब क्रेग अर्नी को नीचे गिराने लगा, अर्नी ने एकाएक छुरी निकाली और—झर से काट डाला!—पवन की नली कट गई।

क्रेग ने सोचा, कोई बात नहीं। परन्तु उसे पवन का मिलना बंद न हुआ। इससे उसे आश्चर्य हुआ। दंग होकर उसने ऊपर अपनी पवन की नली की ओर देखा। वह साबूत की साबूत थी।

परन्तु अर्नी के खोद की खिड़की में से क्रेग को अर्नी का मुँह दिखाई देता था। उसने देखा कि जल से अभी बाहर निकाली हुई मछली की तरह वह अपने मुँह को कभी बंद करता है और कभी खोलता है। क्रेग इसका कारण समझ गया। उकसाहट में भूल से अर्नी ने अपनी ही पवन की नली काट डाली थी!

सौभाग्य से उसे तुरन्त ही पानी से बाहर खींच लिया गया, जिससे वह बच गया। इस घटना को याद करके बाद को वे ख़ूब हँसा करते थे।

यह तो भला एक खेल की बात थी। अब एक सचमुच की घटना सुनिए। यह भी उसी समुद्र में हुई थी। उसकी याद के तौर पर क्रेग के पास ग्राह या आक्टोपस नामक आठ भुजावाले भयानक जल-जन्तु की आठ फ़ुट लम्बी मूँछ रखी हुई है।

आक्टोपस की लम्बी भुजा कोड़े की भाँति क्रेग के लगी और टख़ने से उसे पकड़ लिया

जिस आक्टोपस से क्रेग को वास्ता पड़ा वह सोलह फ़ुट लंबा था। परन्तु मेक्सिको के निचले सागर-तट के सामने के समुद्र में और भारतीय महासागर में अट्ठाईस फ़ुट के आक्टोपस भी पकड़ गये हैं।

सागर के नीचे जल-जन्तु जो नाटक खेल रहे हैं उसकी फ़िल्म लेने के लिए क्रेग किसी उपयुक्त स्थान की तलाश कर रहा था। डुबकी मारने की पोशाक पहन कर वह कोई पचास फ़ुट नीचे उतर गया। वहाँ उसे समुद्र की पथरीली तलहटी में एक गहरा काला कुण्ड दिखाई पड़ा। उसने उसे खोजने का निश्चय किया।

वह कुण्ड बीस फ़ुट गहरा और व्यास में चालीस फ़ुट था। क्रेग बड़ी सावधानी के साथ उसके नीचे उतरा। तह के निकट पहुँच कर उसे पाँव रखने के लिए चट्टान का एक कँगूरा मिल गया। इस कँगूरे पर खड़े होकर उसने नीचे दृष्टि डाली तो वहाँ उसे एक बहुत ही

अद्भुत दृश्य देख पड़ा। वहाँ दो बड़े बड़े आक्टोपस लेटे पड़े थे। उनकी लंबी मूँछों ने फैल कर कुण्ड की सारी पेंदी को घेर रखा था।

पहले तो क्रेग के मन में आया कि जितनी जल्दी हो सके यहाँ से निकल जाऊँ। परन्तु उसने अपने उस आवेग को दबा लिया। उसने सुन रक्खा था कि जब तक डुबकी मारनेवाला आक्टोपस को क्रोधित या उत्तेजित न करे आक्टोपस उस पर आक्रमण नहीं करता। इसलिए उसने निश्चय किया कि मेरे लिए सबसे अच्छी बात यह है कि मैं चुपचाप खड़ा रहूँ और इस बात का पक्का पता लगाऊँ कि मुझे उन्होंने देख लिया है या नहीं।

इस प्रश्न का उत्तर उसे शीघ्र ही मिल गया। आक्टोपसों ने उसे देख लिया था। दोनों में से बड़े आक्टोपस ने अपनी भद्दी मूँछ को उसकी ओर बढ़ाया और उसकी टाँग को टटोलने लगा। क्रेग जहाँ तक हो सकता था निचला खड़ा रहा। वह अपने साथी एण्टोनियो की कही बात को याद करने लगा।

एण्टोनियो ने उसे बार बार ताकीद की थी कि जब कोई आक्टोपस तुम्हें पकड़ ले तो फिर हिलना-डुलना बिलकुल नहीं चाहिए, नहीं तो तुम मारे जाओगे। यदि तुम छुटने का यत्न करोगे तो वह उत्तेजित होकर तुम पर आक्रमण कर लेगा। परन्तु यदि तुम बिलकुल निचले खड़े रहोगे तो अधिक आशा यही है कि वह तुम्हें सब तरफ़ से केवल टटोल कर छोड़ देगा। फिर यदि तुम काफ़ी देर तक बिना हिले-डुले खड़े रहोगे तो संभवतः उसको तुममें कोई दिलचस्पी न रहेगी और वह वहाँ से चला जायगा।

यह बात जितनी सुनने में आसान मालूम होती है उतनी करने में आसान नहीं। डुबकी लगाने की पोशाक पहन कर, समुद्र की तह में ऊँचे नीचे चट्टानी कँगूरे पर मिनटों तक निचले खड़ा रहना, जब कि आक्टोपस तुम्हारी पसलियों को गुदगुदा रहा हो, साधारण बात नहीं।

अचानक ही क्रेग को एण्टोनियो की बताई एक और बात भी याद हो आई। उसने कहा था कि यदि आक्टोपस अपनी एक मूँछ से तुम्हारे हाथ को पकड़ लेगा तो अधिक संभव यही है कि वह मांस में से तुम्हारा रक्त चूस जायगा। इसलिए अपने हाथों को अपनी बग़लों के नीचे समेट लेना। क्रेग ने अपनी बाँहों को बग़लों में समेट लिया।

आक्टोपस अपनी मूँछ के साथ उसकी टाँगों को देखता-भालता रहा। यदि आक्टोपस आक्रमण कर दे तो डुबकी मारनेवाला नष्ट हो जाता है; ये लंबे-चौड़े जीव एक औसत क़द के मनुष्य को निगल सकते हैं; पन्द्रह मिनट के भीतर ही ये मनुष्य का समूचा मांस और रक्त चाट जाते हैं। आक्टोपस की प्रत्येक मूँछ में १६० से २४० तक रक्त चूसने की खाली प्यालियाँ लगी होती हैं। प्रत्येक प्याली में एक चौथाई पाउंड से लेकर उन्नीस पाउंड प्रतिवर्ग इञ्च तक शून्यता का दबाव डालने

की शक्ति रहती है; ये सब बातें क्रेग कहीं पढ़ चुका था। अब वह डरा हुआ इस बात की प्रतीक्षा में था कि कब आक्टोपस मेरे साथ चिमटने का निश्चय करता है। उसके एक बार निश्चय करते ही क्रेग का बचना संभव न था। वह उसे तलहटी पर इतनी देर पकड़े रखेगा कि उसका पानी में रह सकने का समय समाप्त हो जायगा—और इसके बाद क्रेग की मृत्यु हो जायगी!

क्रेग के पास छुरी तो थी, परन्तु अनुभवी डुबकी मारनेवालों का कहना है कि आक्टोपस को काटने का यत्न करना बड़ी भारी भूल है। इसके छोटे छोटे टुकड़े काटने से यह रूठ जाता है और आक्रमण कर देता है। एक बार जब तुम इसकी कौली में आगये और इसके अनेक भुजाओंवाले फण में छिपी हुई तोते की ऐसी इसकी चोंच बाहर निकल आई तो फिर यह तुम्हें फाड़ कर पसली पसली अलग कर सकता है। जो कुछ हो, डुबकी मारनेवाले को इतनी देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती; उसकी पोशाक में एक भी सूराख़ हो जाने से वह सीधा यमपुरी में पहुँच जाता है।

केवल एक ही ऐसा अस्त्र है जो आक्टोपस को रोक सकता है और वह है नाईट्रिक बंदूक़। यह एक प्रकार का पिस्तौल होता है। इसमें काँच के कार्तूस में शोरे का तेज़ाब भर कर चलाया जाता है। इसको पानी में चलाते ही आक्टोपस एकदम मर जाता है। परन्तु क्रेग के पास ऐसी कोई बंदूक़ न थी।

क्रेग कुछ मिनट डर के मारे निचला खड़ा रहा। परन्तु ये मिनट उसे घंटे जान पड़ते थे। उसकी पीठ दबाव से टूटी जा रही थी। हर वक्त उसे डर लग रहा था कि न मालूम कब आक्टोपस की मूँछ मेरी टाँगों के साथ आकर लिपट जाती और मुझे घसीट कर कुण्ड में ले जाती है। आक्टोपस को वहाँ से जाते देख क्रेग को बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसा प्रतीत होता है, आक्टोपस ने क्रेग को कोई कपड़े और रबड़ का तोदा समझ कर उसका पीछा छोड़ दिया।

क्रेग ने जल्दी से अपने जूतों के सीसे के अँगूठों को किसी चट्टान के नीचे फँसा कर अपनी पोशाक को हवा से फुला लिया ताकि जल्दी से ऊपर जा सके। इसके एक क्षण बाद वह ऊपर को ओर उठने लगा।

तत्काल आक्टोपस की लंबी भुजा कोड़े की भाँति क्रेग के लगी और टखने से उसे पकड़ लिया। वह जाल में फँस गया, कम से कम उसने समझा कि मैं फँस गया हूँ। परन्तु भाग्य ने सहायता दी। आक्टोपस की दूसरी मूँछें ढीली भूमि पर थीं, इसलिए झटके के साथ वह भी ऊपर उठ आया। यदि वह किसी चट्टान से चिमटा हुआ होता तो क्रेग को वहीं ठहरा रहना पड़ता; कुछ देर के बाद जब ऊपर नाव के लोग उसे बाहर खींचते तो ख़ाली खोद के सिवा उनको और कुछ न मिलता।

नियम यह है कि जब आक्टोपस देखता है कि मेरी मूँछें तलहटी में गड़ी हुई नहीं, तो वह

चट अपने शिकार को छोड़ देता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस आक्टोपस को इस नियम का पता नहीं था। वह साथ ही लटकता हुआ ऊपर चला आया। जिस समय तक क्रेग पानी के ऊपर पहुँचा, तब तक वह उसके सारे शरीर पर चिपट चुका था। नाव के लोगों ने कुल्हाड़ों के साथ उन मूँछों को काट कर क्रेग को राक्षस के पंजे से छुड़ाया।

इसके बाद कई सप्ताह तक क्रेग को रात्रि में आक्टोपस के भयानक स्वप्न होते रहे।

एक प्रश्न

लेखक, श्रीयुत केदारनाथ पांडेय

४५ में से ४५ इस तरह घटाओ कि बाक़ी भी ४५ ही बचे।

४५ में से ४५ ही घटाना है। लेकिन शर्त यह है कि उत्तर भी ४५ ही हो। अब क्या तुम बता सकते हो कि इस प्रश्न को कैसे हल करोगे। तुममें बहुतेरे लड़के तो यह कहेंगे कि यह क्या मुश्किल बात है ४५ और ४५ को जोड़ दिया जाय और उसमें से ४५ घटा दिया जाय तो शेष ४५ मिलेगा। किन्तु तुम्हारा ऐसा कहना ग़लत है। प्रश्न में तो यह बात ही नहीं है। अब तुम यह कहोगे कि यह असंभव बात है। अच्छा अब मैं तुमको बताता हूँ कि इस प्रश्न को किस प्रकार हल करना चाहिए।

इस प्रश्न के हल करने के लिए तुमको ९ से १ तक की इकाई की कुल गिनतियाँ उलटे ढंग से—९,८,७,६ आदि लिखनी चाहिएँ फिर उन्हीं गिनतियों के नीचे १ से लेकर ९ तक की इकाई की गिनतियों को लिखो। इन गिनतियों के लिखने के बाद अब तुम बायें ओर से सब गिनतियों को जोड़ो। तुम देखोगे कि दोनों का योगफल ४५ ही है। दोनों गिनतियों का योगफल निकालने के बाद ऊपर की संख्या में से नीचे की संख्या को घटा दो और फिर उसी प्रकार इसे भी जोड़ो, देखो इसका जोड़ ४५ ही होता है या नहीं। यही इस प्रश्न के हल करने का नियम है। मैं समझता हूँ कि अब तुम्हारी समझ में यह बात भली भाँति आ गई होगी। यदि तुम्हारी समझ में यह बात अब भी न आई हो तो हल किये हुए प्रश्न को देखो और समझो। समझ लेने पर अपने साथियों से यही प्रश्न पूछो। प्रश्न को सुनकर तुम्हारी तरह वे भी आश्चर्य में पड़ जायँगे।

	योग
९८७६५४३२१	= ४५
१२३४५६७८९	= ४५
८६४१९७५३२	= ४५

मगर-मार-बुढ़िया

लेखक, श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, करसियांग

बन्धुवर श्रीयुत व्रजमोहन वर्मा ने 'विशाल-भारत' में एक कहानी लिखी और नाम रख दिया "काला-शैतान"। ऐसी मज़ेदार कहानी तो छपानी चाहिए थी 'बाल-सखा' जैसे पत्रों में, मगर भूल कर छाप डाली 'विशाल भारत जैसे 'वृद्ध-सखा' में। उन्होंने मेरे बाल-सखाओं के प्रति अन्याय तो कर ही डाला, किन्तु मुझे भी उन्हें इस बे-इन्साफ़ी का मज़ा चखाना चाहिए। यही सोचकर 'राम राम जपना और पराया माल अपना' के अनुसार मैं एक पुरोहित जी की सेवा में हाज़िर हुआ और इस कहानी का फिर से नाम-करण करने की उनसे प्रार्थना की। क्योंकि 'कुन्दन-से निर्मल' मित्रों को 'काला-शैतान' जैसे गन्दे और भद्दे नाम की कहानी सुनाना, मुझे उचित नहीं जान पड़ा। बहुत दिमाग़ ख़र्च करने के बाद और ग्रह, नक्षत्र, बार, तिथि देख-भाल कर, उन्होंने, इस कहानी का 'मगर-मार-बुढ़िया' जैसा नवीन और सार्थक नाम मुझे बताया। और चूँकि मैंने नगद-नारायण की दक्षिणा देकर नाम-करण करवाया है, इस अनोखी कहानी का लेखक अब मुझे ही समझना चाहिए। वर्माजी का इस पर क़तई और कोई हक़ नहीं रहा। इस कहानी की भूमिका में, ये चार शब्द केवल इसलिए लिख रहा हूँ कि, कल कोई यह न कह बैठे कि मियाँ, तुम तो अच्छे लेखक निकले। यह कहानी तो 'शेखजी' की क़लम से निकल चुकी है। अच्छा, अब सुनिए।

ब्रह्मपुत्र नदी का नाम तो आपने सुना ही होगा। और गौहाटी नगर के पास ही होकर यह नदी प्रचण्ड वेग से बहा करती है, यह भी आपने 'जुगराफ़िया' में पढ़ा होगा। इस नदी में अनेक जल-जन्तु रहा करते हैं। और मगरों से तो भरी पड़ी है। इनमें से एक मगर पूरा १८ फ़ीट लम्बा था और इसका पेट मानों, रेलों की पटरानी ई० आई० आर० का एक माल गोदाम ही था। एकाध बार घाट पर पानी भरनेवालों को देखकर उसके मुँह में पानी आ गया और एक दिन मौक़ा पाकर एक आदमी की, उसकी बेख़बरी में, टाँगें दबोच कर उसे नदी में घसीट लाया और उस सारे के सारे को, मुँह के रास्ते अपने तोंद के भीतर पहुँचा दिया। उस दिन से, अपनी जिह्वालोलुपता के कारण, वह मनुष्यों ही की घात में ज़्यादा-तर रहने लगा। आज किसी लड़के को मगर उठा ले गया, कल किसी की लड़की को, यही आर्तनाद घर घर सुनाई पड़ने लगा। भेड़, बकरी और मेमने तो पता नहीं कितने उसने चबा डाले थे। आख़िर तंग आकर लोगों ने उसे मार डालने की अनेक तदबीरें सोचीं किन्तु मार न सके। रेती में धूप और हवा खाने पड़ा रहता था, बन्दूक़ की आवाज़ सुन

कर पल भर में पानी के अन्दर ग़ायब। और पानी में गोली कुछ काम नहीं करती। बड़े बड़े भारतीय और अँगरेज़ शिकारियों ने सिर-फोड़ कोशिशें कीं मगर सब बेकार साबित हुईं। गौहाटी के लोग डर के मारे बेजान-से हो चले थे।

एक दिन एक साहब बहादुर ने उस मगर को यम के घर भेजने का प्रण कर लिया, कई बार राइफल दागी पर मगर ने अपने उच-क्केपन से साहब की नाकों दम कर दिया। संयोगवश एक बुढ़िया यह तमाशा दूर से देख रही थी। बिचारे साहब की परेशानी पर उसे ज़रा तरस आ गया। बोली, "साहब! कुछ अच्छा इनाम दो तो मगर मार दूँ"। इस सवाल पर पहले तो वे हँसे और बुढ़िया की बातों पर उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ, पर बुढ़िया के ज़ोर देकर प्रतिज्ञा करने के बाद, वे मान गये। बोले, अगर तुम इस यम को ख़ात्मा कर सकीं तो ५००) रुपये का इनाम तुझे प्रसन्नता-पूर्वक दूँगा। इस पर बुढ़िया ने साहब को बकरी के २ जवान बच्चे मँगवाने के लिए कहा। हुक्म की देरी थी, पास ही के गाँव से २ ताज़े मेमने आ पहुँचे। साहब ने बुढ़िया से पूछा,—"बकरी के बच्चों का क्या करोगी?" वह बोली, "साहब तुम ज़रा चुप ही बैठे रहो, देखते जाओ मैं क्या करती हूँ।"

बुढ़िया ने एक बच्चे को पेड़ से बाँध दिया और अपने लड़के से चाकू माँग कर, दूसरे बच्चे का पेट, ऐसी सफ़ाई से चीरा, मानों बुढ़िया इस काम में बड़ी होशियार हो। और सिर, धड़ में ज्यों का त्यों ही लगा रहने दिया। उसने बच्चे का पेट चाकू करके भीतर की आँतें-वाँतें निकाल कर फेंक दीं और लाश को धो-पोंछ कर साफ़ कर दिया। वह फिर अपनी झोपड़ी में गई और वहाँ से डलिया-भर फूँका हुआ चूना ले आई। उसने मरे हुए बच्चे के पेट में ठूँस ठूँस कर चूना भरा और फिर टाँके लगाकर सारा पेट सी दिया। इस तरह वह एक ख़ूब मोटा ताज़ा बकरी का जीवित बच्चा दीखने लगा।

अब बूढ़ी उठ खड़ी हुई। जीवित बच्चा साहब को दिया और नक़ली मरे बच्चे को अपनी चादर में छिपाये नदी के किनारे जा पहुँची। मगर की उसी रेतीली भूमि के पास ही पानी से ज़रा-सी दूर एक पेड़ से उस जीवित बच्चे को बाँध दिया और ख़ुद थोड़ी दूर अलग बैठ कर सुस्ताने-ऊँघने लगी।

इस तरह कोई एक घंटा बीत गया। बकरी का बच्चा ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर, रस्सी तोड़ कर भागने की कोशिश कर रहा था और ऊँघती बुढ़िया और साहब—दोनों जने कान खड़े किये—चौकन्ने नदी की तरफ़ देख रहे थे।

थोड़ी देर के बाद, नदी के पानी में कुछ बुलबुले उठते दीख पड़े। लहरें बड़ी होने लगीं और फ़ौरन ही वह शैतान विशाल काले शरीर-वाला मगर निकला और बिना शब्द किये बकरी के बच्चे की तरफ़ बढ़ने लगा। बच्चा

डर के मारे थर-थर काँपने लगा। इसी समय बुढ़िया ऊँघना छोड़ कर, गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाती हुई, हाथ की लकड़ी फटकारती किनारे की ओर दौड़ी। उसे देखते ही, पल भर में वह मगर, पानी में ग़ायब हो गया और फिर चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया। इसी बीच में, मौक़ा पाकर, बुढ़िया झुकी और जीवित बच्चे को उठाकर अपनी चादर के भीतर छिपा लिया और बड़ी फ़ुर्ती और सफ़ाई से, उसकी जगह, मुर्दा बच्चे को खड़ा कर दिया और ख़ुद भाग कर अपनी पुरानी जगह लौट पड़ी और ऊँघने लगी।

इधर, बकरी के बच्चे को देखने के बाद ही, पानी में पड़े मगर की जीभ लपलपा रही थी कि शीघ्र ही बच्चे को पेट के हवाले करूँ। भूखा था बेचारा। जब उससे न रहा गया, तो पानी से बाहर निकला और किनारे पर किसी को न पाकर चुपचाप पेड़ की तरफ़ सरका और पल मारते ही, उस मुर्दा बच्चे को एक ही ग्रास में निगल गया और दूसरे ही क्षण नदी में ग़ायब। किसी को पता ही न चला कि वह कब निकला और कब घुसा।

मगर के इस वापसी के बाद ही बुढ़िया खिलखिला कर हँस पड़ी और उसने पास ही छिपे साहब को पुकारा। कोई आध घंटे बाद मगर, नदी में इधर-उधर तैरता दिखाई दिया। उसके तैरने से, बेचैनी-सी जान पड़ती थी। जैसे जैसे समय बीतता गया, उसकी बेचैनी और बेकली बढ़ने लगी। और वह मुँह बाये, नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे बुरी तरह भागता फिरता रहा। इस बीच में गाँववालों की भीड़ उसे देखने, किनारे पर जमा हो गई। कुछ देर में मगर को पानी में रहना, कठिन जान पड़ा और रेती पर आकर सुस्ताने लगा। उसे रेती पर सोते देखकर भीड़ ने पत्थरों की वर्षा उस पर शुरू कर दी। लाचार होकर वह फिर नदी में गया परन्तु शीघ्र ही हाँफता हुआ किनारे पर चढ़ा। उसके खुले हुए डरावने जबड़ों से फ़ेन और ख़ून बह रहा था और दुःख से छटपटा रहा था।

अब साहब को उसकी छटपटाहट पर ज़रा तरस आगई और एक ही गोली से, उसकी पीड़ा का अन्त कर डाला।

इस प्रकार, बुढ़िया की चालाकी से इस नर-भक्षक मगर का ख़ात्मा हुआ। जिस मगर को बड़े बड़े प्रसिद्ध शिकारी सैकड़ों कोशिशें करके भी न मार सके, उसे बुढ़िया की एक ही तदबीर ने, एक ही दाँव में मार डाला। बुढ़िया ने यह चालाकी की थी। सुनिए, मगर ने जैसे ही बकरी के मुर्दे बच्चे को निगला, वैसे ही दबाव पाकर, बच्चे के पेट में लगे हुए, कच्चे सूत के कमज़ोर टाँके टूट गये और उसके पेट में भरा हुआ सारे का सारा, बिना बुझा-चूना, मगर के पेट में पहुँच गया। पानी पड़ते ही बिना-बुझा-चूना, गर्म होकर उबलने लगता है, यह आप लोग जानते ही हैं। चूने के उबाल से मगर के पेट में आग लग गई, उसे बुझाने के लिए मगर जितना

ही पानी पीता गया, उसके पेट के भीतर का उबाल, उतना ही ज़्यादा ज़ोर पकड़ता गया और उसे बार बार रेती पर आना पड़ा।

खाल उतार कर जब मगर का पेट चीरा गया तो उसके भीतर ८६ चूड़ियाँ, अनेक अँगूठियाँ और बिछिये तथा एक थर्मस बोतल निकली! अन्दाज़ा लगावें कि कितने प्राणियों का इस शैतान ने संहार किया होगा।

फिर साहब ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ५००) रुपये इनामस्वरूप बुढ़िया को दिये। उनसे बुढ़िया अपनी ज़िन्दगी बड़े चैन से काटने लगी।

अब आप लोगों की समझ में यह बात आसानी से आ गई होगी कि इस कहानी का नाम-करण, पुरोहित जी ने "मगर-मार-बुढ़िया,' क्यों रक्खा।

मुन्नी का पलटन

लेखक, श्रीयुत पर्ल कुजूर

मुन्नी आई लेकर खिलौना।
पलटन था वह बिलकुल बौना॥
गुरखे की-सी उसकी सूरत।
पर वह थी पत्थल की मूरत॥

प्रेम से मुन्नी उसे उठाई,
और खिलाने लगी मिठाई॥
तिस पर भी वह मुँह न खोला।
उसका जी था लड़ाई में भूला॥

मुन्नी उसको लगी सुलाने।
थपकियाँ देकर लगी चुचकरने॥
पर पलटन थे बड़े बेचारे।
कभी न बन्द कर सकते आँखें।

इतने में एक चींटी आई।
काटने को थी मुँह फैलाई॥
मुन्नी बोली, "पलटन! मारो,
अपनी मेरी जान बचाओ"॥

पलटन था वह खेल खिलौना,
नहीं जानता था जान मारना॥

महात्मा गांधी आज-कल कहाँ और कैसे रहते हैं यह जानना हो तो यह लेख पढ़िए।

बापू की सेगाँव की जीवनी

लेखक, श्रीयुत प्रभुदयाल विद्यार्थी, मगनवाड़ी, वर्धा

प्यारे बालको, आप लोगों ने कभी बापू का नाम पढ़ा वा सुना है? अवश्य पढ़ा और सुना होगा। बापू जी को ही तमाम दुनिया के लोग महात्मा गांधी के नाम से ही लिखते और पुकारते हैं। क्या आपको यह भी पता है कि आजकल यह बापू कहाँ पर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं? आप लोगों ने अपने भूगोल की किताब में सी० पी० प्रान्त का नाम पढ़ा होगा? इसी सी० पी० प्रान्त के वर्धा शहर के निकट पाँच मील की दूरी पर सेगाँव नामक एक ग़रीब हरिजन गाँव में हरिजन भाइयों में रह रहे हैं। इसी बापू को अधिकांश लोग सेगाँव के संत के नाम से भी पुकारते हैं।

आज यह सेगाँव का संत एक साधारण किसान की भाँति अनेक असुविधाओं और उलझनों को ठुकराते हुए, अपने जीवन के शुभ उद्देशों को सिद्ध करने के लिए और भारतवर्ष के गाँवों की दशा सुधारने के लिए दिन-रात इन्हीं उलझनों को सिद्ध करने में लगे हुए हैं।

सेगाँव के संत बापू की सरल जीवनी का हाल मैं आज आप लोगों के लिए कुछ थोड़ा-सा लिखने जा रहा हूँ।

एक दिन मैं अपने चार साथियों को, श्रद्धेय महादेव भाई से आज्ञा लेकर पूज्य बापू जी का दर्शन कराने के लिए ले गया। गोधूली वेला में जब कि भुवनभास्कर हँसते हँसते हम लोगों से विदा होकर अस्ताचल को जा रहे थे, हम लोग वर्धा और सेगाँव के मध्य मार्ग में पहुँच गये। थोड़ी दूर आगे चलने पर एक ऊँची टेकरी मिली। इसी टेकरी के टीले पर से बापू की "किसानों की भाँति की मामूली-सी कुटी" का दर्शन हुआ। अब हमारे मित्रों की आँखें किसानों की भाँति की झोपड़ी नज़दीक से देखने के लिए व्यग्र हो गईं और समीप से बापू के दर्शन करने के लिए लालायित हो उठीं।

हमारे उन्हीं मित्रों में से एक मित्र ने हँसकर मुझसे प्रश्न किया कि "भाई तुम तो बापू को भली भाँति जानते हो न?" मैंने उत्तर दिया, जी हाँ। मित्र ने फिर पूछा, "क्या बापू जी बहुत गम्भीर और मौन रहते हैं?" मैंने जवाब दिया कि अभी आपको कुछ देर बाद बापू जी से प्रत्यक्ष मुलाकात होगी। मित्र ने फिर पूछा, "क्या बापू जी छोटे आदमियों से भी मिलते हैं?" मैंने कहा कि आप जब बापू जी से मिलेंगे तब आपके सारे प्रश्नों का उत्तर स्वयं मिल जायगा। ये बातें हो ही रही थीं कि पूज्य बापू जी के टहलने का समय क़रीब आ रहा था। मैंने मित्र से कहा कि बताइए कितने बज रहे हैं? मित्र ने जेब से घड़ी निकाल कर देखा और कहा कि छ: बज रहे हैं।

मैंने अपनी दृष्टि बापू जी की झोपड़ी की ओर दौड़ाई कि मेरी दृष्टि एक खेत में जा पड़ी। क्या देखता हूँ कि बापू जी अपने हाथ में एक बाँस की
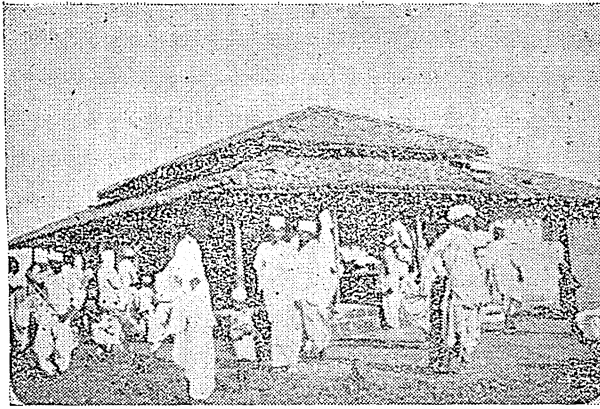
किसानों की भाँति कुटिया। आज-कल इसी कुटिया में गान्धी जी रहते हैं।

लकड़ी जिसका मूल्य एक पैसा होगा, पैर में एक मामूली-सा चप्पल लगभग दाम में सवा रुपये का रहा होगा; और तीन चार हाथ कपड़े की लँगोटी पहने हुए, जिसका मूल्य दस या ग्यारह आने होगा, अपनी चाल में कुछ आश्रमवासियों के साथ हँसते हुए आ रहे हैं। मैंने अपने मित्रों से कहा कि देखो वह भारत का हृदय-सम्राट् बापू घुटने के ऊपर तक लँगोटी पहने हुए और हाथ में एक बाँस की लकड़ी (छड़ी) लिये हुए नंगे बदन आ रहे हैं। मित्रों ने आश्चर्य से कहा कि नहीं यह बापू जी नहीं हैं। आप हम लोगों को ठीक ठीक बतलाइए हम लोगों से मज़ाक मत कीजिए। मैंने गम्भीर होकर कहा जी नहीं, बापू जी यही हैं। मित्रों ने फिर कहा कि नहीं बापू जी हरगिज़ इतनी सरलता में नहीं रहते होंगे! मैंने कहा कि नहीं बापू जी तो इससे भी सरल जीवन बिता रहे हैं यदि आप लोग सेगाँव की हालत देखेंगे। इतने में बापू जी हम लोगों के निकट आ गये। मैंने बापू जी को सादर नमस्कार किया। पूज्य बापू जी अपनी सदा की मुस्कान में प्रश्न किये कि "तुम्हारे साथ ये नये लोग कहाँ आये हुए हैं?" मैंने उत्तर दिया कि आपके दर्शन करने के लिए आये हुए हैं।

सात बजे पूज्य बापू जी अपनी झोपड़ी में पहुँच गये। काठ की एक मामूली लकड़ी के तख़्ते पर बैठकर और एक बाल्टी में पानी रख अपने हाथों से मल मल कर स्वयं पैर धोते जाते थे और "विशाल भारत" की एक कटिंग पढ़ते जाते थे। ठीक साढ़े सात बजे शाम की प्रार्थना की घंटी बजी। घंटी की आवाज़ सुनते ही तख़्ते पर से उतर कर एक देहात की बनी हुई चटाई पर बैठकर प्रार्थना करनी शुरू की और साढ़े आठ बजे समाप्त की। ज्योंही प्रार्थना समाप्त हुई त्योंही पूज्य बापू जी अपने काग़ज़-पत्रों को व्यवस्थित करके एक मामूली-सी ग्राम-उद्योग की चटाई पर बैठकर पत्र लिखने लगे। पूज्य बापू जी चिट्ठियाँ लिखते जाते थे और लोग बीच बीच में आ आकर कुछ बातें भी किया करते थे। बापू जी बीच बीच में ठहर ठहर कर सबकी बातों का उत्तर दे दिया करते थे। चेहरे पर खिन्नता का नामोनिशान तक न था। ठीक नौ बजे लिखने पढ़ने का काम बंद करके और काग़ज़ों को व्यवस्थित करके एक बाँस की छोटी खानेदार आलमारी में सब काग़ज़ों को रख कर बाथरूम में जाकर हाथ पैर धोकर नौ पन्द्रह पर बाहर आये और तुरंत ही मैदान में आकाश के नीचे ग्राम-उद्योग की एक चटाई पर कुछ कपड़े बिछा कर ज़मीन पर सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल ज्योंही चार के अलार्म

की घंटी टन टन टन करने लगी त्योंही हम लोगों की नींद खुल गई। उठकर इधर-उधर के प्रात:काल के दृश्य देखने लगे। क्या देखता हूँ कि पूज्य बापू जी एक तरफ़ ज़मीन पर बैठकर नित्य कर्म कर रहे हैं। (पूज्य बापू जी सदैव चार बजे के कुछ मिनट पहले ही उठ जाते हैं।) चार बज कर बीस मिनट पर प्रात:काल की प्रार्थना प्रारम्भ हुई। और पाँच बजे तक होती रही। प्रार्थना ख़तम होते ही पूज्य बापू जी अपने लिखने-पढ़ने के काम में लवलीन हो उठे और आश्रम के लोग अपने अपने दैनिक कामों में लग गये। ठीक छः बजे पूज्य बापू जी प्रात:काल की हवाख़ोरी के लिए अपनी कुटिया से बाहर निकले त्योंही कुछ लोग बापू से मार्ग में बातें करने के लिए आ पहुँचे। बापू जी जिस मार्ग से प्रात:काल की हवाख़ोरी कर रहे थे वह पूरा ग्रामीण था। खेतों के ऊबड़ खाबड़ रास्तों से अपनी कुटिया से एक मील की दूरी तक हवाख़ोरी करने के लिए गये। साथ ही साथ वार्तालाप भी करते गये।

पूज्य गान्धी जी अपने आश्रमवासियों के साथ खड़े होकर, सेगाँव के एक उत्सव में अपनी कुटिया के बरामदे में ईश्वर की प्रार्थना कर रहे हैं।

लगभग सवा सात बजे अपनी कुटिया पर हवाख़ोरी करके वापस आये। और आश्रम की छोटी से छोटी चीज़ों की देख भाल की और जिन चीज़ों की आवश्यकतायें थीं सबका प्रबंध किया। फिर सेगाँव में से आये हुए ग़रीब मरीज़ों को दवायें दीं और रोगियों को आवश्यक हिदायतें देकर कुटिया में प्रवेश किया।

कुटिया में जाकर एक कोने में गाँव की बनी हुई चटाई पर जिसका मूल्य लगभग दो आने होगा एक सफ़ेद खादी की चद्दर पर मिट्टी के दिवाल के सहारे बैठ गये फिर एक कटोरी में गर्म पानी रख कर अपने हाथों से अपनी दाढ़ी बनाने लगे। बीच बीच में लोगों से दो चार बातें भी कर लिया करते थे। बाल बना चुकने पर सब चीज़ों को स्वच्छ करके आये हुए पत्रों का जवाब लिखने लगे। यदि कोई बाहर से मिलने के लिए आ जाया करते थे तो उनको भी बुला करके और अपने कामों को रोक करके उनसे भी बातें कर लिया करते थे।

अब मैंने अपने मित्रों से कहा कि बापू का रहने का स्थान देखिए। सम्पूर्ण अजायबघर बना हुआ है। पहले एक कोना शुरू कीजिए। पहले कोने में श्री प्यारेलाल भाई और विजया बहन रहती हैं। सामने छोटे छोटे लकड़ी के बक्स रक्खे हुए हैं, जिनमें किताबें तथा सूत इत्यादि रक्खे हुए हैं। दूसरे कोने में श्री शारदा बहन और लीलावती बहन रहती हैं और देखिए संगीत का सितार भी बज रहा है। तीसरे कोने में श्री
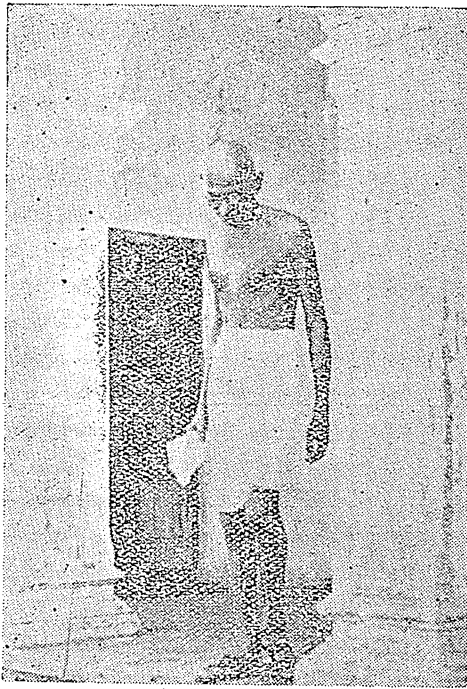
पूज्य गान्धी जी स्नानगृह की ओर जा रहे हैं

नानावटी भाई एक चटाई बिछाकर सूतों के नम्बर निकाल रहे हैं और यही उनके रहने की जगह भी है। चौथे कोने में पूज्य बापू जी अढ़ाई गज़ की जगह में अपना आसन जमाये हुए हैं और उसी अढ़ाई गज़ की जगह में सारी दुनिया के पत्र-व्यवहार का कार्यालय है यह तो कमरे का विभाजन हुआ। अभी तो बीच कमरे में एक तख़्ते पर एक शीशी में सेगाँव का पकड़ा गया साँप रक्खा हुआ है। बगल में एक शहद की बोतल है। कुछ शीशियों में मरीज़ों के लिए दवाइयाँ रक्खी हुई हैं और दो तीन चरखे भी रक्खे हुए हैं यानी तख़्ते का कोई भी हिस्सा ख़ाली नहीं है। तख़्ते के नीचे कुछ टोकरियों में बीमार आदमियों के लिए फल रक्खे हुए हैं। अब दीवालों का हाल देखिए। दीवालों में आले बने हुए हैं और उनमें व्यवस्थित रूप से पुस्तकें और अख़बारों की फ़ाइलें रक्खी हुई हैं। इसी भाँति कुटी की प्रत्येक जगह किसी न किसी चीज़ से घिरी हुई है। यदि इसे बापू का अजायबघर कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। मैंने अपने मित्रों से कहा यह तो बापू के रहने का स्थान का वर्णन है अब बरामदे का हाल देखिए और बाहर चलिए। बरामदे के पहले भाग को देखिए एक सिरे पर भोजनघर बना हुआ है, दूसरे सिरे पर बापू का स्नान-गृह का कमरा है और बीच की जगह में लोग बैठकर रसोड़े का काम करते हैं, और देखिए किनारे पर बड़े बड़े मिट्टी के बर्तनों में पीने के लिए पानी भरा हुआ है। अब दूसरा बरामदा देखिए बिस्तरों और चारपाइयों से लदा हुआ है। अब आगे चलिए यह तो केवल बापू जी के रहने का स्थान था। अभी तो और कई चीज़ें देखनी हैं। कुटिया के बगल ही में बाँस की टटरियों की कई छोटी छोटी कोठरियाँ बनी हुई हैं जो बहुत स्वच्छ हैं। अन्दर भोजन पकाने के लिए कुछ बर्तन लकड़ियाँ रक्खी हुई हैं आगे चलने पर एक गौशाला मिली, जिसमें कतार-बंध से पाँच छः गायें बँधी हुई हैं। उनके सुन्दर सुन्दर बछड़े उछल कूद रहे हैं। कार्यकर्त्ता लोग उनकी सेवा में लगे हुए हैं।

दस बजे पूज्य बापू जी लिखने पढ़ने के कामों को बंद करके स्नान-गृह के कमरे में स्नान करने के लिए गये और साथ में दैनिक पत्र भी पढ़ने के लिए ले गये। ठीक ग्यारह बजे भोजन करने की घंटी बजी। घंटी की आवाज़ सुनते ही पूज्य बापू

जी स्नानगृह से बाहर निकल आये। पाँच छः मिनट के बाद भोजन करनेवाले आश्रम-वासी, अतिथि आदि बैठे हुए सज्जनों को पूज्य बापू जी अपने हाथों से रोटी, साग, नमक, दही, दूध परस कर आप भी एक लोहे के बर्तन में उबाली हुई भाजी और एक शीशी में बकरी का दही लेकर एक काठ की लकड़ी के चम्मच से भोजन करने लगे।

हमारे मित्रों ने जब पूज्य बापू जी को निकट से देखा और एक छोटे से कमरे में कई लोगों को रखते हुए भी अपने काम को आसानी से करते जा रहे हैं। तब पूज्य बापू जी की सरलता और भावुकता देख कर हर्ष के सागर में गोते खाने लगे। और कहने लगे कि पूज्य बापू जी ने तो कांग्रेस के अन्दर एक युगान्तर पैदा ही किये हैं। अब गाँवों के अन्दर बस कर दुनिया में सरल जीवन का दूसरा इतिहास रचने जा रहे हैं। धन्य है पूज्य बापू का हृदय जो कि अपने जीवन को इतनी भीड़ भाड़ में रखकर और सरलता में रह कर व्यतीत कर रहे हैं जिसकी कि कुछ सीमा ही नहीं है।

प्यारे बालको! यही हृदय-सम्राट् पूज्य बापू जी के रहने की कथा है। अगले किसी अंक में इनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री महादेव भाई देसाई के सरल जीवनी की कथा लिखूँगा।

विज्ञान की बात
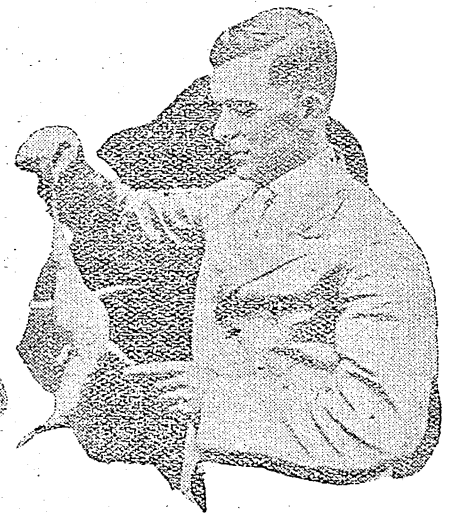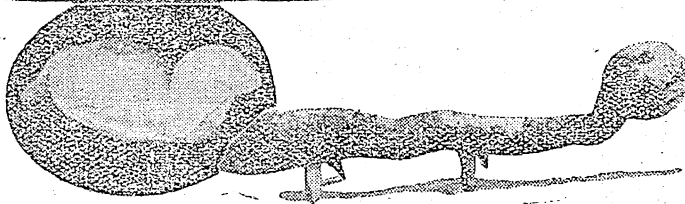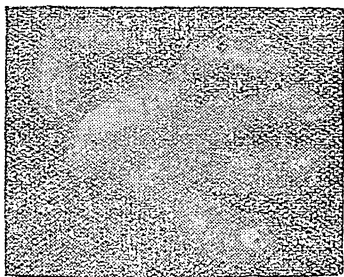
आलू की आश्चर्यजनक शकलें—हाल में अमरीका में एक कृषि-प्रदर्शनी हुई थी उसमें आलू की ये विचित्र शकलें दिखाई गई थीं। ज़रा चित्रों पर ग़ौर करो। एक आलू इस तरह उगा था मानों आदमी का पंजा हो। दूसरा आलू एक सील की भाँति देखा गया। तीसरा उन जीवों के समान था जो आदि काल में पृथ्वी पर पाये जाते थे। और चौथा आलू जो चित्र में दिखाये गये आदमी के हाथों में है इस तरह जान पड़ता था मानों घड़ियाल का बच्चा हो।

पनिहारिन

लेखक, श्रीयुत महेशचन्द्र सिंहल, एम० ए०

(१)

ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?
लगा सुनहरी गोटा सच्चा,
पहन ओढ़ना लहँगा अच्छा,
पैरों में झाँझन औ लच्छा,
मुँह पर थोड़ा घूँघट डाले।
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

(२)

छोटे छोटे बड़े बड़े,
सिर पर रक्खे कई घड़े,
हिले डुले न, सीधे खड़े,
धीरे धीरे, मन्द चाल से।
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

(३)

जा पहुँची कुएँ के ऊपर,
रस्सी डाली उसके भीतर,
घड़े रख दिये मन के ऊपर,
भरती जाती हो तुम पानी।
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

(४)

खींच खींच अनगिनती डोल,
पानी भर डाला बे तोल,
पड़ा शरीर इसी से गोल,
कभी तुम्हें क्या होता रोग ?
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

(५)

आया लल्लू, दीया धक्का,
घड़ा गिर पड़ा, कूआँ पक्का
खड़ा खड़ा हँसता है सक्का,
अब बाबा तुमसे चिल्लावें।
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

(६)

बाबा घर से बाहर दौड़े,
"बता ! घड़े तूने क्यों फोड़े"।
"अजी नहीं, लल्लू ने तोड़े"।
बाबा ने पर एक न मानी।
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

(७)

रूठ, लगी पनिहारिन जाने,
आई अम्मा उसे मनाने,
अरी ! बुरा उनका क्यों माने ?
है स्वभाव उनका चिल्लाना।
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

(८)

जब पाई दो मोटी मोटी,
घी चुपड़ी गेहूँ की रोटी,
फूल, हो गई कुप्पा मोटी,
आँख बचा बाबा की अब तुम।
ए ! पनिहारिन, कहाँ चलीं ?

एक मज़ेदार कहानी

शम्भू और मछली-रानी

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर एम० ए०

बैंक की इमारत बनने से पहले वहाँ पर एक बँगला था, दुमंज़िले क्वार्टर कई एक। बँगले में बैंक का मैनेजर रहा करता, क्वार्टरों में दफ़्तर के क्लर्क और बाबू। बैंक की जब अपनी बिल्डिंग बनने लगी तब इन क्वार्टरों के आगे पीछे राज-मज़दूरों की दर्जनों झोपड़ियाँ खड़ी हो गईं। साल भर तक यह इमारत बनती रही, इसलिए मज़दूरों के लड़के-लड़कियाँ इन झोपड़ियों को ही अपना घर समझने लगे।

बैंक के मैनेजर ने बँगले के पीछे एक बड़ा-सा हौज़ बनवाया था ताकि नई इमारत बनाने में पानी की सहूलियत रहे। लेकिन उसके इकलौते बेटे सुरेन्द्र ने जब ज़िद की कि नहीं, यह तो हमारे खेलने के लिए तालाब है और हम किसी भी मज़दूर को यहाँ से पानी न भरने देंगे, तब बाप को झुकना पड़ा। इसके बाद इमारत के काम के लिए एक बड़ा-सा चहबच्चा उसने अलग बनवा दिया।

बँगले, क्वार्टरों और झोपड़ियों की इस आबादी में पानी का हौज़ बड़े महत्त्व की चीज़ थी। कम से कम बच्चे तो इसको अपना तीर्थ मानते थे। शाम होती तो इधर-उधर से सब लड़के जमा हो जाते। राजा-रानी, चंदा-मामा, सातमन की धोबन, अलीबाबा, इस तरह की कोई-न-कोई कहानी हर रोज़ सुनाई जाती। परंतु शम्भू इन कहानियों से घृणा करता। वह कहता कि जो कहानी हम एक बार सुन चुके हैं उसे दूसरी बार सुनने या सुनाने में क्या मज़ा आ सकता है। शम्भू हमेशा नई कहानी सुनाता। यही कारण था कि अकसर लड़के इस बात पर ज़ोर देते कि शम्भू कहानी सुनावे।

चौड़ा माथा, नुकीली नाक, मोटी आँखें—शम्भू की ये चीज़ें थीं जो हर एक देखने-वाले पर अपना असर करतीं। यों शरीर से वह दुबला-पतला था और उमर सिर्फ़ आठ साल थी, परंतु अपनी इस बिरादरी के बड़ी आयु के हट्टे-कट्टे लड़कों को भी उसने क़ाबू में कर रखा था। क्या मजाल कि अगर वह एक बात कहे तो दूसरा कोई भी उसके ख़िलाफ़ जाय। शम्भू के जिस्म में ख़ास ताक़त न थी। उसकी आँखों में एक विचित्र-सा प्रकाश था जो सबको अपने अधीन कर लेता था। उसकी साधारण-सी बात में भी एक प्रकार का कवित्व भरा होता जिसे सुनकर सभी बच्चे ख़ुश हो जाते।

एक दिन सुरेन्द्र अपने घर से काँच के गिलास में एक छोटी-सी ज़िन्दा मछली पकड़कर ले आया। शम्भू को उसने बताया—"बड़ा भाई आज सुबह रंग-बिरंगी जीती जागती मछलियों का एक मर्तबान लाया था। मैंने उससे पूछा, इनका क्या करोगे? उसने कहा

कि इन्हें गोल कमरे में रक्खेंगे। तब मैंने एक मछली अपने हौज़ के लिए माँगी। उसने दे तो दी है परंतु इस शर्त पर कि इसके खाने के लिए हर रोज़ सागूदाना डाला जाय।"

शम्भू ने यह शर्त मंजूर कर ली। मछली को हौज़ में डाल दिया गया। क्योंकि सुरेन्द्र के घर पर और भी मछलियों को सागूदाना डाला जाता था इसलिए यह ड्यूटी उसी के ज़िम्मे लगी कि वह प्रतिदिन हौज़ में भी थोड़ा-सा सागूदाना डाल दिया करे।

हौज़ में मछली को देखकर उस आबादी के बच्चे बहुत प्रसन्न हुए। इससे शाम की हाज़िरी में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होने लगी। एक दिन किसी ने कह दिया कि शम्भू हमें मैना की यात्रा सुनाइए। शम्भू किसी कहानी को दोबारा सुनाने का विरोधी था इसलिए उसने इनकार कर दिया। लेकिन बहुत-से लड़कों ने प्रेम-पूर्वक अनुरोध किया। लाचार शम्भू ने शुरू की—

"मैना-बहिन मुझसे बड़ी थी तो भी स्कूल नहीं जाती थी। एक दिन अपनी सहेली चिड़ियों के साथ वह मथुरा गई। वहाँ पर उन्होंने कई अजीब-अजीब मंदिर देखे। मथुरा से वे काँगड़ा-पर्वत पर गये। बरफ़ का उन्होंने घर बनाया। वे उसमें रहने लगे। चिड़िया इधर-उधर से लकड़ियाँ चुन लातीं, मैना-बहिन आग जलाती। तब वे दोनों सामने बैठकर आग सेंकतीं। पर्वत से उतर कर वे गंगा के किनारे आईं। यहाँ उन्होंने रेत के अंदर घर बनाया। कई एक जुगनू पकड़ कर उन्होंने घर में उजाला किया। बहुत-से झींगुर जमा करके उन्होंने दीवारों के साथ लटका दिये। जब रात होती तो ये झींगुर इधर गीत गाते और वे सहेलियाँ उधर आराम से कहानियाँ कहतीं और सो जातीं। वहाँ पर रहते हुए एक कीड़े ने उनको अपने हरे महल में आने का निमंत्रण दिया। शाम हुई तो वे दोनों उसके साथ गईं। बंद गोभी के महल के कितने ही कमरे लाँघ कर वे अंदर गईं। कीड़े और उसकी घरवाली ने उनकी बड़ी ख़ातिर की। उनके छोटे बच्चों को देखकर वे सहेलियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। तब कुछ देर के पश्चात् जुगनुओं की मदद से वे वापस लौटीं।

"यह कहानी मैना-बहिन ने मुझे उस समय सुनाई थी जब एक रात मैं सोनेवाला था। मैं सो गया तब चिड़िया ने मुझसे इक़रार किया कि एक दिन वह मुझे भी अपने साथ ले जायगी। अब पता नहीं वह मुझे कब ले जाती है। लेकिन जब मैं यात्रा करके लौटूँगा तो तुम लोगों को बताऊँगा कि मैंने कहाँ क्या देखा है।"

(२)

पिता की तबदीली हो जाने से सुरेंद्र को अपनी आबादी के मित्रों से अलग होना पड़ा। शम्भू को उसने अपना सारा सागूदाना दे दिया कि मछली को प्रतिदिन थोड़ा-सा डाल दिया करना।

बैंक का पहला मैनेजर अभी गया नहीं था कि उसकी जगह नया आदमी आ गया। नये मैनेजर के लड़के चंदू की आयु चौदह वर्ष थी। शाम को सुरेंद्र उसे अपने साथ ही लाया और हौज़ के गिर्द जमा हुए सभी मित्रों को उसका नाम बता कर परिचय करवाया।

सुरेंद्र का यह अंतिम दिन था इसलिए उसने शम्भू से कहा कि मैना की जन्म-कहानी सुनाओ। सुरेंद्र दोबारा थोड़े ही आयेगा, इस ख़्याल ने शम्भू को यह कहानी एक बार फिर सुनाने पर बाध्य किया। उसने बताया—

"मा अकेली थी। बाबू जी दफ़्तर चले जाते तो वही घर पर होती, और कोई न होता। अकेले होने से वह न तो किसी के साथ बातचीत कर सकती, न उठ-बैठ सकती। एक दिन वह इस प्रकार बैठी सोच रही थी कि अपनी लाठी की टेक लेती हुई विधि-माता आई। उसने माँ से पूछा—"क्या चाहती हो?" माँ ने जवाब दिया—"अकेली हूँ इसलिए कोई ऐसा खिलौना चाहती हूँ जिसके साथ बातचीत कर सकूँ।" विधि-माता ने अपनी लाठी को तीन बार ज़मीन पर पटका। कहते हैं यह उसके इक़रार का तरीक़ा है। फिर, "बहुत अच्छा, तुम्हें खिलौना मिल जायगा," यह कह कर वह चली गई। माँ ने बहुतेरा ज़ोर लगाया कि कुछ खाओ-पियो, परंतु वह न मानी। कहने लगी—"जब तुम्हें खिलौना मिल जायगा तब आऊँगी और तुमसे मिठाई खाऊँगी।"

"बस, इसके कुछ अरसे बाद हमारे घर में मैना आ गई। शायद विधि-माता ही उसे अपनी गोद में उठा कर लाई थी। माँ कहती है, "वह इसे मेरे बिस्तर पर लिटा कर आप चली गई। मैं उसे मिठाई के लिए कहने को थी कि वह दरवाज़े से बाहर हो गई।"

"माँ ने मुझे बताया है कि वह विधि-माता बहुत अच्छी बुढ़िया है। जो भी उसे बुलाता है, यह उसी के घर चली जाती है। जो कोई खिलौना माँगता है, यह उसे दे देती है। न कभी बीमार पड़ती है, न कमज़ोर होती है। हमेशा इतनी कि जितनी रहती है।"

सुरेंद्र इस कहानी को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। दूसरे लड़के भी हौज़ में लटकाये हुए अपने पैरों को आगे-पीछे मारने लगे। जूतों की फटफट की यह आवाज़ देर तक होती रही।

जहाँ पर सभी लड़के ख़ुशी प्रकट कर रहे थे वहाँ पर चंदू पहले तो चुपचाप बैठा रहा, फिर मुँह बनाने लगा। जब फटफट की आवाज़ ज़रा थमी तो वह खड़ा हो गया। उसने सिर को एक बार ज़रा ऊँचा उठाया और फिर ज़ोर से कहा—"मैं नहीं मानता कि विधि-माता कोई बूढ़ी औरत है जो लोगों को घर में खिलौने लाती है। हमारे घर में तो बाज़ार से खिलौने आते हैं। दीवाली के दिन हमारे बाबू खिलौने मोल लाते हैं। पिछले साल मैं भी उनके साथ बाज़ार गया था।"

इन शब्दों ने एकत्र हुई उस सभा में

तर्क के बीज बो दिये—वह तर्क जो कवित्व का वैरी है। कई लड़के एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। इस पर चंदू ने पूछा—"क्या तुममें कोई ऐसा नहीं है जिसने बाज़ार से खिलौने ख़रीदे हों? क्या तुमको भी विधि-माता ही खिलौने दिया करती है?"

किसी लड़के को साहस न हुआ कि शम्भू की बात को ग़लत बतावे; वे समझते थे कि शम्भू जो कुछ कहता है ठीक कहता है।

परंतु शम्भू के हृदय पर चंदू के इस प्रश्न ने बड़ी सख़्त चोट की। भरी सभा में इस प्रकार का सवाल उसके लिए असह्य आघात था। चंदू को अगर उसकी बात पर शक था तो वह उससे बाद में अकेले होने पर पूछ लेता। लेकिन इस तरह सबसे सवाल करने का क्या मतलब?

शम्भू अपनी जगह से उठा और सुरेंद्र की तरफ़ एक बार देखने के बाद क्वार्टरों को चला गया।

(३)

दीवाली से एक दिन पहले हौज़ के गिर्द लड़कों की जो सभा हुई उसमें दीवाली मनाने के बारे में बातें होने लगीं। एक ने कहा—हम फ़ानूस लाये हैं। दूसरा बोला—हमने मोम-बत्तियाँ ख़रीदी हैं। तीसरे ने बताया—हम तो अपनी मिठाई की दूकान सजायेंगे और छोटे-छोटे दीये रखेंगे। रात को सोने से पहले लक्ष्मी को खिलायेंगे तब आप खायेंगे।

इस प्रकार उनमें से हर एक ने कुछ-न-कुछ बताया।

जब ये बातें हो लीं तब एक ने शम्भू से कहा—"भाई, आज तो कोई बहुत ही अच्छी कहानी सुनाओ।"

दूसरे लड़कों ने इसका समर्थन किया।

शम्भू पहले तो चुप रहा। लेकिन फिर उसने अपने इधर-उधर चारों तरफ़ देखा। चंदू उसे कहीं न नज़र आया उसने कहानी सुनाना आरंभ किया—

"कल के दिन हमारी तो दीवाली है, पर इस हौज़ के अंदर रहनेवाली मछली-रानी का जन्म-दिन है। यही कारण है कि छोटे-छोटे हज़ारों कीड़े जो मछली-रानी के सिपाही हैं, आज इधर-उधर भागते फिरते हैं। मछलियों का राजा अभी तक यहाँ नहीं पहुँचा। परंतु मछली-रानी उसका इंतज़ार कर रही है। शायद आज रात तक वह पहुँच जाय। अगर वह आ गया तब तो कल रानी के महल में ख़ूब रोशनी होगी। परंतु अगर वह न आया तब शायद रोशनी न हो। सिर्फ़ फ़ौजें ही इधर-उधर फिर-फिरा कर क़वायद करें।

"वह देखो, मछली-रानी की सवारी अब पानी की सतह पर आ रही है। यह इधर-उधर घूम कर अपनी फ़ौजों का मुलाहिज़ा कर रही है। लो सुनो, अब तो फ़ौजों ने बैंड-बाजा भी बजाना शुरू कर दिया। कुछ देर के बाद जब यह बाजा बंद होगा तो रानी अपने अफ़सरों को शाबाशी देगी ....।"

शम्भू अपनी कहानी इस प्रकार सुना रहा था कि उधर से चंदू अपनी हाकी उठाये हौज़ पर आया। वह कुछ देर खड़ा रहा। शम्भू के कहने पर दूसरे लड़के ज़रा पास-पास हो गये। जब जगह बन गई तो शम्भू ने चंदू को बैठने के लिए कहा। चंदू ने जवाब में सिर हिला दिया लेकिन बैठा नहीं।

शम्भू ने अपनी कहानी जारी कर दी—"कल अगर मछलियों का राजा आ गया तो न सिर्फ़ रानी के महल में रोशनी होगी बल्कि सिपाही भी अपने घरों में दीये जलायेंगे। जब रानी की सेना क़तार बाँध कर खड़ी होगी तब सवारी में रानी के साथ राजा भी बैठा होगा। दिन भर ये लोग खुशियाँ मनायेंगे। सबके नये-नये कपड़े होंगे, नये-नये रंग। रानी भी अपने सुंदर वस्त्र पहनेगी। लेकिन अगर राजा न आया तो रानी अपने मामूली कपड़ों में ही रहेगी। अपने जन्म-दिन की खुशी उसे होगी तो ज़रूर परंतु उतनी नहीं जितनी कि राजा के आने से होती......."

शम्भू ने अपनी कहानी खतम न की थी कि चंदू बीच में ही बोल उठा—"शम्भू, तुम कैसी बातें करते हो! क्या मछलियों की भी कभी फ़ौजें हुआ करती हैं? क्या उनके राजे और रानियाँ भी किसी ने देखे हैं? फिर इस हौज़ में मछली है कहाँ जिसकी तरफ़ तुम इशारा कर रहे हो? बात-बात में तुम किसी मछली की तरफ़ देखने लगते हो। मुझे तो यहाँ कोई मछली नहीं दिखाई पड़ती।"

"तुम्हें नहीं दिखाई पड़ती तो क्या दूसरों को भी नज़र नहीं आती?" शम्भू ने पूछा।

"अच्छा, अगर मुझे नहीं नज़र आती तो और किसको नज़र आती है?" चंदू ने शेष लड़कों को एक नज़र से देखते हुए पूछा—"बताओ भाई, तुम ही बताओ। तुममें से किसने मछली की फ़ौज को देखा है? क्या किसी को मछली भी नज़र आई है?"

सब तरफ़ मौन था। थोड़ी देर के बाद कुछ लड़के एक-दूसरे के मुँह की तरफ़ देखने लगे। ऐसा मालूम देता था कि शम्भू का जादू टूट रहा है।

चंदू ने मौक़ा अच्छा जाना। उसने हाकी घुमाते हुए दोबारा वही सवाल किया—"बताओ, तुममें से किसने मछली की फ़ौज को देखा है? क्या किसी को मछली भी नज़र आई है?"

एक लड़का जिस पर चंदू के शारीरिक बल का बहुत प्रभाव था, सिर हिलाने लगा। वह बोला—"नहीं, मुझे मछली की फ़ौज नहीं नज़र आई।"

दो-तीन और लड़के उसके साथ हो गये। कुछ मिनट के बाद सभी लड़के चंदू की तरफ़ हो गये। वे एक साथ उठकर उसके पीछे-पीछे चल पड़े।

शम्भू इस बात को बर्दाश्त न कर सका। वह अकेला रह गया। उसने उठ कर क्वार्टरों की तरफ़ मुँह किया।

जब रात हुई तो शम्भू मैनेजर के बँगले

पर गया। वहाँ उसने चंदू से कहा—"भई, तुम तो यों ही दूसरी बात कहने लगते हो। तुम्हें शायद यह मालूम नहीं कि हौज़ में मछली भी है और उसकी फ़ौज भी। मछली तो रानी है और फ़ौज उसकी, कीड़े हैं। तुमने ध्यान लगाकर देखा नहीं। अगर देखते तो तुम्हें मालूम हो जाता कि हौज़ के पानी के अंदर मछली इधर-उधर घूमती रहती है।"

चंदू ने शम्भू की बात मानने से इनकार कर दिया। शम्भू चला गया। अपने क्वार्टर में जाते ही वह बिस्तर पर लेट गया। बहुत देर तक वह सोचता रहा कि आज-कल इन लड़कों को क्या हो गया है। इसी सोच में वह सो गया।

परंतु जब आधी रात हुई और घड़ियाल पर बारह बजे तो वह उठ कर बैठ गया। सोचने लगा—चंदू को वह मछली क्यों नहीं नज़र आई? मैंने तो उसे कई बार दुम हिलाते इधर-उधर जाते देखा है। फिर इन लड़कों को यह मछली क्यों नहीं दीख पड़ती?

बग़ैर कोई कपड़ा ओढ़े शम्भू चारपाई से नीचे उतरा। गुसलखाने का दरवाज़ा खोलकर वह बाहर निकला। बरामदे में पहुँचा। सरदी बहुत थी, परंतु उसने कुछ महसूस न किया। जाँघिये और खुले गले की बनियाइन में ही ऊपर चढ़ गया। इधर-उधर हवा ठंढी थी। सिर के ऊपर आकाश ठंढा था और पैरों के नीचे ईंटें ठंढी। दिसंबर का महीना था, इसलिए चाँद की चाँदनी भी खूब ठंढक बरसा रही थी। यहाँ से उसने हौज़ की तरफ़ देखा—अरे, मछली तो साफ़ दिखाई पड़ रही है। वह खुद तैर रही है, पर उसके सिपाही कीड़े अभी तक क़तारें बाँधे खड़े हैं।

शम्भू के दिल में फिर खयाल आया—"यह कितनी अजीब बात है कि इस चंदू को यह मछली नज़र नहीं आती!"

बहुत देर तक वहीं बैठे रहने के बाद वह नीचे उतरा और चुपके से कम्बल में घुस गया।

अगली सुबह शम्भू बीमार था।

(४)

हौज़ के पास अब भी लड़के जमा होते हैं। अब भी वे कहानियाँ सुनते-सुनाते हैं। परंतु पहली-जैसी नहीं। चंदू इन्हें हाकी और फुटबाल के मैचों की बातें सुनाता है। मैना की यात्रा या मछली-रानी की फ़ौज की कहानियाँ इन्हें कोई नहीं सुनाता क्योंकि शम्भू कई दिन से बीमार है। लड़के मिल कर बैठते हैं तो कोई-न-कोई यह कह देता है कि शम्भू बहुत सख्त बीमार है। पर इसके बाद वे फिर अपनी बातों में लग जाते हैं।

शम्भू ही था जो हौज़ को पानी से भरवाये रखता था। जब कभी पानी कम होने लगता तभी वह बँगले के माली से कह कर उसे भरवा देता। सुरेंद्र के समय से माली जानता था कि वास्तव में हौज़ किस काम के लिए बनवाया गया था और किस प्रकार शम्भू के कहने पर सुरेंद्र ने उसे अपने साथी लड़कों के खेलने का साधन बनवा दिया था।

अब जब शम्भू बीमार हो गया तो हौज़ की किसी ने सुध न ली, और वह सूख गया। उसके नीचे कीचड़ नज़र आने लगा। इत्तफ़ाक़ से चंदू एक दोपहर को उधर से गुज़रा। उसने देखा कि कीचड़ में एक मछली पड़ी है। पानी के न होने से वह कीचड़ में फड़फड़ा रही है।

मछली को देखकर चंदू को बड़ा अचंभा हुआ। वह कई मिनट तक जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। अब उसे शम्भू के शब्द याद आये। चंदू उजड्ड ज़रूर था, परंतु इतना घमंडी न था कि अपनी ग़लती को स्वीकार न करता। वह उसी समय बैंक के बाबुओं के क्वार्टरों की तरफ़ गया। शम्भू के क्वार्टर के सामने पहुँच कर उसने दरवाज़ा खटखटाया। अंदर से किसी के रोने की आवाज़ आ रही थी। वह सहम गया। दो मिनट ठहर कर उसने दरवाज़े पर दस्तक दी। दरवाज़ा खुला तो अंदर से शम्भू की बड़ी बहिन निकली उसने आहिस्ता से पूछा—"क्या है चंदू ?"

"शम्भू कहाँ है ?" चंदू ने कहा—"मैं उसे बताने आया हूँ कि हौज़ में मछली है।"

"लेकिन शम्भू," बहन ने आँखों को आँचल से पोंछते हुए कहा—"शम्भू तो मर गया है।"

हाथी तौलाकर दीवान हो गये !

लेखक, भानुसिंह बाघेल

पुराने समय में, जब आजकल की तरह यंत्र नहीं बने थे, हाथी जैसे भारी जानवर का तौलाया जाना सहज नहीं था। रीवाँ महाराज रघुराजसिंह अपनी बाल्यावस्था में हठ कर बैठे कि जब तक हमारा हाथी नहीं तौला जायगा हम अन्न-जल नहीं ग्रहण करेंगे ! राज-परिवार में उपवास पड़ गया, पर हाथी तौलाने की तरकीब किसी को न सूझी ! इसी समय एक ब्राह्मण ने आकर हाथी तौलाने का बीड़ा उठाया। उसने एक बड़ी नाव नदी में डलवा कर उसमें हाथी चढ़ा दिया। हाथी के वज़न से नाव जहाँ तक डूबी वहाँ निशान लगाकर हाथी उतार लिया और कंकड़-पत्थर-मिट्टी तौलवा तौलवा कर उसी नाव में भराने लगा। जब हाथीवाले निशान तक नाव डूबी तब कंकड़-मिट्टी का हिसाब करके हाथी की तौल बता दी। इससे महाराज विश्वनाथसिंह ब्राह्मण पर प्रसन्न हो गये और उसे अपने पास रख लिया। यही ब्राह्मण धीरे धीरे पं० भोंदूलाल के नाम से राज्य के एक प्रसिद्ध दीवान हो गये। इनके वंश में कई पुश्त तक राज्य की दीवानी रही।
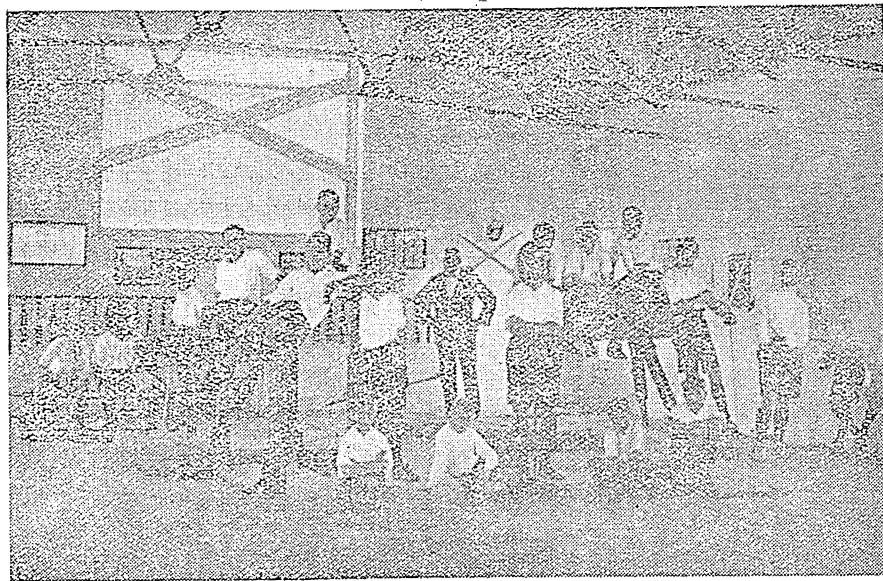
हमारी व्यायामशाला

मेरा स्कूल

लेखक, श्रीयुत विनयनारायण

लड़के प्रायः स्कूल के नाम से चिढ़ते हैं; पर वास्तव में स्कूल वैसी चीज़ नहीं है। स्कूल से चिढ़ने का एकमात्र कारण यह है कि लड़के स्कूल को अच्छी तरह नहीं पहचानते हैं। स्कूल तभी अच्छी तरह पहचाना जा सकता है जब कि लड़के ख़ुद स्कूल में २४ घंटे रहें यानी स्कूल के "बोर्डिङ्ग" में रहें। जब वे ऐसा करेंगे तो उन्हें पता चल जायगा कि स्कूल क्या चीज़ है और तब उन्हें स्कूल घर की तरह मालूम पड़ने लगेगा।

मैं दार्जिलिङ्ग के "सेन्टपॉलस स्कूल" में पढ़ता हूँ और स्कूल ही के "बोर्डिङ्ग हाउस" में रहता हूँ। इसलिए मैं अपने स्कूल से अच्छी तरह परिचित हूँ और उसे बहुत चाहता हूँ। आइए, मैं आपको उसकी कुछ बातें बताऊँ। इस स्कूल की स्थापना सन् १८४५ ईसवी में कलकत्ते में हुई थी। उस समय इसमें बहुत कम लड़के थे। शायद २५ हों, क्योंकि उस समय सिर्फ़ अँगरेज़ लड़के ही लिये जाते थे पर अब तो सभी देशों के लड़के लिये जाते हैं। धीरे धीरे स्कूल की उन्नति हुई। जब कि यह कलकत्ते से उठ कर सन् १८६२ ईसवी में दार्जिलिङ्ग चला गया, तो इसकी बड़ी उन्नति हुई; और दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। आज भी यह वहीं है।

हम लोगों को स्कूल में छुट्टी बहुत कम होती है पर, घर पर एक साथ रहने का मौक़ा सबसे ज़्यादः होता है याने नवम्बर के आख़िरी सप्ताह से मार्च के पहले सप्ताह तक एक बड़ी लम्बी छुट्टी होती है। साढ़े तीन महीना एक साथ घर पर रहने में जो आनन्द आता है वह २ महीना, १ महीना और १५ दिन क्रमशः
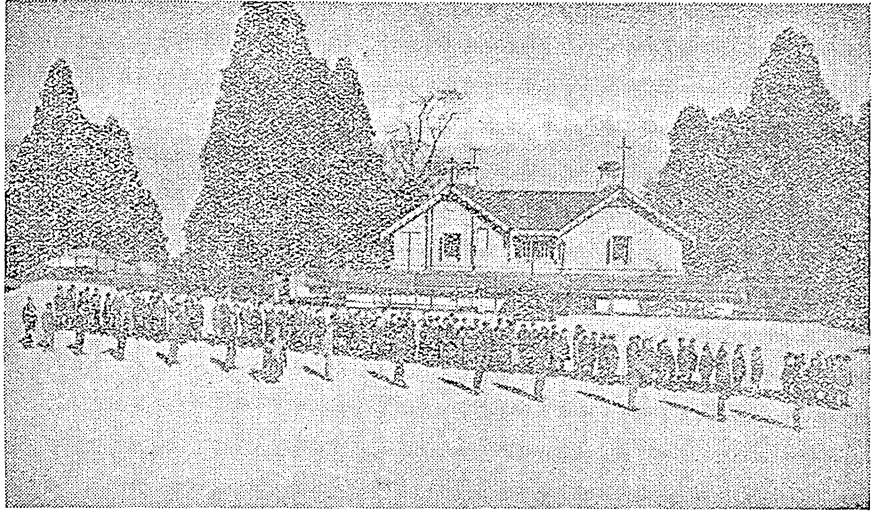
हाज़िरी ली जा रही है
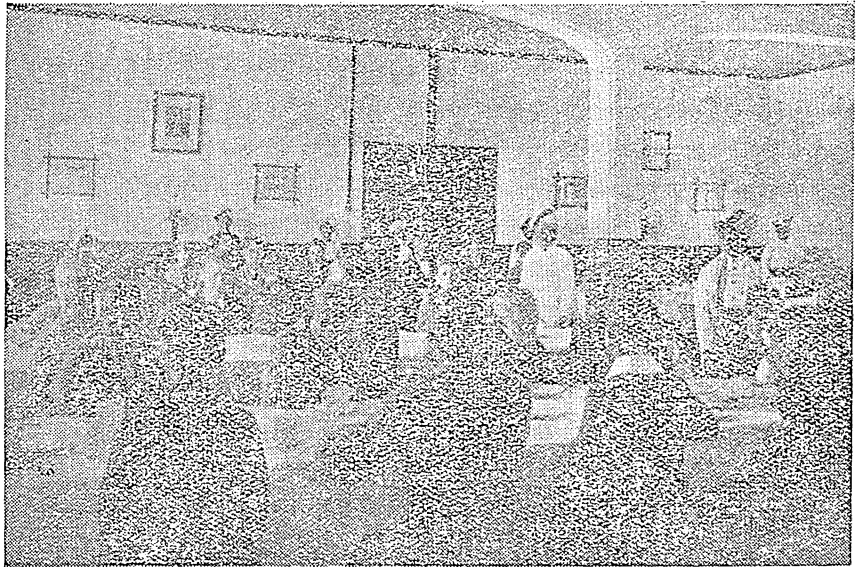
भोजन-गृह का एक भाग
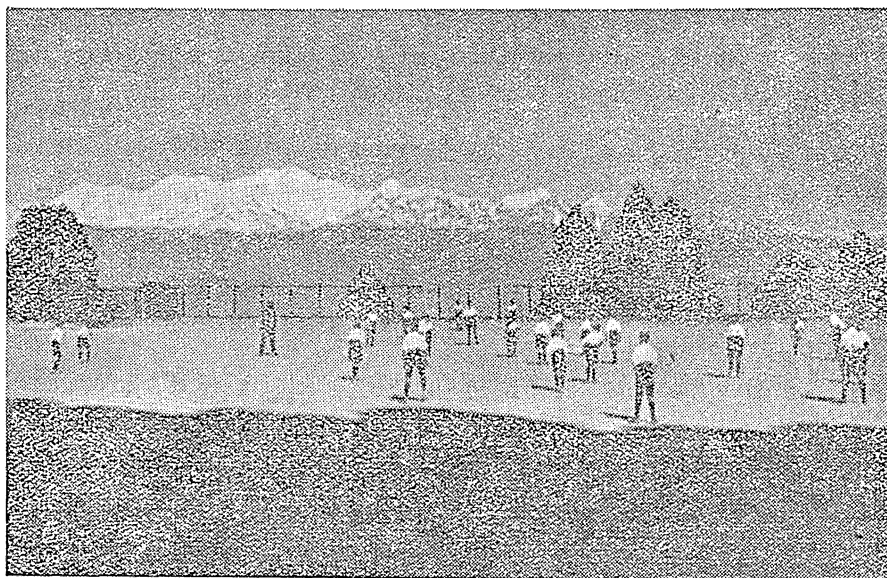
हमारा खेल का मैदान

रहने में नहीं आता है। इस साढ़े तीन महीने की छुट्टी में बहुत जगह घूमा फिरा जा सकता है। गर्मी की छुट्टी हम लोगों को सिर्फ़ ७ दिनों की होती है।

हम लोग खेल-कूद के बड़े शौक़ीन हैं। क्रिकेट, फ़ुटबाल और हाकी हमारे मुख्य खेल हैं। क्रिकेट में ख़ुद रेक्टर कप्तान हैं। क्रिकेट में हमने लगातार दो बार दार्जिलिङ्ग का "एडिनबरा चालेञ्ज शील्ड" जीता है; फ़ुटबाल में लगातार दो बार "रेक्टरस कप" जीता है, और हाकी में एक बार "प्लीमाज़ शील्ड" जीतने का सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं।

खेल-कूद में भाग लेने के साथ ही लड़के कैडेट्स (सैनिक) या स्काउट में भर्ती होते हैं। कैडेट्स में सैनिक का काम सिखाया जाता है यानी बन्दूक़ छोड़ना, लड़ाई में मातृभूमि के लिए लड़ना, इत्यादि। कैडेट्स में बहुत-से लड़के ऐसे भी हैं जो लड़ाई छिड़ जाने पर तुरन्त लड़ाई के मैदान में जाने के लिए तैयार हो जायँगे। स्काउट में हर एक तरह का खेल-कूद, सिगनलिङ्ग इत्यादि सिखाया जाता है। हमारे स्कूल के स्काउट दार्जिलिङ्ग में सर्वप्रथम रहते हैं।

हमारा स्कूल संसार के सबसे ऊँचे स्थान पर बसा है यानी समुद्र से ७६०० फ़ीट की उँचाई पर है, इसी लिए दृश्य बड़े ही सुन्दर हैं। 'काञ्चनजंघा' पर सालों भर बर्फ़ जमी रहती है। उसका दृश्य सूर्योदय या सूर्यास्त के समय बहुत सुन्दर देख पड़ता है। पहाड़ी रेल, जब कि ट्रेन "डेभिलस कर्व" (शैतान की घूम) पर रहती, है बहुत दी सुन्दर दीख पड़ती है।

यदि कभी आप लोग दार्जिलिङ्ग आयें तो एक बार सेन्ट पॉलस स्कूल आकर अवश्य देखें।

एक शिक्षाप्रद कहानी

तपोदत्त की कहानी

लेखिका, श्री मनोरमा चौधरी, एम० ए०

पाटलिपुत्र में एक ब्राह्मण रहता था। उसके तीन लड़के थे। उनमें सबसे छोटे का नाम तपोदत्त था। तपोदत्त के बड़े दो भाई प्रसिद्ध विद्वान् थे परन्तु तपोदत्त मूर्ख ही रह गया। तपोदत्त को विद्या-शिक्षा देने के लिए उसके पिता ने उस समय के श्रेष्ठ गुरु जी के पास भेजा। वहाँ पर तपोदत्त साल भर रहने पर भी कुछ नहीं सीख सका। वह पढ़ने की भरसक चेष्टा करता था परन्तु उसमें धीरज की कमी थी। इस कारण वह अपना पाठ याद नहीं कर पाता था।

एक दिन उसके गुरु जी ने उसका सबके सामने बहुत तिरस्कार किया। उन्होंने तपोदत्त से कहा—"तुम अपने घर लौट जाओ। तुमने इतने दिनों तक यहाँ रह कर मेरा भी समय व्यर्थ किया और अपने आप भी कुछ लाभ नहीं उठाया। तुम जैसे मूर्ख व्यक्ति को चुल्लूभर पानी में डूब मरना चाहिए।"

इस बात पर तपोदत्त अतिशय लज्जित हो गया। उसने सोचा कि "मैं इस अवस्था में घर नहीं जाऊँगा। मेरे दोनों भाई इतने बड़े पण्डित हैं, वे मेरी हँसी करेंगे। विद्याशिक्षा नहीं करने के कारण मेरे पिता जी भी मुझसे रुष्ट रहेंगे।"

तपोदत्त ने तब अपने मन में यह प्रण ठान लिया कि वह अपनी मूर्खता सुधारने से पहले घर नहीं लौट जायगा। वह एक घने जङ्गल में जाकर कठिन तपस्या करने लगा। बिना कुछ खाये पीये उसके बरसों बीत गये परन्तु उसने ईश्वर की आराधना करना बन्द नहीं की। उसने अपने शरीर को अनेक प्रकार से कष्ट दिया जिससे वह किसी सहज उपाय से विद्या सीख सके।

एक दिन इन्द्र जी उस वन से जा रहे थे। ईश्वर में तपोदत्त की भक्ति और विश्वास देखकर वे अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने इसकी भलाई करने का विचार किया।

जब तपोदत्त अपनी पूजा शेष कर गंगा जी नहाने गया, तब इन्द्र जी एक बूढ़े ब्राह्मण का भेष लेकर उसी के सामने तीर पर खड़े होकर जल में बालू फेंकने लगे। बड़ी देर तक वे नदी में दोनों हाथों से रेत डालने लगे। इससे तपोदत्त आश्चर्यान्वित हो गया। उसने ब्राह्मण के पास जाकर विनीत भाव से पूछा, "आप इस तरह नदी में बालू क्यों डाल रहे हैं?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैं इस नदी के ऊपर एक पुल बनाना चाहता हूँ। यहाँ एक पुल बन जाने से मनुष्य और पशु सरलता से नदी पार कर सकेंगे।"

तपोदत्त को ब्राह्मणरूपी इन्द्र की बातों पर

बड़ी हँसी आई। उसने कहा—"आप क्या पागल हो गये हैं? नदी की लहरों के कारण आपकी फेंकी हुई बालू यहाँ किसी एक स्थान में कैसे ठहर सकती है?"

तब इन्द्र ने अपना रूप धारण करके कहा कि "तपोदत्त! तुम क्या मुझसे भी अधिक मूर्ख नहीं हो? बिना अध्ययन के तुम कैसे विद्या-लाभ की आशा अपने मन में रखते हो। केवल पूजा-पाठ और देह को कष्ट पहुँचा कर तपस्या करने पर भी कोई विद्वान् नहीं हो सकता है। जिस तरह बिना अक्षर की सहायता से एक शब्द नहीं बनता, उसी तरह धैर्य्य और परिश्रम के बिना विद्या नहीं सीखी जा सकती है।"

यह कहकर इन्द्र जी अन्तर्धान हो गये। तपोदत्त ने अपनी भूल समझी। वह अपने गुरु जी के पास लौट गया और उनसे क्षमा माँगी और खूब मन लगाके पढ़ने लगा। थोड़े दिन में वह एक प्रसिद्ध पण्डित बन गया। बिना धीरज और परिश्रम के इस संसार में कोई वस्तु नहीं मिल सकती है।

अनोखा न्याय

लेखक, भानुसिंह बाघेल

रीवाँराज्य में पण्डित हेतराम एक प्रसिद्ध दीवान हो गये हैं। स्वर्गीय महाराज वेंकटरमण-सिंह की नाबालिग़ी में आप राज्य का काम करते थे। एक बार आपके सामने एक लुहार और ब्राह्मण का मामला पेश हुआ। एक बाग़ीचे का झगड़ा था। लुहार कहता था बाग़ीचा हमारा है और ब्राह्मणदेव कहते थे नहीं, हमारा है। लुहार ग़रीब था। उसके पास सबूत न था, पर ब्राह्मण के पक्ष में सारा गाँव सबूत था। किन्तु लुहार अपनी बात की सत्यता के लिए दीवान साहब की सेवा में शपथ ही करता रह गया। इससे दीवान साहब को ब्राह्मण की बात में सन्देह हुआ। एक रोज़ रात को दीवान साहब लुहार को लेकर उस गाँव में पहुँचे। बाग़ीचे और गाँव के बीच अपना हाथी खड़ा करके लुहार को हुक्म लगाया कि अपने बाग़ीचे में जाकर गोहार लगाओ कि 'दौड़ो दौड़ो मार डाला'। लुहार ने ऐसा ही किया। गोहार सुनते ही गाँव के लोग दौड़े और कोई कोई आपस में पूछने लगे कि किस ओर गोहार लगी है? यह सुनकर बहुत लोग कह उठे कि लुहार के बाग़ीचे की ओर गोहार लगी है। सबके पहुँच जाने पर दीवान साहब ने पूछा कि यह किसका बाग़ीचा है? एकाएक आधी रात के समय दीवान साहब को देखकर सब भौंचक्के हो गये। दूसरे दिन दीवान साहब ने लुहार के पक्ष में फ़ैसला कर दिया।
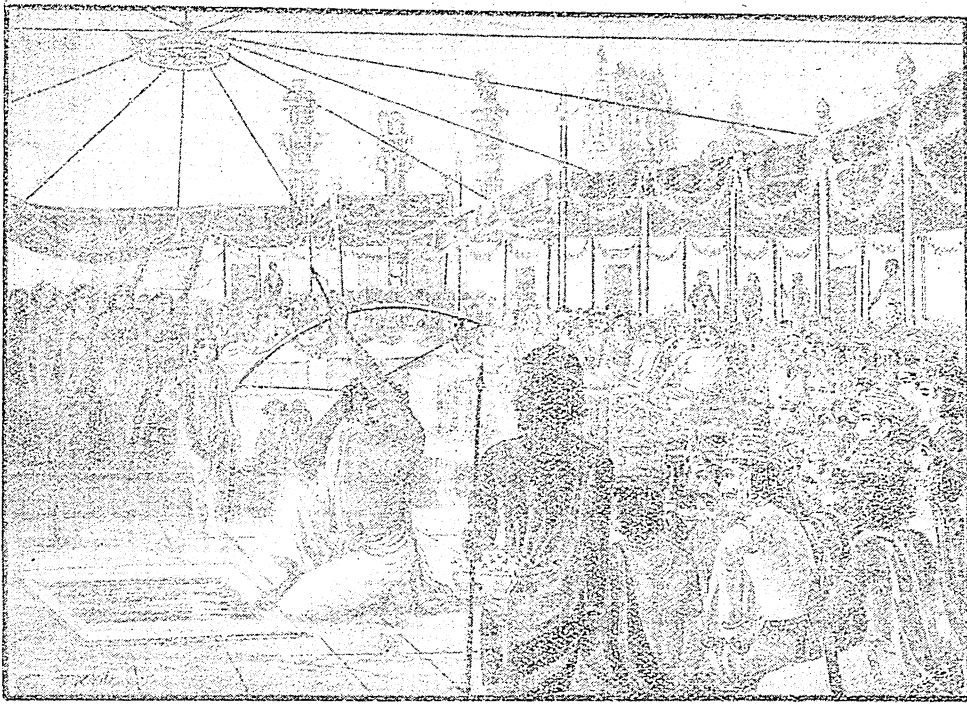
द्रौपदी का स्वयंवर

बाल-महाभारत

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल नेह

द्रौपदी का स्वयंवर

पंचालों के राजा द्रुपद ने है रचा स्वयंवर
राजकुमारी ब्याही जावे यही उद्यम घर घर ॥
राजा ने एक बहुत बड़ा है सभाभवन बनवाया ।
नगर नगर में खबर पठाई राजों को बुलवाया ॥
पर उनकी एक ही इच्छा थी कुन्तीपुत्र भी आते ।
जीत स्वयंवर राजकुमारी अर्जुन वीर ही पाते ॥
धनुष दृढ़ ऐसा बनवाया हर एक नहीं झुकावे ।
वह काम सहज केवल अर्जुन को पर वह कहाँ से आवे ॥
यंत्र बराबर चक्कर खावे उस पर मीन बिठाई ।
बेधा जिसने उस मछली को राजकुमारी पाई ॥

खबर सुनी ऐसी राजों ने देशों देश से आये ।
हर एक की अभिलाषा ऐसी दुरपद-पुत्री पाये ॥
दुरयोधन और उसके भाई वीर कर्ण के साथ ।
पूरी अभिलाषा रखते थे बने द्रौपदीनाथ ॥
महापुरुष भी जमा हुए और विप्र ऋषि भी आये ।
दान करेगा राजा कितने हाथी घोड़े गायें ॥
विप्र भेष बनाये अपना आये कुन्तीपुत्र ।
बैठ गये आसन पर जाकर जहाँ विप्र एकत्र ॥
ऐसा भेष बनाये पाँचों कोई नहीं पहचाने ।
राजा दुरपद क्या दुरयोधन तक उनको ना जाने ॥

दुरपद ने जो परण किया है वह तब दूत सुनावें।
बजे नगाड़े मिरदंग बाजे तुरही ढोल बजावें ॥
आई कृष्णा लज्जित होते हाथ लिये जयमाल।
धृष्टद्युम्न थे साथ में लाये हलकी उसकी चाल ॥

बाजे बंद हुए तब बोला धृष्टद्युम्न इस भाँत।
राजो विप्रो सुनो ग़ौर से कहता हूँ जो बात ॥
धनुष उठाकर बाण चलावे बेधे जो यह यंत्र।
दुरपद-पुत्री वो ही पावे हे राजो! एकत्र ॥

लक्ष-भेद की इच्छा से उट्ठे कितने ही राजा।
नाम पुकारें गोत्र बतावें बजे बाद में बाजा ॥
धनुष उठावें बाण चलावें नहीं निशाना पाते।
लज्जा से सिर नीचा करके वापस वहाँ वे तब जाते ॥

कितनों ही से धनुष न उट्ठा हुए बहुत शरमिंदा।
थोड़ी देर यही वे चाहें रहें नहीं अब ज़िंदा ॥
छाती पीटें हाय पुकारें रोते और चिल्लाते।
लज्जित राजे रंगभूमि से आगे पीछे जाते ॥

राजों की मंडली से उट्ठा एक युवक उस आन।
पांडव और सभासद सारे उसे गये पहचान ॥
धनुष उठाया बाण चढ़ाया यही पड़े था जान।
बेधेगा वह लक्ष उसी दम बढ़े कुरू का मान ॥

दुरपद-पुत्री खड़ी हुई और सभा-बीच है आती।
हाथ उठाकर दोनों अपने ऐसा वो चिल्लाती ॥
सभासदो! तुम यह मेरी सुन लो सुनो ये तुम भी कर्ण।
मैं राजकुमारी नहीं करूँगी सूत-पुत्र को वरण ॥

क्रोध चढ़ आया धनुष फेंक दी फूल गये थे गाल।
चले गये वो रंगभूमि से तेज़ क़दम की चाल ॥
फिर कितने ही राजा उट्ठे धनुष न टाले टलती।
राजकुमारी सभा बीच में हाथ खड़ी थी मलती ॥

सभा में जितने आय उपस्थित राजे राजकुमार।
चिंता में वे डूब गये सब गये थे हिम्मत हार ॥
ब्रह्म-सभा से युवक एक उट्ठा बिना बताये नाम।
धनुष उठाया बाण चलाया किया था पूरा काम ॥

गिरी थी नीचे टुकड़े होकर लगी हुई थी मीन।
गिने उठाकर उसके टुकड़े एक नहीं दो तीन ॥
राजकुमारी आगे आई हाथ लिये जयमाल।
नाम बिना ही जाने उसका दी गरदन में डाल ॥

वीर पुरुष यह अर्जुन थे पर कोई नहीं पहचाने।
दौड़ पड़े सब राजा उन पर धनुष-बाण को ताने ॥
राजा इतने यहाँ इकट्ठे फिर भी राजकुमारी।
ब्याही जाये मैले गंदे और अंजान भिखारी। ॥

नाम न उसका कहीं सुना है गोत्र नहीं बतलावे।
हम राजों के जीते जागते दुरपद-कन्या पावे ॥
ऐसा कह सब राजा उठते लिये तीर तलवार।
वार किये पाँचों पांडों पर गये मगर सब हार ॥

ब्रह्मतेज से हम हारे हैं ऐसा बोले कर्ण।
राजकुमारी स्वयं उन्हीं को नहीं करेगी वर्ण ॥
राजों की जब हार हुई तब विप्र-सभा हरषानी।
छीनो राजकुमारी इनसे कहें यह राजा मानी ॥

दुरपद-पुत्री चली गई तब पांडवगण के साथ।
माता के सम्मुख वे लाये उसे पकड़ कर हाथ ॥
कुन्ती ने तब आवभगत की अपने पास बिठाया।
पुत्रों का और अपने कुल का नाम पता बतलाया ॥

धृष्टद्युम्न छिपकर पीछे से यह सुनता था बात।
नाम सुना इन भिखमंगों का हुआ वो पुलकित गात ॥
पास पिता के जाकर उनको देने लगा बधाई।
बरसों से जो आस तुम्हारी आज वो है बर आई ॥

कृष्ण जिनके साथ गई है कुंतीपुत्र वो पाँचों। अपने कानों सुनकर आया कहूँ मैं तुमसे साँचो॥
दुरपद ने दूतों द्वारा तब कुन्ती-पुत्र बुलाये। भवन दिया रहने को सुन्दर जब सब भ्राता आये॥
कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर ब्याहें कृष्णा राजकुमारी। नगर मचावे उत्सव कैसा कृष्णा सबकी प्यारी॥
समझे जिन्हें भिखारी थे वे निकले राजकुमार। मंगल मोद मचावें भारी और मचे जयकार॥

कौन दिन था ?

लेखिका, कुमारी श्री सावित्रीदेवी, मुज़फ्फ़रपुर

सावित्री—बहन गायत्री, क्या तुम बता सकती हो कि १९२८ की ५ मार्च को कौन दिन था ?

गायत्री—बहन, मुझे क्या मालूम। माँ तो कहती हैं कि १९२८ में तो मेरा जन्म भी न था। मान लो यदि मेरा जन्म रहता भी, तो क्या मैं बता सकती थी। मैं तो इसी महीने के किसी तारीख़ का दिन नहीं बतला सकती।

सावित्री—तुमने तो जोड़, घटाव, गुणा और भाग पढ़ा है।

गायत्री—बहन, इसके पढ़ लेने से क्या ? क्या मैं इसके द्वारा असम्भव बात को सम्भव बना सकती हूँ।

सावित्री—क्या तुम इसे असम्भव समझती हो ! यह तो गणित का एक छोटा-सा प्रश्न है। तुम इस पञ्चांग को लेकर मुझसे कोई दिन पूछो। मैं तुरन्त बताती हूँ।

गायत्री—अच्छा, बताओ, १९२८ की ५ मार्च को कौन दिन था।

सावित्री—सोमवार।

गायत्री—देखो न, सोमवार ही पञ्चाङ्ग में भी लिखा है। मुझे भी सिखा दो, बहन।

सावित्री—ध्यान देकर सुनो। तुमको १९२८ की ५ मार्च को कौन दिन था, निकालना है। इसलिए एक साल पहले का अंक अर्थात् १९२७ लो। अब १९२७ का चौथा हिस्सा करो। चौथा हिस्सा हुआ ४३१। चौथा हिस्सा करते समय यदि नीचे शेष बचे तो उसे छोड़ देना चाहिए। अब ४३१ को १९२७ में जोड़ो, योगफल हुआ २३५८। अब इसके सैकड़े अर्थात् १९ का पौना हुआ सवा चौदह। चौदह के बदले १५ लो। यदि पौना करते समय पाई आवे तो पूरा अंक लेना चाहिए। अब २३५८ में से १५ घटाओ। बचा २३४३। अब ५ मार्च तक के दिनों को जोड़ो, वे हुए ६४। अब २३४३ और ६४ को जोड़ो, योगफल हुआ २४०७। अब २४०७ में ७ से भाग दो, भाग देने पर शेष बचा १। इसलिए दिन हुआ सोमवार।

प्रत्येक दिन के लिए अलग अलग अंक बने हुए हैं जिन्हें याद रखना चाहिए।

रविवार— ०	गुरुवार— ४
सोमवार— १	शुक्रवार— ५
मंगलवार— २	शनिवार— ६
बुधवार— ३	

कलम-सखा

कलम-सखा

प्यारे 'बाल-सखा' के पाठको ! मैं महामना पंडित 'मदनमोहन मालवीय' जी का बालोपयोगी जीवन-चरित्र सरल भाषा में छपाना चाहता हूँ। इस विषय में मेरा कई सज्जनों से पत्र-व्यवहार हो रहा है। आप लोग इस विषय में जो कुछ जानते हों लिख भेजने की कृपा करें। जो जो सज्जन कुछ लिखकर भेजेंगे, उनका नाम धन्यवाद-सहित पुस्तक में प्रकाशित कर दिया जायगा तथा एक कापी बिना मूल्य भेंट भी की जायगी। इसका सम्पादन भी एक प्रतिष्ठित सज्जन करेंगे।

मेरा पता—बनवारीलाल डालमिया
२६।१ आरमेनियन स्ट्रीट, कलकत्ता

× × ×

मुझे टिकट-संग्रह करने का बहुत शौक़ है तथा मैं बाल-सखा के प्रिय पाठकगण और अन्य लोगों से पत्र-व्यवहार करना चाहता हूँ।

मेरा पता—रामकृष्ण बजाज़, वर्धा

× × ×

मुझे देश-विदेश के टिकट और हर प्रकार के चित्रों के संग्रह का शौक़ है। चित्रों की संख्या तो मेरे पास काफ़ी है पर टिकटों की संख्या कम है। मैं स्वयं भी कैमरे-द्वारा फोटो उठाया करता हूँ। प्यारे बाल-सखा के पाठक, तथा अन्य लोग, जिन्हें ऊपर लिखी बातों में दिलचस्पी हो वे मुझसे नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें।

मेरा पता—मदनलाल भावसिंहका स्टुट-आई-ई-टी
हिन्द मार्श रोड, मुज़फ़्फ़रपुर

× × ×

"मुझे भिन्न भिन्न प्रकार के चित्र जमा करने का शौक़ है। बाल-सखा के जो पाठक इसके शौक़ीन हों, वह मुझसे चित्र बदल सकते हैं।"

पता—लक्ष्मेश्वरदयाल C/o बाबू परमेश्वरदयाल,
वक़ील, महल्ला पिपरपाँती, गया

× × ×

मुझे टिकट-संग्रह का अत्यन्त शौक़ है और मेरे पास काफ़ी और हर प्रकार के टिकट हैं। मैं प्यारे अन्य पाठकों से अपने इस शौक़ को पूरा करने के लिए पत्र-दोस्ती करना चाहता हूँ। मेरे और भी शौक़ हैं—जैसे—कारटून, सिनेमा का पैमफ्लेट, लिप्टन के डिब्बों के लेबिल जमा करना और रेडियो बनाना इत्यादि। मेरे पास नये सम्राट् जार्ज और एडवर्ड अष्टम के टिकट भी हैं जो पाठक चाहें ले सकते हैं—

पता—रामकिशोर बैजल C/o मि० कवलकिशोर
बैजल इञ्जीनियर-इन-चीफ़ सोनीपत शूगर
फैक्टरी, सोनीपत

—

वर्षा पर एक मज़ेदार कविता

विश्वमार्तण्ड की प्रार्थना के उत्तर में वर्षा की वह मज़ेदार कविता हमारे दो पाठकों ने भेजी है। एक हैं, श्री पृथ्वीराज चौहान, उदयपुर और दूसरे हैं श्री शान्तिचन्द्र अग्रवाल, बुलन्दशहर। दोनों की कविताओं में कुछ भूल रह गई थी पर दोनों को मिलाने से पूरी कविता निकल आती है। वह हम नीचे छापते हैं और अपने इन दोनों पाठकों को धन्यवाद देते हैं—

झम-झम-झम-झम पानी बरसा,
कीचड़खाना बना मदरसा।
पंडित जी को भूला चन्दन,
आज गये हैं कीचड़ में सन॥
फिसले उधर मौलवी साहब,
शक्ल बनी है उनकी बेढब।
गिरते पड़ते लड़के आये,
क्लास रूम में कीचड़ लाये॥
उसमें फिसले बड़े मास्टर,
मुश्किल से अब पहुँचेंगे घर।
लगी कोल्हू में भारी चोट,
बिखरी स्याही बिगड़ा कोट॥
मचा मदरसे में क्या शोर।
लड़के बन गये मेढक मोर॥

नई पुस्तकें

हमें नीचे लिखी हुई पुस्तकें समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं।

(१) खोजो, खोज निकालो
(२) नेता बुझौवल
(३) गुपचुप कहानियाँ (दो भाग)
(४) बानरसंगीत
(५) हंसू की हिम्मत
(६) बताओ तो जानें (पहला भाग)
(७) भूगोल का बाल-संसार अङ्क
(८) तराजू
(९) ज्ञानरथ

प्रथम ६ पुस्तकों के लेखक पंडित रामनरेश त्रिपाठी हैं और ये सब हिन्दी-मन्दिर प्रयाग से प्रकाशित हुई हैं। पंडित रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी के श्रेष्ठ लेखक और कवि तो हैं ही। बालकों के लिए भी उन्होंने निराली रचनायें की हैं। ये पुस्तकें सभी मज़ेदार और दिल बहलानेवाली हैं पर 'खोजो खोज निकालो' से त्रिपाठी जी की अनूठी प्रतिभा का परिचय मिलता है। इसमें त्रिपाठी जी ने १२ कवितायें लिखी हैं। किसी कविता में फूलों के नाम दिये हैं, किसी में फलों के,

किसी में पहाड़ों के। एक उदाहरण हम नीचे देते हैं। इस कविता में फलों के १२ नाम छिपे हैं—

संतराम था गया अकेला
आज देखने मेला।
उसने देखा वहाँ हज़ारों
इक्का ताँगा ठेला॥
नाना रूप रंग के पक्षी
देख देख ललचाया।
पीला तोता- एक वहाँ से
वह ख़रीद कर लाया॥
चीन देश की काली बत्तक
मेले में थी आई।
टट्टू आये थे पहाड़ से
दिल्ली से हलवाई॥
साफ़ा बाँधे थे पंजाबी
सिर खोले बंगाली।
मदरासी लुङ्गी पहने थे
भोट लिये नेपाली॥
कानपूर से जूते आये
भागलपुर से साड़ी।
अकबरपुर से खद्दर आया
आया शहद पहाड़ी॥
फल फूलों के ढेर लगे थे
गूलर भी थी आई।
अन्त नहीं था भीड़-भाड़ का,
कौन करे कविताई।

वे १२ नाम इस प्रकार हैं—

संतरा	गूलर
आम	पपीता
केला	लीची
अमरूद	अनार
सेब	कटहल
अंगूर	फालसा

त्रिपाठी जी ने इन उत्तरों को पुस्तक के अन्त में दे दिया है। इस पुस्तक की रचना के लिए त्रिपाठी जी की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी-मन्दिर ने एक नागर पत्ता का भी आविष्कार किया है। जो कि ताश का 'बिलकुल नया और बहुत ही मनोरञ्जक खेल' कहा गया है। उसके नियम भी साथ में दे दिये गये हैं। हमारा ख़याल है कि छोटे बच्चे इसे नहीं खेल सकते क्योंकि नियम समझने में उन्हें कठिनाई ज़रूर पड़ेगी पर जो नियम समझ जायँगे उनका मन इससे ज़रूर बहलेगा इसमें सन्देह नहीं।

अंत की तीन पुस्तकों का परिचय हम बाल-सखा के आगामी अंक में देंगे।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

दिन और रात

[चित्रकार, श्रीयुत वाणीकान्त दास
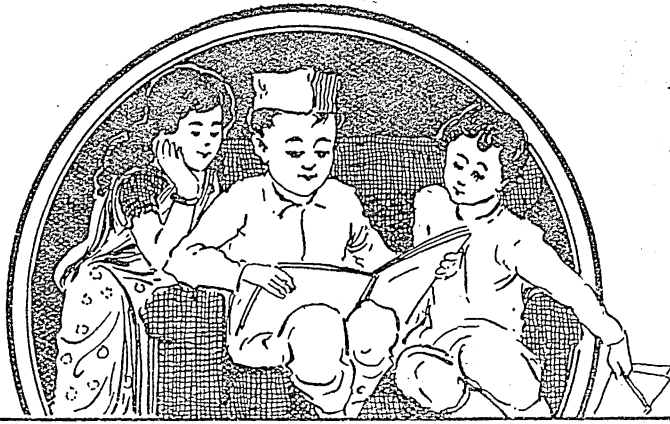
बालसखा

सम्पादक—श्रीनाथसिंह

वर्ष २१] आक्टोबर १९३७—आश्विन १९९४ [संख्या १०

दिन और रात

दिन व रात हैं सखा-सहेली ।
दोनों की है अजब पहेली ॥
खेल खेलकर 'लुकाछिपी' का ।
हार जीत दोनों ने झेली ॥

दिन है तेज चमक का नेता ।
रात तपस्या तम की रानी ॥
दिन जिन फूलों में हँस देता ।
निशि उनमें ला देती पानी ॥

एक हास्य तो एक रुदन है ।
सुख-जग एक एक दुख-घन है ॥
दोनों आते बारी बारी ।
दोनों से निर्मित जीवन है ॥

सुख में हँसता दुख में रोता ।
पर धीरज यह कथा दिलाती ॥
अन्त सदा सुख का दिन होता ।
रात मुसीबत की कट जाती ॥

'श्रीश'

महादेव भाई देसाई

महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी की सरल जीवनी

लेखक, श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, मगनवाडी, वर्धा
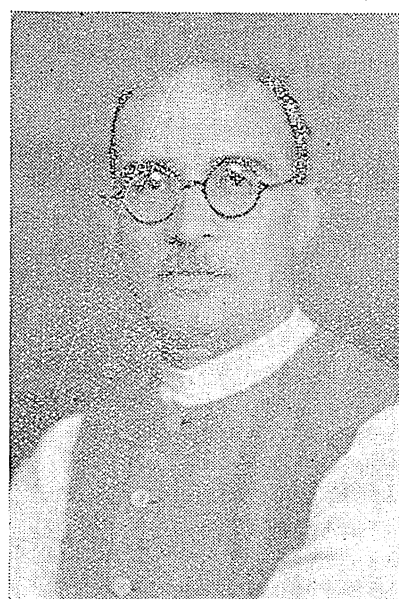
श्री महादेव ह० देसाई

प्यारे बालको! गत सितम्बर महीने के "बाल-सखा" में आप लोगों ने महात्मा जी की सरल जीवनी पढ़ ली होगी। आज मैं उन्हीं के प्राइवेट सेक्रेटरी की सरल जीवनी की कुछ झाँकी आप लोगों को दिखाने की कोशिश करूँगा। आप लोगों में से बहुतों ने श्रद्धेय महादेव भाई देसाई का नाम समाचार-पत्रों में पढ़ा होगा या अपने माता-पिता और दोस्तों से सुना होगा। बहुत कुछ सम्भव है कि आप लोगों में से अधिकांश लोगों ने इन्हें कहीं पर अपने माता-पिता और मित्रों के साथ या अकेले में देखा भी होगा।

यही महात्मा गांधी के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। लेकिन आप लोग यह नहीं जानते होंगे कि ये कितने वर्षों से महात्मा जी के संग में हैं। आज लगभग बीस वर्षों से महात्मा जी के संग में रहते हुए इन्हें हो रहे हैं। क्या आप लोगों ने इतने बड़े लम्बे अर्से में दुनिया के सबसे सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी की सरल जीवनी जानने की कोशिश की है? आप लोगों को यह मालूम ही होगा कि जो लोग महात्मा जी के जितने ही निकट सम्पर्क में आते जाते हैं उनको उतना ही अधिक अपने जीवन को जनता की सेवा के लिए त्यागमय बनाना पड़ता है। ऐसे ही सेगाँव के संत के कुछ वशीकरण मंत्र हैं। इसी लिए आज श्रद्धेय महादेव भाई जी का जीवन पवित्र और त्यागमय होकर चमक रहा है। इस त्यागमय जीवन से हम लोगों को बहुत कुछ सीखना चाहिए। लेकिन मैं भूतकाल की बातों को नहीं लिखूँगा। मैं तो केवल वर्तमान काल की ही कुछ झाँकी आप लोगों की सेवा में रखना चाहता हूँ।

आप लोग अपने गाँव के एक बड़े
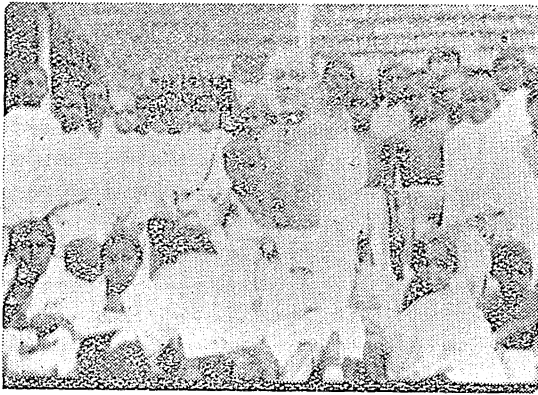
श्री महादेव भाई देसाई हरिजन बालकों के बीच में बैठ कर एक हरिजन बालक को अपनी गोद में लिये हुए हैं।

श्री महादेव भाई देसाई राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल जी नेहरू को वर्धा-स्टेशन से बिदा करने के लिए स्टेशन के पुल से नीचे उतर रहे हैं।

ज़मींदार के प्राइवेट सेक्रेटरी से लेकर ज़िला मैजिस्ट्रेट के प्राइवेट सेक्रेटरियों तक के जीवन-सम्पर्क में आये होंगे। बहुत कुछ सम्भव है कि आप लोगों में से कुछ बड़े बड़े अफ़सरों और उनके प्राइवेट सेक्रेटरियों तक के बालक होंगे ? इसलिए यदि आप लोगों ने कभी उनके रहने और दफ़्र इत्यादि के शान-शौक़त और नादिरशाही हुकूमत को देखा होगा तो आपको मालूम हुआ होगा या भविष्य में होगा कि वहाँ पर ग़रीब लोगों की कैसी उपेक्षा होती है। सरल जीवन को वे लोग कितनी निरादरभरी आँखों से देखते हैं। और ग़रीब बालकों को, दया की आँखों से तो कभी देखते ही नहीं। वहाँ पर गांधी जी के प्राइवेट सेक्रेटरी बहुत ही मामूली जीवन व्यतीत करते हैं। ग़रीबों के संग बहुत ही प्रेम से मिल कर उनका स्वागत करते हैं। उनके सुखों और दुखों को पूज्य गांधी जी तक बड़े उत्साह से पहुँचाते हैं और देश के सामयिक समाचार-पत्रों में आन्दोलन करते हैं।

महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी को आप लोग कभी भी शान-शौक़त की इमारत में काम करते नहीं पायँगे। जहाँ पर आफ़िस का काम करते हैं या रहते हैं वहाँ बिलकुल मामूली बिना आकर्षण की चीज़ें रहती हैं। टीम टाम का कहीं नाम-मात्र दर्शन नहीं होता है। ज़मीन पर एक ग्रामउद्योग की चटाई या कभी एक मामूली-सी खादी की दरी बिछाकर दिवाल के सहारे बैठकर काम करते हैं। मेज़ कुर्सियों और बेन्चों का कहीं दर्शन नहीं, आस पास आये हुए अतिथियों के बैठने के लिए गाँव की बनी हुई चटाई या दरी बिछी रहती हैं। पूज्य महादेव भाई के पास ज़मीन पर या पास की सादी आलमारी में संसार के बहुमूल्य काग़ज़-पत्र व्यवस्थित

रूप से रक्खे रहते हैं। अगल बगल में दुनिया के दैनिक साप्ताहिक, मासिक पत्रिकायें रक्खी रहती हैं। नये आये हुए मिलनेवाले अतिथि इस सरलता को देखकर पहचानने में अक्सर भूल कर जाते हैं। उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता है कि यह गांधी जी का आफ़िस है। पूज्य महादेव भाई एक खादी की धोती, कुर्ता और आँख के ऊपर एक ऐनक (चश्मा) लगाये हुए काम करते रहते हैं।

जब से महात्मा जी ने सेगाँव को अपना रहने और सेवा करने का केन्द्र चुना है तब से तो पूज्य महादेव भाई की सरलता देखने योग्य है। आज भारतवर्ष ही में नहीं सारी दुनिया में यह बात देखने को नहीं मिलेगी कि किसी बड़े आदमी का प्राइवेट सेक्रेटरी बरसात के दिनों में ऊबड़ खाबड़ और घुटनों तक कीचड़ में चल कर काम करे। आज वह शक्ति संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी में देखना हो तो देख लीजिए। वर्धा से सेगाँव पाँच मील ऊबड़ खाबड़ और कीचड़ों के मार्ग से पैदल आना जाना पूज्य महादेव भाई का सदैव का काम है। चाहे बरसात का मौसम हो या जाड़े, गर्मी का। हाँ जब कभी कोई बाहर से मिलनेवाले सज्जन गांधी जी के पास आते हैं तो सवारी का प्रबन्ध करके उनको ले जाते हैं।

पूज्य महादेव भाई आश्रम में स्वयं ही अपने हाथों से अपना कपड़ा, बर्तन, धोते रहते हैं। उनसे मिलनेवाले लोग इस दृश्य को देख कर आश्चर्य करने लगते हैं कि इतने बड़े आदमी बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने छोटे से छोटे कामों को स्वयं करते रहते हैं।

कुछ गुज़रे हुए समय की एक बात मुझे अब तक याद आ रही है और आशा करता हूँ कि यह बात आप लोगों के लिए भी रुचिकर होगी।

एक दिन प्रातःकाल का सुहावना समय था। शायद अक्टूबर का महीना था। क़रीब सात बज रहे थे, हम लोग सुबह का नाश्ता करके तैयार हो गये थे। थोड़ी देर में पूज्य महादेव भाई ने पुकारा कि "चलो सिन्धी गाँव की सफ़ाई करने के लिए।" कुछ देर बाद पूज्य महादेव भाई निकर कमीज़ और पैर में चप्पल पहन कर कन्धे पर एक बाँस की लकड़ी और हाथ में मैला भरने के लिये एक बाल्टी लटकाये हुए आगे आगे चलने लगे। सूर्य भगवान् की प्रातःकाल की सुनहरी किरणें हम लोगों पर पड़ रही थीं, मन्द मन्द वायु चल रही थी। थोड़ी दूर हम लोग आगे बढ़े थे कि पीछे से एक आदमी टाँगे से उतर कर हम लोगों से पूछने लगे कि "मिस्टर देसाई कौन हैं?" हमारी टोली के एक भाई ने उत्तर दिया कि "देखिए आगे आगे एक आदमी कन्धे पर बाँस की लकड़ी और हाथ में बाल्टी लटकाये हुए चल रहे हैं वे ही मिस्टर देसाई हैं।" लेकिन मिलनेवाले महाशय की हिम्मत नहीं पड़ी कि जाकर बाँस, और

बाल्टीवाले आदमी से मिलें। उन्हें कुछ शंका हो रही थी कि मिस्टर देसाई, मज़दूरों के रूप में यहाँ से कहाँ टपक पड़ेंगे ? आठ नौ मिनट में हम लोगों के साथ ही हरिजन गाँव में आ पहुँचे। जो मनुष्य आगे आगे कन्धे पर बाँस की लकड़ी और हाथ में बाल्टी लटकाये हुए चल रहे थे, हरिजन गाँव में पहुँचते ही सावेल से गाँव का मैला उठा उठा कर बाल्टी में भर कर १५० गज़ की दूरी पर गड्ढा में ले जाकर भर आये, तब लौटकर क्या देखते हैं कि आज हमारे बीच में एक नये आदमी कोट, टोप, निकर और बूट पहने हुए खड़े हैं। देखकर पूछा कि आप कहाँ से आ रहे हैं। जब मिलनेवाले महाशय को पता चला कि यही मिस्टर देसाई हैं। आश्चर्य के अथाह सागर में डूबने उतराने लगे और मुँह घुमा घुमा कर बस्ती की गन्दगी का दृश्य देखने लगे। पूज्य महादेव भाई की सरलता देखकर स्वयं भी सफ़ाई के काम में सहायता देने लगे।

अच्छा अब आइए मैं पूज्य महादेव भाई की बालकों की संग की भावुकता की भी कुछ बातें बता दूँ। जब गांधीजी प्रवास में जाते हैं तो बड़े बड़े आदमी उनसे सफ़र में मिलते हैं और बड़े बड़े विषयों पर बातें करते हैं। उन बातचीतों को पूज्य महादेव भाई अपने हरिजन-पत्र में छापते हैं। जिस तरह वे बड़े आदमियों की बातचीत अपने पत्र में प्रकाशित करते हैं उसी तरह जब कभी महात्मा जी बालकों से वार्त्तालाप करते हैं तो वे बालकों की बातचीत* को भी अपने पत्र में बड़े उत्साह से छापते हैं।

जहाँ आप लोगों की बातचीतों को और लोग उपेक्षा की निगाह से देखते हैं वहाँ पर श्रद्धेय महादेव भाई कितने सुन्दर भावों से अपने पत्र में जगह देते हैं।

पूज्य महादेव भाई में परिश्रम करने की अद्भुत शक्ति है, सदैव देश की भलाई के लिए सोलह सोलह घंटे तक काम करते हैं। जिस दिन काम पूरा नहीं होता है उस दिन रात में एक एक और दो दो बजे रात को अपनी प्यारी नींद को भंग कर काम करने लगते हैं। क्या आप लोगों की निगाह में आज किसी बड़े आदमियों के प्राइवेट सेक्रेटरियों में यह गुण है ?

अब मैं आप लोगों का अधिक पृष्ठ नहीं लूँगा। किसी अगले अंक में अखिल भारत-ग्राम-उद्योग-संघ के प्रधान मंत्री श्री जे० सी० कुमारप्पा जी की सरल कहानी लिखूँगा और आप लोगों को यह भी बताऊँगा कि ये कितने बड़े त्याग करके ग्राम-उद्योग-संघ का काम कर रहे हैं।

* बाल-सखा के पिछले अङ्कों में ये वार्तालाप छप चुके हैं।—सं०

एक दरिद्र बनिया धनवान कैसे हुआ

लेखिका, श्री मनोरमा चौधुरी, एम० ए०

एक प्रसिद्ध नगर में एक धनवान बनिया रहता था। वह मूषक-श्रेष्ठी कहलाता था। एक दिन उसकी सन्तानों ने उससे पूछा, "पिता जी! आपको नगरवासी मूषक-श्रेष्ठी कह कर क्यों पुकारते हैं? मूषक तो संस्कृत में मूस को ही कहते हैं; आप मनुष्य होने पर भी आपका मूस का नाम कैसे पड़ा?"

मूषक-श्रेष्ठी ने हँसकर कहा, "मेरे प्यारे बच्चो! बहुत दिन पहले जब मैं दरिद्र था, उस समय कोई मुझे पहचानता भी नहीं था। एक चूहे की सहायता से मुझे बहुत धन प्राप्त हुआ था—इसी लिए मेरा नाम मूषक-श्रेष्ठी हो गया है।"

उस श्रेष्ठी की सन्तानों को बहुत आश्चर्य लगा कि एक मूस ने किस प्रकार उनके पिता को धनी बनाया। तब उस श्रेष्ठी ने उनको अपने जीवन की कहानी बताई।

उन्होंने कहा, "मेरे प्यारे बच्चो! तुम लोग समझते होगे कि बिना रुपये के आदमी इस संसार में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यह सोचना भूल है। यदि मनुष्य बुद्धिमान हो और उसमें परिश्रम करने की शक्ति रहे तो वह अर्थहीन होते हुए भी धनी बन सकता है।

मैं जब बारह साल का था, मेरे पिता ने इस संसार से बिदा ली। मेरे और कोई भाई बहन नहीं थे। मेरी माता बहुत सीधी थीं इससे हमारे कुटुम्बों ने उनसे सारा धन छीन लिया। अन्त में हमारा मकान भी हमारे हाथ से जाता रहा। मेरी जननी अपने आप बिना कुछ आहार किये रह जाती थीं जिससे मुझे पेट भर खाना मिले परन्तु मुझको भी प्रतिदिन खाने भर का चावल तक नहीं मिलता था।

मेरी अम्मा ने तब मुझसे कहा कि "तुम्हारे पिता के एक मित्र यहाँ के प्रसिद्ध बनिया हैं। वे रुपये उधार देते हैं। तुम उनसे कुछ अर्थ माँगकर लाओ और उससे किसी वस्तु की एक दूकान खोलो। उस दूकान से थोड़ा बहुत जो अर्थ लाभ होगा, उससे तुम अपना ऋण मिटा देना।"

मैंने अपनी माता की आज्ञा मान ली। दूसरे दिन अपने स्वर्गगत पिता के मित्र के निकट गया। वे उस समय एक आलसी युवक को तिरस्कार कर रहे थे। उसने उनसे तीन महीने पहले पचास रुपया उधार लिया था। किन्तु उन रुपयों से वह कुछ लाभ नहीं उठा सका। वह सब धन खोकर लज्जाहीन होकर पुनः उनसे धन की भिक्षा के लिए आया था।

इस कारण मेरे पिता के मित्र उस व्यक्ति से अतिशय क्रोधित हो गये थे। उन्होंने फिर

से उसको ऋण देना अंगीकार न किया। उनके सामने एक मरी हुई मुसटी पड़ी हुई थी। उसको दिखाकर उन्होंने कहा-"अगर तुममें कुछ भी बुद्धि होती तो आज इसी चूहे से अनेक धन उपार्जन कर सकते। मैं तुम्हारे जैसे आलसी मनुष्यों को ऋण नहीं देता।"

उनसे तिरस्कृत होकर वह युवक मुँह नीचा करके चला गया। उसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं उनके पास किसलिए आया हूँ। मैंने उनको अपना सारा हाल बतलाया और अपने सब दुःख-कष्टों को उनके सामने प्रकट किया। उन्होंने अपने मित्र की याद करके मुझे अपने आप ही से कुछ अर्थ उधार देना चाहा परन्तु मैंने उनसे ग्रहण करना स्वीकार न किया।

उनसे मैंने कहा, "देखिए; आप थोड़ी देर पहले उस युवक के आलस्य पर ही रुष्ट हो रहे थे। उसकी तरह मैं भी आपका धन नष्ट नहीं करना चाहता हूँ। आपके कहने के अनुसार मैं उसी मरी हुई मुसटी की सहायता से धनोपार्जन करना चाहता हूँ। अगर आप कृपया मुझे उस मुसटी को ऋण स्वरूप दे दें तो मैं अपने को बड़ा सौभाग्यवान् समझूँगा।

मेरे पिता के मित्र ने मेरी वासना सुनकर, प्रसन्न होकर मुझे वह चुहिया दे दी। उसकी दुम लटकाकर मैं जैसे ही रास्ते में निकला, एक आदमी ने मुझसे उसे ख़रीद लेना चाहा। उसको अपनी पालतू बिल्ली के भोजनार्थ एक चूहे का प्रयोजन था। मैंने उसके पास दो आने में उस मुसटी को बेच डाला।

उसी दुअन्नी से मैंने सात पैसे का चना ख़रीदा और एक पैसे की एक मटकी। मटकी में पानी भर के एक चौमुहानी पर बैठ गया। मैं जानता था कि उसी रास्ते से लकड़हारे जंगल में जाते थे।

सन्ध्या के समय जब कुछ लकड़हारे वन से लकड़ी काट कर थके माँदे लौटने लगे, तब मैंने उनको पानी पिलाया और खाने को चने दिये। आनन्दित होकर सब लकड़हारों ने मुझे लकड़ी के दो दो टुकड़े दिये। सब लकड़ी के टुकड़ों को जमाकर मेरे पास एक ढेर बन गया। मैंने उसी दिन उस ढेर को बेचकर आठ आना कमाया। उसमें से मैंने अपनी माता के और अपने लिए एक आने का सत्तू मोल लिया—और दूसरे दिन के लिए बाक़ी पैसों का चना और एक बड़ा-सा मटका।

दूसरे दिन चना और पानी अधिक रहने के कारण सभी लकड़हारों की भूख-प्यास मिटा सका। उस दिन मुझे और अधिक काष्ठ मिला। मैंने उसमें से कुछ तो बेच डाला और कुछ अपने घर में रखवा दिया। इस प्रकार प्रतिदिन मेरी कोठरी में लकड़ी का ढेर क्रमशः बढ़ने लगा।

इस समय वर्षा ऋतु का आगमन हुआ और लकड़ी का मूल्य बहुत चढ़ गया। तब मैंने जमाई हुई सारी लकड़ी को बेच कर बहुत रुपया कमाया। पीछे उसी अर्थ से एक दूकान खोली। सचाई से काम करने के कारण मेरे पड़ोसी मुझसे प्रसन्न रहते थे। वे मेरी ही दूकान

से सब वस्तु ख़रीदने लगे। धीरे धीरे मैं अपनी दूकान बढ़ाने लगा। दो साल के अन्दर मैं लखपति बन गया।

तब मैंने स्वर्ण का एक चूहा बना कर अपने पिता के मित्र को भेज दिया। मैंने उनको कहला भेजा कि, "एक मरी मुसटी के लिए मैं आपके पास ऋणी था। आपके उपदेश और साहाय्य का परिणाम मुझ पर यह हुआ कि आज मैं धनी व्यक्तियों में गिना जा रहा हूँ। अतएव आप मुझसे यह उपहार ग्रहण करना स्वीकार करें।"

मेरे पिता के मित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। अन्य युवकों को शिक्षा देने के लिए उन्होंने मेरा नाम मूषक-श्रेष्ठी रक्खा। तब से मेरा वही नाम रह गया।

दिवाली का दिया

लेखक, श्रीयुत रामनारायण

एक नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पाँच लड़के थे। वे पढ़े-लिखे नाम को भी न थे। सबसे छोटा कुछ बुद्धिमान् था। शेष चारों इस मामले में बिलकुल कोरे थे। ब्राह्मण और उसके चारों बेटे रोज़ माँग-जाँच कर अनाज या आटा लाते थे। उन्होंने अलग-अलग चूल्हे-चौके बना रक्खे थे जिन पर वे अलग-अलग ही रोटी बनाते खाते और इस प्रकार जैसे-तैसे पेट भर लेते थे। कुछ दिनों बाद ईश्वर की दया से छोटे भाई का विवाह होगया। उसकी स्त्री साक्षात् लक्ष्मी थी। उसने आते ही देखा कि घर में पाँच चूल्हे बने हैं। उनमें राख का ढेर लगा है। घर में न तो सेर-दो सेर अनाज है, न आटा और न साग-सब्ज़ी का प्रबन्ध। दोपहर को वे सब अपने-अपने हिस्से का अनाज लेकर आये। बहू ने सब चूल्हे तोड़ डाले; केवल एक चूल्हा अपने ससुर का रहने दिया। घर को झाड़-बुहार कर उसने सुन्दर बना दिया। फिर सारा अनाज एक जगह कर डेढ़-दो सेर लेकर उसे साफ़ करने लगी। ससुर यह देखकर बड़े अचम्भे में हुआ और बोला—

"अरी बहू, तू यह क्या कर रही है? इतने अन्न से तो हम लोग ही मुश्किल से पेट भरते थे। अब एक तो तू ही बढ़ गई है और फिर उसमें से भी बहुत-सा तैंने निकाल फेंका है। हम लोग तो भूखे रह जायँगे।"

वह बड़ी नम्रता से बोली—"पिता जी, आप चिन्ता न करें। आप सब तो खूब आनन्द से भोजन कर लीजिएगा। बचेगा तो मैं भी खा लूँगी।"

बहू ने बड़ी सफ़ाई से भोजन बनाया और प्रेम से ससुर तथा चारों ज्येष्ठ और पति को खिलाया। जब सब भोजन कर चुके और

फिर भी थोड़ा-सा भोजन और अनाज बच रहा तो उन लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वे रोज़ सारा अन्न लाकर बहू के पास रख देते और पेट भर भोजन करते। इस तरह धीरे-धीरे उनकी दशा बदलने लगी। उनके घर में अनाज भी काफ़ी रहने लगा और उनकी आर्थिक दशा भी सुधरने लगी। ब्राह्मण और उसके लड़के बहू का बड़ा आदर करने लगे।

एक बार उस नगर के राजा की पीठ में बड़ा-सा फोड़ा निकला। सब तरह के इलाज करा लेने पर भी उसमें आराम होता नज़र नहीं आया। राजा दर्द के मारे बेचैन रहता था। ४ दिन से नींद भी नहीं आई थी। ब्राह्मण की बहू ने सोचा कि हो न हो, फोड़ा पक गया है। १-२ दिन में फूटा और राजा को आराम हुआ। उसने कहला भेजा कि मेरे ससुर राजा का दर्द दूर कर सकते हैं। यह सुनकर राजा ने ब्राह्मण को बुलवाया। जब सिपाहियों ने उसे आकर राजा की आज्ञा सुनाई तब वह बहुत घबराया और अपनी बहू के पास पहुँच, कहने लगा—"बेटी, तैंने यह क्या झगड़ा कर दिया? मैं तो कुछ जानता ही नहीं।"

बहू ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा—"पिता जी, आप चिन्ता क्यों करते हो? एक नीम की नरम टहनी लेकर मन में कुछ गुनगुनाते हुए उसे राजा के फोड़े पर धीरे-धीरे फिराना। भगवान सब अच्छा ही करेगा; आप तो जाओ।"

बहू के कहने से ब्राह्मण सिपाहियों के साथ हो लिया और राजा के पास पहुँच उसने बहू की बतलाई हुई रीति से ही झाड़ा देना शुरू किया। 'होनहार प्रबल होती है।' फोड़ा बिलकुल पक तो चुका ही था। थोड़ी देर में स्वतः फूट गया। बहुत-सा मवाद निकलते ही राजा की बेचैनी दूर हो गई और उस दिन उन्हें नींद आगई। ब्राह्मण से अब राजा ने कहा—'ब्राह्मणदेवता, आपने मेरी जान बचा ली है। मैं आपके इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता; परन्तु फिर भी मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। माँगिए, आप क्या चाहते हैं?'

ब्राह्मण ने कहा—"महाराज, मैं तो कुछ भी नहीं जानता। मेरे बेटे की बहू की कृपा से ही यह सब हुआ है; इसलिए मैं उससे पूछ आऊँ।"

घर आकर ब्राह्मण ने सारा हाल अपनी बहू को सुनाया। बहू ने कहा—"पिता जी, आप तो राजा से और कुछ न माँगकर केवल 'दिवाली का दिया' माँगिए।"

ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। सुनकर राजा बड़े चकराये। उन्होंने ब्राह्मण को बहुत समझाया कि महाराज, जितना चाहो धन ले लो; हाथी, घोड़े, वस्त्र, जो चाहो, माँग लो। यह आपने क्या माँगा? परन्तु वह टस से मस नहीं हुआ। अन्त में राजा साहब ने ढँढोला पिटवा दिया कि इस वर्ष दिवाली पर ब्राह्मण के सिवा कोई दिया न जलावे। जो इसके विरुद्ध करेगा उसे भारी दण्ड दिया जावेगा।

निदान दिवाली आई। उस दिन सारे नगर में अँधेरा था, यहाँ तक कि राजमहल में भी दीपक नहीं जला था। केवल ब्राह्मण का लिपा-पुता घर ही दीप-मालिका से जगमगा रहा था। आधी रात बीत जाने पर, जब सब लोग नींद की गोद में पड़े खर्राटे ले रहे थे, लक्ष्मी देवी स्त्री का रूप धारण करके आई। वह जहाँ जाती वहीं अँधेरे के कारण ठोकरें खाती। कहीं उसके सिर में दरवाज़े की चोट लगती, कहीं किसी की चौखट में उलझ कर गिर पड़ती। इस प्रकार घूमती-फिरती वह ब्राह्मण के घर पहुँची। वहाँ भी बाहर का दरवाज़ा बन्द था। यह देख लक्ष्मी ने पुकारा "अरे ब्राह्मण! किवाड़ खोल!"

बहू जाग रही थी। उसने कहा—"चल यहाँ से! इस समय क्यों तंग करने आई है? बता, तू कौन है?" लक्ष्मी देवी ने कहा—"मैं लक्ष्मी हूँ। नगर भर में अँधेरे के कारण मुझे कहीं आश्रय नहीं मिला, इस कारण तेरे घर आई हूँ।"

ब्राह्मण की बहू ने उत्तर दिया—"हमें तो तेरी चाह है नहीं; परन्तु जब तू दरवाज़े पर आगई है तो तुझे निराश करना भी ठीक नहीं। अच्छा, यदि तू अन्दर आना चाहती है तो पहले यह वायदा कर कि बहू बनकर आऊँगी, बेटी बनकर नहीं।"

लक्ष्मी देवी बहुत घबरा रही थी। उसने कहा—"अच्छा देवी, बहू बनकर ही आऊँगी। ले, अब तो किवाड़ खोल।"

ब्राह्मण की बहू ने किवाड़ खोल दिये। लक्ष्मी देवी ने उसके घर में प्रवेश किया।

दूसरे दिन लोगों ने देखा—ब्राह्मण की तो दशा ही बदल गई है। अब वह बड़े आनन्द से दिन बिताने लगा। उसके बेटे भी रईस-ज़ादों की भाँति रहने लगे। उनके वैभव को देखकर सब लोग बहू की प्रशंसा करते और कहते थे, भगवान् बहू दे तो ऐसी दे।

गजरा

लेखक, श्रीयुत छबीलेदास निर्मल

माली ने है इसे बनाया,
नव सुमनों से इसे सजाया;
पार्टियों की शान यही है,
सुन्दरता की खान यही है;
मादकता है कली कली में।

गजरे के-से सुन्दर बनना,
गजरे के-से निर्मल रहना;
गजरे के-से ना कोमल होना,
धूप शीत से ना मुरझाना;
पाओगे मान गली गली में।

परिच्छा महातम्

लेखक, रायबहादुर पं० व्रजमोहन व्यास

यह आल्हा रायबहादुर पं० व्रजमोहन व्यास ने अपने विद्यार्थी जीवन में लिखा था। उस समय को काफ़ी वर्ष हो गये पर इम्तहान का भय आज भी वैसा ही बना है। इसलिए यह आल्हा आज भी नया है। आशा है बाल-सखा के प्यारे पाठकों का इससे मनोरञ्जन होगा।

मैं पद बन्दौं श्री गनेस को,
जो हैं बड़े लिखैयापूर।
कछुक दिना में 'भारत' लिख भे,
मुख उन किहिन 'व्यास' कै भूर ॥
की पद बन्दौं माय सारदा,
जो लरिकन कर करैं सहाय।
जिनके सुमिरे ते भैया जी,
झूँठ लिखा सत्त होइ जाय ॥
की पद बन्दौं हिंगलाज को,
जो लरिकन कर राखैं लाज।
जिनके सुमिरे से भैया जी,
तुरतहि सिद्ध होइ सब काज ॥
मन में माई जी इतना है,
आज परिच्छा करौं बखान।
कठिन चढ़ाई लखि लरिकन की,
तुरतहि खड़े होत हैं कान ॥
देस देस के लरिका आये,
कालिज रहा कसामस छाय।
देख भीर भारी लरिकन की,
धरती गई तुरत अकुलाय ॥
मन मन सोचैं माय पिरथिवी,
नाहक लरिका होत हलाल।
असत पढ़ाई से का होइहे,
काहे गिरत आय मुह काल ॥
भकभक भकभक मोटर बोली,
'कोल'* काल सम पहुँचा आय।
हड़बड़ पड़िगा तेहिं अवसर माँ,
लड़िका सबै गयें अकुलाय ॥
जात बिलायत कै मुछमुंडा,
दूनो नैना रखे अँगार।
भार बढ़ावन कै बसुधा का,
मानहु पाप लिहा अवतार ॥
धकधक धकधक जियरा धरकै,
उलटी लेंई ऊबि कै साँस।
आजुई विधिना का करवैया,
धाखहु करै फेल कै पास ॥
महमद सुमिरैं सबै मुसल्ला,
हिन्दू सबै जपै हर नाम।
मदद जो हमरी तुम ना करि हौ,
बूड़ै सात पुस्त कै नाम ॥
यही समैया के अवसर माँ,
घंटा बादर अस घहरान।

---

* उस समय के एक रजिस्ट्रार।

कठिन अवाज भई घंटा की,
लड़िकन क्यार सूख गै प्रान ॥
सुनतै घनन घनन घंटा की,
लड़िका उठे भरहरा खाय ।
चले कमरवन माँ भैया जी,
जैसे भेंड़ कसाई जाय ॥

हियाँ कि बातैं हियनै रहि गईं,
अब कमरन कै सुनौ हवाल ।
परिचा बटिशा जेहिका ग्राखत,
लड़िका होइँगें हाल बेहाल ॥
पढ़तै कागद के भैया जी,
लड़िका गये सनाका खाय ।
जेहि लड़िका के ओर निहारौ,
मुख माँ रही मुर्दनी छाय ॥
बहुतेक जिनका सबक याद है,
कागद खैंच करैं घमसान ।
बहुतन का अच्छर नहि आवै,
ऊपर का चितवैं असमान ॥
कुरसी चढ़िके 'गारड' बैठे,
जैसे बैठ गिद्ध महराज ।
दोख लगावैं माँ लड़िकन का,
जिनके तनिक न आवत लाज ॥
सात दिना भे चली लेखनी,
स्याही छलक रही मुख छाय ।
जनम भरे का पढ़िबो लिखिबो,
छिन माटी माँ गयो बिलाय ॥
घर का लौटे जब फिर लाला,
माता प्रश्न करैं हरखाय ।
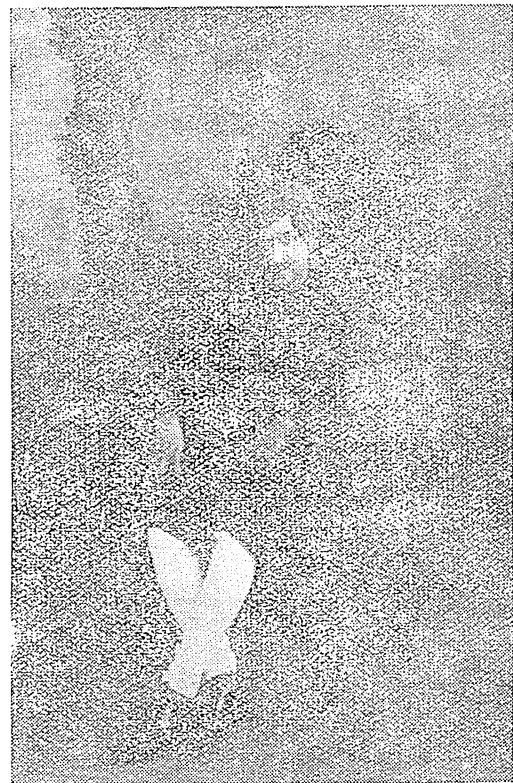
रायबहादुर पं० व्रजमोहन व्यास

कैसा कागद भा भैया जी,
कहिके विस्मय देहु मिटाय ॥
सुनिकै बातैं महतारी की,
ललुआ बोले बचन सम्हार ।
केहि किरिया के अब हम रहिगे,
निज कै फूटा करम हमार ॥
चार दिना में ठंडा होइगा,
हल्ला सबै परिच्छा क्यार ।
आई छुट्टी अब गरमी की,
होइँगें डेढ़ महीना पार
हियाँ की बातैं हियनै रहि गइ,
अब रेज़ल्ट कै सुनौ हवाल ।

चिट्ठी पत्री टेली ग्राम सब,
पहुँचन लागीं नैनीताल ॥
कोऊ फेल औ कोऊ पास,
औ केतनन का कुछ पता न लाग।
बिना पतावालेन के जियरा,
सुलगै लगी फिकिर कै आग ॥

बार शनीचर के दिन भैया,
प्रगटे 'गजट' राज महराज।
बहुतेक लड़िका पासै होइगें,
बहुतन क्यार बिगाड़िन काज ॥
ब्राह्मन होइके बेद न जानै,
औ कायथ होइ कलम डेराय।

नकल करै से लड़िका भागै,
ओकर जनम अकारथ जाय ॥

तीन टाँगोंवाला मेज़

लेखिक, कुमारी कपिला मलिक आयु ९ वर्ष

बहुत दिनों की बात है कि गाँव का एक आदमी एक बार दिल्ली शहर में गया, वहाँ उसने बड़ी अनोखी चीज़ें देखीं। वहाँ उसने बाज़ार में से लकड़ी का एक छोटा-सा तीन टाँगोंवाला मेज़ ख़रीदा वह उसको घर ले जाने लगा पर रास्ते में वह थक गया इसलिए उसने मेज़ को पृथ्वी पर रख दिया, और उसके सामने बैठ कर अपनी उँगली उसकी ओर करके बोला—"बच्चा! तुम तो बड़े आलसी हो। तुम्हारे पास तीन टाँगें हैं और मेरे पास ख़ाली दो इसलिए तुम तो अपने आप चल कर भी पहुँच सकते हो, तुमको अपने आप घर जाना चाहिए"। मेज़ को वहीं छोड़कर वह जब घर पहुँचा तो उसकी स्त्री उससे बोली—"मेरे लिए दिल्ली से क्या चीज़ लाये हो"। उसके पति ने आश्चर्य से कहा, "क्या वह अभी तक घर नहीं पहुँचा? मैं तुम्हारे लिए एक सुन्दर मेज़ लाया हूँ जिसकी तीन टाँगें हैं और मेरे पास केवल दो टाँगें हैं, इसलिए मैंने उसको अकेला छोड़ दिया। मैंने समझा था कि वह मेरे से पहले पहुँच जायगा पर अब तो देर न लगेगी क्योंकि वह रास्ता जानता है"।

इस उत्तर से उसकी स्त्री बड़ी क्रोधित हो गई और बोली—"वाह! तुम भी अजब आदमी हो"। इसलिए वह जल्दी से भागती हुई मेज़ को लाने गई, उसने उसी स्थान पर पाया जहाँ उसका पति रख गया था, वह उसको घर उठा लाई।

एक मज़ेदार कहानी

लाल-काले

लेखिका, कुमारी के० सहगल

शुक्र जी के पुराने पैत्रिक वासस्थान के निकट जो तालाब है, उसके पूरबवाले तट पर काली चींटियों का राज्य था और पच्छिमवाले तट पर लाल चींटियों का। दोनों राज्यों में आपस में पटती न थी, काली और लाल चींटियों में अकसर मामूली बातों के लिए ही झगड़ा मार-पीट हो जाया करती थी।

आज गरमी अधिक थी, काली बहू तालाब पर जल भरने आई थी। धूप के मारे काली बहू के पैर पृथ्वी पर न पड़ते थे। उस पर वह काली रानी की प्यारी सखी थी। काली बहू जब इस ओर घाट पर जल भर रही थी, उस समय दूसरी ओर लाल चींटियों की फ़ौज की एक पलटन क़वायद सीख रही थी। पलटन का एक छोकड़ा कुली काली बहू को देखकर चुपके चुपके इस पार आकर हाथ मुँह से काली बहू की ओर इशारा करके हँसी-ठट्ठा करने लगा। काली बहू क्रोधित होकर घड़ा फेंक कर घाट से उठकर गालियाँ बकती हुई घर को चल दी। लाल छोकड़ा कुली ने गाना शुरू किया :—

काली बहू हृदय की काली।
मुँह बिचका कर भाग चली॥

काली बहू रोती हुई रानी के पास आकर एकदम धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी। "क्या हुआ, क्या हुआ?" कहकर रानी व्यस्त हो उठी। काली बहू रोती हुई बोली—

'लाल कुली पाजी गँवार ने,
किया मेरा अपमान।
अपमानित हो नहीं जिऊँगी,
अभी तजूँगी प्रान॥

रानी ने सब कथा विस्तार से सुनी। मैं इसका अभी प्रतिकार करती हूँ। सखी, इमली की पत्ती और बेल का काँटा ले आओ। मैं राजा को चिट्ठी लिखूँगी।

चिट्ठी लिखी गई। सँड़सीमुख द्वारपाल सूँड में पत्र लेकर राज-सभा में पहुँचा। काली चींटियों का राजा—मंत्री, सभासदों के साथ राजदरबार में सिंहासन पर बैठा था। राजा के दाहिनी ओर काले राजमंत्री और बाईं ओर काले सेनापति बैठे थे। दरबार में चोबदार चींटी इधर-उधर घूम घूम कर फर फर करके सबको ख़बरदार कर रहा था। मुद्दई मुद्दालेह सब हाथ जोड़े सूँड़ नीचे किये खड़े थे। इसी समय द्वारपाल ने आकर झुक कर पृथ्वी पर सूँड़ टेक कर राजा को प्रणाम किया। राजा ने चिट्ठी पढ़ी और मंत्री के हाथ में दे दी। मंत्री ने राजा से पूछा—"मंत्री जी क्या होना चाहिए?"

मंत्री अनेक क्षण बैठे विज्ञों की भाँति सूँड़ हिलाते रहे, फिर बोले—"महाराज, लाल चींटियाँ बड़ी ज़ालिम हो गई हैं। वे किसी को कुछ समझती ही नहीं हैं। रोज़ ही देखता हूँ कि उनकी सेना क़वायद फवायद किया करती हैं ज़रा-सा बहाना पाकर वे हमारे राज्य पर आक्रमण करके हमारा सर्वनाश कर देना चाहती हैं। महाराज! मेरी तुच्छ राय है कि रानी साहिबा को समझा बुझा दीजिए कि वे छोटे लोगों की तुच्छ बातों पर कान न दिया करें।

राजा बड़े असमंजस में पड़ गया। रानी के अनुरोध की रक्षा न करने पर घर में कुरुक्षेत्र मचेगा। और उधर लालमुँहा छोकड़े को सज़ा देने को जाने पर युद्ध अवश्यम्भावी है। बहुत कुछ सोचने विचारने के बाद राजा ने द्वारपाल से कहा, "सुनो, महारानी जी के कान में चुपके से कहना कि ऐसी खोटी बातों पर ध्यान न दिया करें। देखो, ख़बरदार किसी और के सामने यह बात न कहना। रानी जी के चित्त को आघात पहुँच सकता है। समझे न।"

द्वारपाल रानी के पास जवाब लेकर पहुँचा।

"एहो रानी सुनिए देकर ध्यान,
मरे रानी कर करके अभिमान।
आई बाँदी लिये पंखा अनमोल,
खाइये मधुमाख कहा मुँह खोल॥

बैठ कर बाँदी ने पैरों के पास
कहा विनम्र हो 'मैं हूँ तेरी दास।
किसने दिया तुम्हें दुख दुर्भर,
लाऊँ मैं काट अभी उसका सर॥
क्रोध भरी कुछ लम्बी श्वास छोड़।
कहा रानी ने तब मुँह सिकोड़।
कौन हाथ में मधु लेकर,
छिड़कता है नमक घाव पर॥
ऐ बाँदी होगा मेरा मरण अभी,
छूटेगा मेरा दुःख सारा तभी।
बासन माँजती है जो मजदूरिन,
रहती सुखी वह भी निश दिन।
हम राजा की भी रानी होकर,
फिर अपमान सहैं क्यों कर॥
आ पड़ा है मुझ पर दुःख घोर,
बहते आँसू जिनका ओर न छोर।
है अपार दुःख होगा न प्रतीकार,
जीवन है मेरा अब दिन दो चार॥

यह कहकर रानी ने कोप-भवन का रास्ता पकड़ा, बाँदियों ने, सखियों ने बहुत कुछ समझाया पर रानी का क्रोध कम न पड़ा। रानी ने अन्न, जल त्याग दिया। सात दिन सात रात वह भूखी रही, अनाहार, अनिद्रा और व्यथा से रानी का रंग कसौटी की भाँति हो गया। सखियों ने जाकर सारा हाल राजा से निवेदन किया, हम सबने महारानी जी को बहुत समझाया बुझाया पर वे—

नहीं खाती हैं चीनी, और न खावै गूड़।
न खावै मधु मिश्री, और न माछी का मूँड़॥

राजा ने मंत्री को बुलवा भेजा। मामला गम्भीर देखकर मंत्री ने कहा—"महाराज और कोई उपाय नहीं है। युद्ध की तैयारी होने की आज्ञा दीजिए और महारानी जी से अन्न जल ग्रहण करने को कहला दीजिए। मैं लालमुँहा छोकड़े को उपयुक्त सज़ा दूँगा। काले सेनापति की तलबी हुई। सेनापति ने लालमुँहा छोकड़े को पकड़ मँगाया। चींटी जल्लाद ने एक ही दन्त प्रहार में छोकड़े का मूँड़ काट फैंका। रानी ने अन्न जल ग्रहण किया।

उधर लाल गुप्तचर (जासूस) ने जाकर लाल महाराज को ख़बर दी कि काली चींटियों ने लाल सैनिक का प्राण-वध किया है। लालराज क्रोध से आगबबूला हो उठा।

क्रोध से लगा काँपने मूँड़,
लाल लाल आँखें टेढ़ी सूँड़।
किट किटाते दन्त महाराज लाल,
हुंकार छोड़े, मानों अन्तक काल।
मंत्री सभी सभासद जन,
भय से काँपे शंकित मन।

लाल महाराज ने क्रोध स्वर में ज़ोर से चिल्ला कर कहा, "अभी मैं कालों का वंश निर्मूल करूँगा। इतना घमंड। मेरे सैनिक की देह पर हाथ डालने का हौसला!!"

लाल सेनापति ने हाँड़ीमुख के नाम हुकुम लिखा। युद्ध के लिए लाल सेना प्रस्तुत हुई।

सजो सजो रे वीरो एक क्षण,
बजे नगाड़ा दन दन दन।
हाँड़ीमुख चले आगे आगे,
लाल सेना के देखे डर लागे।
तेज़ चमकती ले ले तलवार,
न छोड़ो कालों को आटा के खवार।
जड़ से अलग करो मूँड़ जाय,
खाल में दाँत घुसाय घुसाय।
आये आये पड़ गया जब हल्ला,
सब छोड़ भागे अपने गल्ला।
घास से भाग चटपच वोट,
खाली कीन्हा अपना कोट।
देखकर लाल वीरों की कतार,
भागे कीट पतंग छोड़ घर बार।

दल बाँध कर लाल चींटियों की सेना संध्या-समय तालाब के पास आ पहुँची। हड़बड़ काले दूत ने आकर काले महाराज को इत्तिला दी कि शत्रु-सेना तालाब के पास आ पहुँची। काले सेनापति ने उसी क्षण हुक्म जारी किया, "सब लोग विवर के भीतर घुस जायें और सब सेना तैयार हो।"

चींटा जल्लाद अपना दल लेकर घाट पर आगे आया। अब किसके बाप की मजाल थी जो भीतर घुस सके। दोनों दलों में गुप्तचरों को भेज भेज कर शत्रुपक्ष की ख़बर लेने की चेष्टा होने लगी। एक चींटा सैनिक अपने दल से आगे

बढ़ गया। उसके तालाब के पास पहुँचते ही उसको लाल सैनिकों ने घेर लिया। लाल सैनिक उसको पकड़ कर लाल महाराज के पास ले गये उनके सेनानायक ने हाथ जोड़ कर लाल महाराज से निवेदन किया, महाराज, यह शत्रु का दूत है, इसके लिए क्या आज्ञा होती है?"

लाल महाराज ने गम्भीर होकर पूछा, "तू किस मतलब से घूमता फिरता था?"

चींटा ने कहा, महाराज, मैं चींटा हूँ। काली क्षुद्र चींटियों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं हमेशा से इधर चरने आया जाया करता हूँ।

महाराज ने यह सुनकर आज्ञा की, "इस बदज़ात के पेट में बहुत मधु होगा। मधु बाहर कर इसे छोड़ दो।"

तालाब के किनारे जहाँ लाल सेना ने अपना डेरा डाला था, वहाँ एक अरंड का पेड़ था। उस पेड़ पर एक गिरगिट रहता था। वह रोज़ शाम को पेड़ से नीचे उतर कर भोजन की तलाश में विचरा करता था।

गुट गुट गिरगिट निःशब्द जाय;
जीभ लपलपाय कीट-पतंग खाय।

उस दिन सन्ध्या-समय गिरगिट जिस पेड़ से नीचे आया, तो उसे लाल सैनिकों के दल ने, जो वहीं पर था घेर लिया। गिरगिट उनके काटने की ज्वाला से अस्थिर होकर किसी प्रकार प्राण लेकर भाग कर पेड़ पर चढ़ गया। उस दिन उसने कुछ भोजन भी नहीं किया। शरीर फूल कर ढोल-सा हो गया। काटने की ज्वाला से रात भर छटपटाते हुए गिरगिट ने किसी प्रकार वह रात काटी। उसने प्रतिज्ञा की कि जिस किसी उपाय से होगा वह लाल चींटियों से बदला लेगा।

(२)

भोर होते ही मुर्गे ने बाँग दी।
कूकड़ू कूँ कूकड़ू कूँ, हुआ रे सवेरा।
उठो रे धीया पूत, छोड़ो रे बसेरा॥

तालाब के आस पास जो जहाँ था वहीं उसकी आँख खुल गई। काली और लाल सेनायें दलबद्ध होगईं। सूर्यदेव के निकलते निकलते काली सेना दलबद्ध होकर बाहर आ गई। अरण्ड पेड़ के नीचे काली और लाल चींटियों में घोर संग्राम हुआ। सारे कीट-पतंग पेड़ के नीचे से भाग खड़े हुए। केवल एक गिरगिट पेड़ की डाल पर बैठा हुआ वह घमासान युद्ध देखता रहा। काली सेना प्रायः नष्ट-विनष्ट हो गई। काले राजे, 'काले सेनापति और दस बीस लोग किसी प्रकार भाग कर, विवर के भीतर घुस गये। लाल सैनिक "मारो काटो, एक भी बचने न पाये।" चिल्लाते हुए विवर के मुँह तक दौड़ते आये; पर वहाँ विकटमूर्ति चींटा जल्लाद को नंगी तलवार लिये खड़ा देखकर किसी को आगे बढ़ने का साहस न हुआ। लाल महाराज विजय-डंका बजाकर लाल पत्तों का निशान उड़ा कर ससैन्य अपने राज्य को वापिस आया।

लाल सेना के चले जाने पर गुटगुट गिरगिट पेड़ से नीचे उतरा। दो दिन से बेचारे ने कुछ न खाया था। मरे हुए चींटी सैनिकों में से गिरगिट ने ढूँढ़ ढूँढ़ कर लाल सैनिकों को बड़े आह्लाद से खाया। लाल चींटियों पर से उसका क्रोध अब तक मिटा न था। गुट गुट खूब खा पीकर पेड़ की डाल पर आ सोया। आधी रात के बीच में उसने स्वप्न देखा, एक प्रकाण्ड लाल चींटा मुँह बाये उसको काटने आ रहा है। धड़ कड़ करके उसकी नींद भंग हो गई। वह जाग बैठा। छाती धड़धड़ करने लगी। इतने लाल चींटे कैसे हज़म होंगे? गिरगिट को वमन होने लगा। सारी देह फूल गई और पेट और छाती में जलन पड़ने लगी। बेचारे का बुरा हाल था। किसी प्रकार से पेड़ से नीचे उतर कर तालाब के पास जाकर उसने कुछ ठंडा जल पिया तो प्राण कुछ शीतल हुए। लाल चींटियों के कारण ही तो उसको इतना कष्ट है। तो फिर उनको किस प्रकार दण्ड दिया जाय? यही वह सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि जब काली चींटी लाल चींटी की शत्रु है तो काले राजा से भेंट करनी चाहिए। तब सोचकर वह उसी दम काले चींटियों के विवर की ओर चल खड़ा हुआ।

काले राजा युद्ध में हार कर, भागकर विवर में घुसा था। मंत्री ने कहा, "महाराज, मैंने तो तभी कहा था कि लाल चींटियों से झगड़ा करना ठीक नहीं। अब तो हमको उसका फल भोगना ही पड़ेगा। जो हो, अब आप आराम कीजिए, कल इसका कुछ उपाय सोचा जायगा। मैं विवर के मुँह पर चींटा जल्लाद को तैनात कर आया हूँ। उसके मौजूद रहते हुए किसी शत्रु का

साहस न होगा कि वह हमारे विवर में घुसने की भी चेष्टा करे।

इधर विवर के मुँह पर विकटमूर्ति चींटा जल्लाद मुँह फैलाये आँखें निकाले बैठा हुआ था। लाल सैनिक लड़ाई जीत कर विवर पर आक्रमण करने आये पर उसकी भयंकर मूर्ति देखकर वे सब भय से भाग खड़े हुए। क्रम से रात बढ़ने लगी, चारों ओर अन्धकार छा गया। आस-पास वन में अनेक विभीषिकाएँ दिखाई पड़ने लगीं। आधी रात बीत चली। घोर अन्धकार में अकेले बैठे बैठे जागते रहने से चींटा की देह अज्ञात भय से काँपने लगी।

भय लागै निशि अति अँधियारी,
मुख नहीं खुलति चढ़ी खुमारी।
आँख देखे नहीं, सुने न कान,
भय-विह्वल हो सूखे प्रान।
छाती धड़कत काँपत गात,
चहुँ ओर से मृत्यु लखात॥

यह क्या बाप रे? कैसा शोर है? जल्लाद ज़ोर से चिल्लाया, "कौन है रे? काले बरकन्दाज़ों की पाँति की पाँति विवर के मुँह के पास आ खड़ी हुई। विवर के सामने के वृक्ष के नीचे से आवाज़ आई, "मैं हूँ बन्धु गिरगिट।"

जल्लाद ने कर्कश स्वर में पूछा, इतनी रात को क्या काम है? गिरगिट ने अपनी सब कथा कह सुनाई और बोला, "मैं तुम्हारा साथ देकर लाल चींटियों का नाश करना चाहता हूँ।" जल्लाद ने फिर पूछा, तुम शत्रु के चर (दूत) नहीं हो, इसका प्रमाण क्या?' गिरगिट ने जवाब दिया, "लाल सैनिकों के खाने से अब भी मेरी छाती और पेट जल रहा है। मैंने वमन किया है, कहो तो चलकर दिखा दूँ। मेरी देह अभी तक लाल चींटियों के दंशन से फूली हुई है।"

जल्लाद चींटा ने कुछ सोच कर कहा, "अच्छी बात है, पर सबेरा न हुए, तुमको भली भाँति देखे बग़ैर मैं तुम्हें विवर के पास न आने दूँगा। तुम जहाँ हो वहीं रहो। सबेरा हुआ ही चाहता है। ख़बरदार, आगे न बढ़ना, नहीं तो, तुमको और कष्ट उठाना पड़ेगा।"

गुटगुट गिरगिट को अगस्त वृक्ष के नीचे बैठे रहना पड़ा। राम राम करके अन्धकार का नाश हुआ और सबेरा हुआ।

सबेरे काले राजा और काले मंत्री सलाह करने बैठे। उसी समय द्वारपाल ने आकर संवाद दिया। "महाराज, विवर के द्वार पर बन्धु गिरगिट उपस्थित है वह श्रीमान् से मिलना चाहता है।"

जल्लाद को पहले बुलाया गया। उसने आकर निवेदन किया, "महाराज, मैंने गिरगिट की देह को प्रकाश में भली भाँति देख लिया है। उसकी सारी देह को लाल सैनिकों ने काटा है। वह बन्धु है सही।"

गिरगिट को राज-दरबार में लाने की आज्ञा हुई। काले राजा, मंत्री और अन्य सभासदों के साथ दरबार में बैठे। गिरगिट का गोल मटोल भारी चेहरा देखकर राजा ने मन ही मन सोचा, इससे युद्ध में बड़ी सुविधा होगी। गिरगिट और सबने मिल कर परामर्श किया। तालाब के उस पार दूर मैदान में चींटों का राज्य है। वे जल्लाद के वंश के हैं। उनके राजा को ख़बर दी जाय तो वे ससैन्य आकर लाल चींटियों को सज़ा दे सकते हैं पर दूत बराबर चलते रहने पर भी सात दिन सात रात से कम समय में वहाँ न पहुँच सकेगा। सेना लेकर आने में भी चींटा महाराज को इतना ही समय लग जायगा। इस बीच में लाल गुप्तचर निश्चय ही सब ख़बर पा लेंगे और फिर सब मेहनत व्यर्थ जावेगी। हठात् आक्रमण न कर पाने पर लाल चींटियाँ जीती नहीं जा सकती हैं। फिर कौन जाने, इस बीच में लाल सेना आकर आक्रमण कर बैठे। इस स्थान पर अधिक दिन रहना निरापद भी नहीं है।

गिरगिट ने कहा, "महाराज! आप यह सब कुछ न सोचें मेरे ऊपर भार दीजिए, मैं सब शीघ्र ठीक कर दूँगा।"

गिरगिट ने फिर जल्लाद चींटा से कहा, "तुम मेरी पीठ पर चिपक कर बैठ जाओ। मैं तुमको वहाँ एक घंटे में पहुँचा दूँगा। पर देखो काटना नहीं, भाई! पैरों से मेरी पीठ को ज़ोर से पकड़े रहना।"

जल्लाद चींटा को पीठ पर बैठा करके सों-सों करके गिरगिट दौड़ चला। शुक्ल जी के पैत्रिक वास-स्थान के भीतर झींगुरों का राज्य था। गिरगिट को भागते जाते देखकर बनकरेली के नीचे घाट-रक्षक झींगुर ने आवाज़ दी, "कौन जाता है रे?" जवाब मिला, "तेरा बाप जाता है रे!" "ख़बरदार, आगे न बढ़ना" कहकर घाट-रक्षक ने बिगुल बजाया। बिगुल के बजते ही आस-पास की

झाड़ियों से हज़ारों झींगुरों ने कूद-कूदकर गिरगिट के पथ में बाधा उपस्थित कर दी। गिरगिट क्रोध से फूल उठा, बोला, "झींगुरो तुम पतिङ्गो, मुझसे क्या लड़ोगे?"

जल्लाद—चींटा ने कहा, "क्यों बेकार इनसे झगड़ा करके समय को नष्ट करते हो? झींगुरों से हमारी कोई शत्रुता नहीं है ये जो कुछ कहते हों वह सुन लो। शीघ्र झगड़ा मिट जायगा।"

गिरगिट ने सोचा, जल्लाद का परामर्श ही ठीक है। कहा, "तुम लोग क्या चाहते हो, भाई, मेरा पथ क्यों रोकते हो?"

घाट-रक्षकों के सरदार ने कहा, "तुम हमारे राजा के सामने चलो, उनकी अनुमति मिले बिना हम तुमको न जाने देंगे।"

झींगुर गिरगिट को पैत्रिक वासस्थान की एक दीवार के एक साँक से सुरंग-पथ से पैत्रिक वासस्थान के भीतर अपने राजा के पास ले गये। सुरंग के भीतर द्वार पर टर्ट-टर्ट मेंढ़क बैठा हुआ था। उसने, बहुत दिन हुए नदी के बाढ़ के जल से बह कर शुक्ल जी के तालाब में आश्रय प्राप्त किया था। बाद को झींगुर-राज से बातचीत होने पर शुक्ल जी के पैत्रिक वासस्थान के भीतर ही झींगुरों के राज्य में वह रहने लगा था। पैत्रिक वासस्थान की छत और दीवारों के गिर जाने से अन्दर पहुँचने के लिए इस सुरंग-पथ को छोड़ कर और कोई पथ न था। सुरंग के द्वार पर मेंढक पहरा देता था। जो कोई कीट-पतंग भीतर घुसने की चेष्टा करता था, वह कुप्प से खा लेता था। गिरगिट को देखकर टर्ट ने पूछा, "यह कौन है रे?"

घाट-रक्षक सरदार ने कहा, "अपना परिचय दिये हुए बग़ैर जा रहा था इससे पकड़ कर महाराज के पास लिये जा रहा हूँ।"

मेंढक ने रास्ता छोड़ दिया। राजा के सामने उपस्थित होने पर गिरगिट ने सब कथा सुनाई।

राजा ने कहा, "काले राजा हमारे मित्र हैं, गिरगिट को अभी छोड़ दो। फिर गिरगिट से कहा काले राजा से कहना कि हम उनकी सहायता करने को तैयार हैं। ज़रूरत हो, तो ख़बर दें।

घाट-रक्षक सरदार ने गिरगिट को सुरंग-पथ से बाहर कर और बनकरेली के नीचे अपने घाट पर वापस आकर कहा, "जाओ भइया, भाग्य के ज़ोर से बच गये।" गिरगिट ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा।

झींगुर हो, बनकरेली न खाओ। खाओगे तो मूँछें खाओगे, फिर उल्लू बन जाओगे।

यह कह कर जल्लाद को पीठ पर बैठा कर गिरगिट एक दौड़ में पैत्रिक वासस्थान से दूर निकल गया।

कुछ दूर चले जाने पर गिरगिट ने देखा, सामने एक बड़े मिट्टी के ढेर के चारों ओर सफ़ेद-सफ़ेद व छोटे-छोटे कीड़ों का समूह फिर रहा है। गिरगिट ने पहले कभी इस प्रकार के जीव-जन्तु न देखे थे, बोला! "ये जन्तु कौन हैं? सुन्दर हैं! अहा!!" इतनी दूर दौड़ कर चलने में गिरगिट का भोजन हज़म हो चुका था, उसे कुछ भूख लग आई थी। उसने सोचा कि इन कीड़ों को खाकर देखा जाय कि स्वाद में कैसे हैं। उनके खाने का उपक्रम करते ही जल्लाद ने चिल्लाकर कहा, "इनको न खाना भाई, न खाना। इनको खाकर कदापि सुख न पाओगे।"

गिरगिट ने पूछा, "क्यों, भाई, ये क्या हैं?"

जल्लाद ने कहा, "ये दीमक हैं। ये जिस पृथ्वी को देखते हैं वहीं दीमक की सृष्टि कर देते हैं। ये जिसको छू लेते हैं, वही माटी हो जाता है। तुम्हारे उनके खाने को जाने पर उनमें से एक तुम्हारी देह में आश्रय ले लेगा और तुम जान भी न पाओगे। बाद को तुम्हारी यह कंचन की देह माटी हो जायगी। इसलिए इनके घाट-रक्षक से मुठभेड़ किये बग़ैर ज़रा फेर से चलना ही ठीक होगा।"

गिरगिट ने इसी परामर्श के अनुसार काम किया। भूख के न मिटने पर भी वह दौड़ता चला।

अनेक ताल-तलैयों को पार करके गिरगिटों के राज्य में आ पहुँचा। जल्लाद को देखकर चींटों के दल ने कहा—"आओ भाई, आओ। स्वागत! बड़े दिन में तुम आये, कहो कहाँ से आ रहे हो भाई, मज़े में तो रहे? कह कर सबने उसकी अभ्यर्थना की। परिचय पाने पर गिरगिट का भी सबने ख़ूब आदर-सत्कार किया।

चींटों के राजा के पास ख़बर गई उन्होंने जल्लाद और गिरगिट को अपने सामने तलब किया। सब हाल सुनकर चींटा महाराजा ने कहा—"काले राजा हमारे वंश के ही हैं। यद्यपि वे नीच हैं तो भी उनकी आपत्ति-विपत्ति में उनकी सहायता करना हमारा धर्म है।"

फिर किस प्रकार सैन्य-सामन्तों को लेकर काले राज्य में शीघ्र पहुँचाया जा सकता है, इसकी कल्पना-जल्पना चली।

गिरगिट ने कहा, "महाराज मेरा एक परामर्श है। आपके राज्य में अनेक लम्बे लम्बे काँस भाड़ी हैं। मैं जड़ से कुछ पूरे पत्ते काट दूँगा और लम्बे लम्बे पत्तों को जोड़ कर और उनके जोड़ पर कुछ चींटा दाँत गड़ाकर बैठ जायँगे। फिर आप सारी सेना-सहित उन पत्तों पर सवार हो जायँगे और मैं पत्तों के एक छोर को मुँह में दबा कर एक दौड़ में तनिक देर में आपको सेना-सहित काले राज्य में पहुँचा दूँगा।"

यह सुनकर सब आनन्द से सूँड़ हिलाने लगे। उसी समय काँस के पत्ते काटे गये और सारे चींटे पंक्ति पंक्ति में उन पर चढ़ बैठे। एक पल में ही गिरगिट ने ससैन्य चींटा महाराज को काले राज्य में पहुँचा दिया। उसी समय, 'सजो', 'तैयार हो' का हल्ला पड़ गया और एक पहर में काली चींटियों और चींटों के दल ने जाकर लाल चींटियों पर आक्रमण कर दिया। चींटों ने लाल चींटियों को पकड़ पकड़ कर दो दो खण्ड कर डाले। लाल महाराज और हाँड़ीमुख ने भाग कर अपने प्राण बचाये। पिछली हार का प्रतिशोध लेकर लाल चींटियों के भंडार को लूट कर काले राजा गिरगिट की पीठ पर सवार होकर अपने राज्य को विजय-दुन्दभी बजाते हुए वापस आये। राज्य भर में आनन्द और उत्सव की धूम मच गई। काली रानी और सखी के मुँह पर फिर, हँसी दिखाई पड़ने लगी। काली बहू फिर बन ठन कर घूमने फिरने लगी।

(३)

उधर हाँड़ीमुख ने जंगल के पास इमली के पेड़ के नीचे जाकर डेरा डाला। लाल माटा (ब्यौंता) पेड़ के ऊपर घर बना कर रहते थे। हाँड़ीमुख ने अनेक चेष्टा करके माटा-राज से साक्षात् करने की अनुमति पाई। बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर माटा-राज लाल महाराज की सहायता करने पर सहमत हुए। माटा युद्ध के लिए सजधज कर बाहर निकले। दलबद्ध होकर माटाओं को पेड़ पर से नीचे उतरते देखकर सब जीव-जन्तु रास्ता छोड़कर भाग खड़े हुए।

हड़बड़ काली चींटी ने आकर काले राजा को ख़बर दी, "महाराज, सर्वनाश आ उपस्थित हुआ। माटाओं का दल हम पर आक्रमण करने को आ रहा है। महाराज अब रक्षा नहीं।"

चींटों के राजा ने कहा, "हमारी सब सेना यहाँ नहीं है। हमारे सब सामन्तों के यहाँ होने पर मैं माटाओं पाटाओं को उपयुक्त शिक्षा देता। पेड़ के ऊपर बसने से बदज़ातों को बड़ा अहंकार हो गया है। अब हमारी सलाह यह है कि काले महाराज अपने स्त्री-पुत्र-परिवार सहित झींगुरों के राज्य में जाकर आश्रय लें। माटाओं के आने में अभी कुछ देर मालूम होती है। गिरगिट काँस के पत्तों पर सबको बिठाकर वहाँ पहुँचा आवेगा। हम तब तक माटाओं से युद्ध करते रहेंगे। यदि अवस्था संगीन हो गई तो उसी क्षण गिरगिट वापस आकर हम सबको काँस-पत्तों पर चढ़ा कर हमारे देश में पहुँचा देगा। हम ढोल नगारा बजाते आनन्द से चले जायँगे। तब माटा पाटा जी भर कर मिट्टी खाकर अपने प्राण गँवावेंगे फिर अब और हो ही क्या सकता है?"

काले महाराज शून्य दृष्टि से ताकने लगे। तब मंत्री ने कहा, "महाराज अब और कुछ सोचने विचारने का समय नहीं है और फिर सोचने विचारने से होता क्या है? चींटा महाराज ने जो कहा है वही किया जाय।"

गिरगिट ने उसी क्षण सब काली चींटियों को उनके अण्डे बच्चे-समेत काँस-पत्तों पर चढ़ाकर झींगुरों के राज्य में पहुँचा दिया। झींगुरराज ने काले महाराज को ख़ूब आदर-सत्कार करके आश्रय दिया। काली चींटियों में का एक भी प्राणी बाहर न रहा। सुरंग के द्वार पर टर्र टर्र मेढक को देखकर पहले काली चींटियाँ बहुत भयभीत हुईं पर जब झींगुर महाराज की आज्ञा से मेढक ने बेमधुर कण्ठ से 'आइए', "पधारिए" कह कर अभ्यर्थना की तो उन सबका भय जाता रहा। गिरगिट काँस-पत्ता लेकर फिर वापस आया।

रणक्षेत्र में घमासान लड़ाई हो रही थी। लाल चींटी और माटा एक ओर थे और चींटे अकेले दूसरी ओर। प्रचण्ड संग्राम हो रहा था।

चींटों का दल, अति प्रबल।
हिलाकर सूँड़, घुमाकर मूँड़
विकट आघात से, शत्रु बिनासे
विषम क्रुद्ध, भयंकर युद्ध

चींटों का काण्ड, अति प्रचण्ड ।
गला पकड़ै, मूँड़ मरोड़े
माटों का झुण्ड, हो खण्ड विखण्ड
गिर जावै, हार न खावै ।
माटा के रिष, बढ़ा ज्यों विष
विष की लार, विषम अपार ।
सही न जाय, मृत्यु बुलाय ।
भागे चींटे, मरते कटते ।
देकर पीठ, सभी सभीत

गिरगिट पहले से उपस्थित था कुछ और उपाय न देखकर चींटे भाग कर पत्तों पर आ बैठे, और पत्ते लेकर गिरगिट पवन के समान सड़ सड़ करके दौड़ चला। माटा सैनिक वेग से दौड़ कर आये पर वे अवाक् होकर मुँह ताकते रह गये। फिर लाल सेना और माटा काले राज्य में घुसे, पर वहाँ एक भी प्राणी न था। एक बूँद मधु भी न था। अत्यन्त हताश होकर लाल और माटा-सेनायें वापिस हुईं।

कई दिन बीत गये। माटा-सरदार के साथ लाल महाराज और हाँड़ीमुख का परामर्श हुआ। काली चींटियाँ कहाँ जाकर लुके हैं। इसका कुछ भी पता न चला। चारों ओर लाल गुप्तचर घूमते और वापस आकर कहते "महाराज, कुछ भी सन्धान न मिला।"

एक दिन एक चर ने आकर लाल महाराज से निवेदन किया, "महाराज, आज मैं मिश्र जी के पैत्रिक वास-स्थान के पास फिर रहा था। देखा काली बहू रूप के गर्व में सूँड़ उठाये वायु सेवन करती घूम रही है। मैं तुरन्त वास-स्थान की एक दीवार के एक गर्त्त में जा घुसा। आगे बढ़ने का मुझे साहस न हुआ। जब काली बहू वहाँ है तब निश्चय ही काले राजा ससैन्य गर्त्त के भीतर वास करते हैं।"

उसी समय लाल महाराज ने पाँच गुप्तचरों को विवर के मुँह पर नज़र रखने के लिए तैनात कर दिया। तीन दिन बाद गुप्तचरों ने आकर ख़बर दी कि काला राजा मंत्री आदि के साथ मिश्र जी के पैत्रिक वास-स्थान में झींगुर-राज के आश्रय में रहता है। उसके एक विवर के अतिरिक्त पैत्रिक वास-स्थान के भीतर घुसने का कोई और पंथ नहीं है। उस विवर से ही भीतर घुस कर माटाओं के साथ कालों पर आक्रमण करना स्थिर हुआ। झींगुरों की क्या गिनती? एक मुँह मारते ही उनका घाट-रक्षक घाट छोड़कर भाग खड़ा होगा। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं।

दूसरे दिन सबेरे ही लाल-सेना ने आकर विवर के मुँह पर घेरा डाला। माटाओं को देखकर सब घाट-रक्षक झींगुर भयभीत हो, विवर में भाग गये। झींगुरों के राज-प्रासाद में हलचल मच गई। सबको अभय करते हुए टर्र टर्र मेंढक ने कहा, "तुम लोग निर्भय होकर कान में तेल डाल कर सोओ। मैं अकेला ही माटा फाटाओं को ठीक कर दूँगा।

विवर में अँधेरी सुरंग से एक एक करके माटा सैनिक घुसने लगे। एक माटा (च्यौंता) घुसता था और मेंढक कुप्प करके उसको खा लेता था पीछे का माटा जान भी नहीं पाता था कि आगे क्या होता है। जितने माटा सैनिक घुसे, मेंढक ने बड़े आह्लाद से उनको चुपचाप खा लिया। दो तीन सैनिकों के घुसने के बाद माटा-सरदार के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ कि भीतर से लड़ाई की कोई ख़बर क्यों नहीं आती है? दूत लोग आख़िर क्या कर रहे हैं? लाल महाराज ने कहा, "सरदार जी, वे लोग इस समय प्रसन्नवदन काले चींटियों और झींगुरों का स्वादिष्ठ मांस पंजा भर भर कर खा रहे होंगे, इसी से ख़बर देने की बात वे भूल गये हैं।"

माटा-सरदार निश्चिन्त हुआ। दो चार सौ और सैनिक सुरंग के भीतर घुसे, नये चर भी गये। चर कोई भी वापस न आया। लाल सैनिकों के मन में क्रम से आतंक छाने लगा। अब कोई भी अँधेरी गर्त्त में घुसना न चाहता था। एक माटा-सेना-नायक स्वयं ख़बर लेने को अन्दर गया पर वह भी लौट कर न आया तब तो अन्यान्य सेना-नायकों ने भयभीत होकर सब सैन्य के सहित विवर के मुँह को छोड़ कर दूर आम के वृक्ष पर चढ़ कर आश्रय लिया।

माटा महाराज के पास समाचार गया। उन्होंने अति कुपित होकर कहला भेजा, हमारे सब सरदार सामन्त युद्ध में काम आते तो हमें दुःख न होता पर वे झींगुरों के भय से खड़े हुए हैं, यह अपमान हमें सह्य नहीं है।

सरदार लोग फिर युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए।

लाल महाराज ने सलाह दी, अँधेरी सुरंग में इस प्रकार अब जाना न होगा रोशनी साथ लेकर जाने से देखने को मिलेगा कि मामला क्या है। धीरे धीरे रात हो आई, पेड़ों पर हज़ारों जुगनू चमकते फिरते थे। माटाओं ने कुछ जुगनू पकड़ कर रख लिये। सवेरे दूसरे दिन लाल सेना फिर विवर पर आ डटी। मुँह में सामने जुगनू-चर का एक दल सेना विवर में घुसी। सुरंग के अन्दर कुछ दूर घुस जाने पर दिखाई पड़ा, कि खाने के लिए तैयार ज़मीन में पंजा गड़ाये मेंढक बैठा हुआ मन्द मन्द मुस्करा रहा है। उसको देखते ही लाल सैनिकों के तोते उड़ गये। मुँहों से वे सब जुगनू फेंक फेंक कर वे सब उलटे पाँव भाग गये। उनके बाहर आते ही और भीतर का हाल सुनते ही सारी सेना के देवता कूच कर गये। सैनिकों में भगदड़ पड़ गई। सरदार लोग बड़े प्रयत्न और कष्ट से लाल सेना को विवर से दूर एकत्र कर पाये। लाल महाराज, माटा राज, हाँड़ीमुख, और माटा-सरदार में परामर्श हुआ। अन्त में युद्ध जय किये बिना ही लौट चलना निश्चित हुआ। (शेष फिर)

मोर

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

है मोर मनोहर दिखलाता !
यह किसका हृदय न ललचाता ?
चलता कैसा सिर ऊँचाकर ?
मस्ती से धीरे पग धर धर ॥
सिर पर है ताज छटा लाता
है मोर मनोहर दिखलाता !

गर्दन इसकी प्यारी प्यारी,
सुन्दर सुन्दर न्यारी न्यारी,
इसका रँग है कितना भाता ?
है मोर मनोहर दिखलाता !

जब घिर आती हैं घटा घोर,
तब मोर मचाता बड़ा शोर।
आनन्द बहुत ही सरसाता !
है मोर मनोहर दिखलाता।

जब वन में अपने पर पसार,
यह नाचा करता है अपार।
तब कितना मन को ललचाता ?
है मोर मनोहर दिखलाता !

मीठी मीठी इसकी आवाज़,
इस पर है इसको बड़ा नाज़
जब जी आता तब यह गाता,
है मोर मनोहर दिखलाता !

नीले पीले बैंजनी लाल,
रेशम से सुन्दर सुघर बाल।
इसका रँग अजब रंग लाता,
है मोर मनोहर दिखलाता !

यह भय से उठता नहीं काँप,
डरते हैं इससे स्वयं साँप।
यह वीरों से रखता नाता,
है मोर मनोहर दिखलाता !

इतना सुन्दर इतना मनहर ?
है और नहीं पंछी भू पर !
जो दिल को इतना बहलाता,
है मोर मनोहर दिखलाता !

यह है वन का शोभा सिंगार,
इससे है उपवन की बहार !
यह सुखश्री सौरभ फैलाता,
है मोर मनोहर दिखलाता !

बिहटा-रेल-दुर्घटना

ले०, श्रीयुत नथुनीनारायणसिंह

१७ जुलाई के सुबह में क़रीब ४ बजे बिहटा-स्टेशन से क़रीब दो फ़र्लाङ्ग पश्चिम १८ डाउन पंजाब एक्सप्रेस पटरी से उतर कर गिर गई। यह ख़बर आरा के आस-पास के देहातों में १० बजे दिन तक बिजली की तरह फैल गई। मैं कुछ अपने मित्रों के साथ बिहटा जाने के लिए आरा स्टेशन पर जा धमका। उस समय आरा से बिहटा जाने के लिए १½ बजे दिन की गाड़ी थी। गाड़ी नियत समय पर स्टेशन पर आई, परन्तु रेलवे अधिकारियों द्वारा आज्ञा न मिलने के कारण आगे बढ़ने में असमर्थ रहा।

हम लोगों के टिकट का पूरा पूरा पैसा वापस मिला। हम लोगों ने दुर्घटनास्थल पर जाने के लिए टैक्सियों और इक्के की तलाश की, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। सारे शहर तथा देहातों में एक विचित्र उदासी छाई हुई थी। आरा शहर की सारी जनता बिहटा उमड़ पड़ी थी। शाम होने के कारण हम लोगों को घर लौटना पड़ा वरन् हम लोग पैदल वहाँ चले जाते। १८ जुलाई की ११½ बजे रात से गाड़ियों का आवागमन शुरू हो गया। दूसरे दिन सुबह हम लोग ७½ की गाड़ी से बिहटा जा धमके। गाड़ी में क़रीब क़रीब आधा से ज़्यादा मुसाफ़िर बिहटा जानेवाले थे। गाड़ी दुर्घटनास्थल से पश्चिम ही रुक गई। हम लोग वहीं गाड़ी से उतर पड़े।

गाड़ी जहाँ जाकर लाइन से गिर गई थी उससे थोड़ा पश्चिम से ही गाड़ी के डब्बों के झोंके के कारण लाइन इधर-उधर झुक गई थी। पुल से १ या ½ फ़ीट पश्चिम से ही गाड़ी पटरी से उतर कर पुल पार तक दौड़ती चली गई थी। रेल वहाँ से उखड़ कर अलग जा गिरी थी। चित्रों को देखने से सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि कितनी अपार क्षति हुई है।

कहीं पर मेवा गिरा था, कहीं पर खटाई गिरी थी तो कहीं अन्य खाद्य पदार्थ इत्यादि नाना प्रकार की चीज़ें गिरी पड़ी थीं। कपड़े खून से रँगे गिरे पड़े थे। सारी पृथ्वी रक्तमय हो गई थी। कहीं पर किसी का बिछावन गिरा पड़ा था तो कहीं टूटा ट्रंक पड़ा था। गाड़ी के डब्बे चूर चूर हो गये थे। चित्र नं० १ को देखने से पता चलता है कि सामने इंजिन पृथ्वी में धराशायी होकर किस तरह धँस गया है। आगे का पहला डब्बा इन्टर क्लास का था उसके बाद थर्ड क्लास के थे। पाँच डब्बे चूर चूर हो गये हैं। दूसरे और पहले दरजे के डब्बे सिर्फ़ लाइन से गिरकर खड़े रह गये थे। डाइनिङ्गकार-समेत गाड़ी ११ डब्बे की थी। जिसमें आगे के ५ डब्बे नष्ट-

दुर्घटना में मरे हुए लोगों की लाशें

भ्रष्ट हो गये बादवाले छः बच गये। लाइन से उत्तर और पुल के नीचे दो डब्बे एक दूसरे पर जा गिरे थे। उसमें से ऊपरवाला ऊँचा उठकर इन्टर क्लास के २ या ३ कम्पार्टमेंट पर और पुल के नीचेवाले डब्बे पर चूर होकर खड़ा था!

चित्र देखकर सहज ही में मृतकों और घायलों का अनुमान किया जा सकता है। जो लोग कि पहले दिन वहाँ गये थे उनका कहना है कि अंगभंग शवों को देखने और घायलों की दर्दभरी आवाज़ों से कलेजा काँप
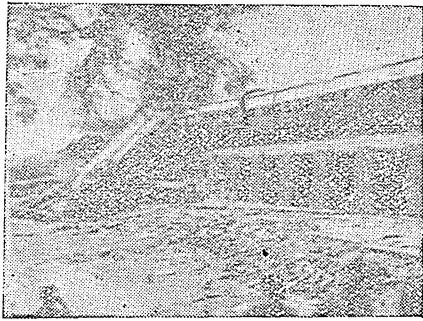
टूटी रेलगाड़ी का एक दृश्य

उठता था। वे कहते थे कि हम लोगों में इतनी शक्ति नहीं कि उसका ठीक ठीक वर्णन कर सकें। किसी का सिर नहीं, तो किसी का पैर नहीं, तो किसी का धड़ नहीं। किसी के स्त्री और बच्चे मर गये, तो किसी स्त्री के पति और पुत्र मर गये, तो किसी बच्चे के माँ-बाप मौत के घाट उतर गये।

पाठक चित्र देखकर स्वयं समझ सकते हैं कि उनमें के मनुष्यों की क्या हालत हुई होगी। डब्बे के मोटे से मोटे लोहे झुक तथा टूट गये थे। छोटे छोटे लोहों की तो बात ही नहीं।

गाड़ी गिरने की ख़बर पाते ही बिहटा-मिलवाले, रेलवे अधिकारीगण तथा कांग्रेस स्वयंसेवक तत्काल घटनास्थल पर पहुँच गये। कांग्रेस स्वयंसेवकों तथा मिलवालों का कार्य्य बड़ा ही प्रशंसनीय है। घायलों को तत्काल दानापुर तथा पटना अस्पताल में रेल तथा लारियों-द्वारा पहुँचाया गया। मृतकों को पटना जङ्क्शन स्टेशन पर ले जाकर हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाइयों को अपने अपने धर्मानुसार अन्त्येष्टि-क्रिया करने के लिए, उनकी लाशों को बाँट दिया गया।

मृतक मनुष्यों का चित्र भी ले लिया गया है। जिनके घर-द्वार के बारे में पता चला उनके यहाँ कांग्रेस की तरफ़ से तार-द्वारा सूचना दी गई।

सरकारी रिपोर्ट-द्वारा पता चला है कि मृतक व्यक्तियों की संख्या १०१ और घायलों की संख्या १७१ है। यूँ तो कुछ न कुछ चोट

सभी को लगी होगी। इनमें अधिकांश पंजाबी तथा संयुक्त-प्रान्त के थे।

मृतकों तथा घायलों का सामान वग़ैरह सरकार में जमा है। सामान का पूरा पूरा पता देने पर उसे या उसके घरवालों को दिया जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई थी।

हमारी शरारतें

लेखक, श्रीयुत जगदीशचन्द्र गुप्त

मार्च के बाल-सखा में एक लेखक ने लिखा है कि बचपन में उन्होंने रीछ की सवारी की थी। लेकिन यह कोई बड़ी शरारत नहीं। हमारी शरारतें तो उनसे कहीं बढ़ चढ़ कर हैं।

जब मैं और मेरा छोटा भाई क्रमशः ६ और ४½ वर्ष के थे तो एक दिन हम दोनों ने सलाह की कि कुत्तों पर चढ़ें। इस कार्य की पूर्त्ति के लिए हमने एक तरकीब सोची। हम दोनों रूठ गये और रोने लगे। हमारा रोना सुनकर हमारे घरवाले दौड़े और लगे पूछने कि क्या बात है। पहले तो बहुत देर तक हम कुछ बोले ही नहीं और बाद में थोड़ी देर पश्चात् बताया कि हमारी इच्छा कुत्तों पर चढ़ने की थी। घरवालों ने मना भी किया और समझाया भी पर हम अपने काम को पूरा न होते देख रोने लगे। घरवाले बड़े असमंजस में पड़ गये और अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि कुत्ते लाकर हमको दो एक मिनट बैठा कर बहका दिया जाय। वैसा ही किया गया। जब हम कुत्तों पर बैठे थे तो मैंने भाई से इशारे द्वारा कहा कि आओ दौड़ लगायें और उसी समय मैंने कुत्ते को भगा भी दिया। घरवाले बेचारे मुझे पकड़ भी न सके। कुत्ते का भागना था कि मैं एकदम गिर पड़ा और सिर से खून बहने लगा। पर अच्छा हुआ था कि छुट्टा अभी न दौड़ा था और वह फिर कुत्ते पर से उतार लिया गया। मुझे अस्पताल ले जाया गया और पट्टी बँधवा कर वापस लाया गया। जब वापस आये तो छुट्टे ने मुझे चिढ़ाया। जिससे मुझे क्रोध हो आया और अगले दिन जब वह मेरे पास अकेला था मैंने उसका हाथ पकड़ कर कलाई के पास ज़ोर से काट खाया और कहा, 'लो चिढ़ाने का मज़ा' अब फिर कहोगे 'आओ दौड़ें'। ख़ैर, हम दोनों जब ठीक हो गये तो हमारी शरारतों से तंग आ हमें स्कूल भेजा गया। वहाँ हमने लड़ लड़कर कई लड़कों को पीट डाला। कइयों की पुस्तकें भी फाड़ डालीं। जिनके कारण हमें स्कूल तथा घर पर बड़े करारे थप्पड़ पड़े।

जब हम तीसरी कक्षा में हुए तो एक ट्यूटर साहब हमें घर पर पढ़ाने के लिए रखे गये। पहले दिन तो हम दोनों समय पर खेलने दौड़ गये पर अगले दिन ही एक नौकर हमको उस समय खेलने से रोकने के लिए लगाया गया। हमने एक और तरकीब निकाली। ट्यूटर साहब के आने तक तो कमरे में रहे और जब वह आये तो हमने उनसे प्रणाम किया और इतने समय में जितने में कि मास्टर साहब कमरे के द्वार पर आये और नौकर बाबू जी के पास गया हम खिड़की से कूद कर भाग गये। इसका भी प्रबन्ध किया गया और अगले दो दिन तक हमने एक और शरारत की कि मेज़ों के नीचे बैठ बैठ कर ऊपर से बड़े बड़े मेज़पोश डालकर छुप गये। वहाँ भी पाये गये और अन्त में हमें पढ़ना पड़ा।

मुझे इस बात से बड़ा गुस्सा चढ़ आया और एक दिन मैं पेशाब के बहाने जाकर दियासलाई ले आया व छुप कर उनकी टोपी फूँक दी। इस पर उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने ट्यूशन ही छोड़ दिया। पिता जी भी ग़ुस्से हुए पर मारा पीटा नहीं यही ख़ैर थी।

पश्चात् एक और ट्यूटर रखे गये। वे बड़े चालाक थे। उन्होंने हमारे लिए एक उपाय सोचा और बाबू जी को हमारा इलाज बताया। तरकीब हमारे बाबू जी को भी अच्छी लगी और हमें दवाई दी जाने लगी। दवाई थी कि जिस दिन हम पढ़ते थे उस दिन हमें एक एक केला और एक एक लड्डू मिलता था। अन्यथा नहीं। इस लोभ से हम पढ़ने लगे और हम इतने लोभी हो गये कि हमने मास्टर साहब से कह दिया कि या तो रविवार को भी पढ़ाओ वर्ना हमारा इनाम दिलवाया करो। वे राज़ी हो गये और हम खूब दिल लगा कर पढ़ने लगे।

छः मास पश्चात् हमें केले और लड्डू मिलने बन्द हो गये पर तब तक हमारा मन पढ़ने में लग चुका था और हम कहानियों के शौक़ीन हो चले थे। बाल-सखा भी मँगवाने लग गये थे।

मेढक

वर्षा में बोल रहे मेढक
कैसा स्वर खोल रहे मेढक
बूँदों में डोल रहे मेढक
कैसा रस घोल रहे मेढक ?
जब हरी घास पाते मेढक
तब उछल उछल जाते मेढक

टरटों टरटों गाते मेढक
मतवाले दिखलाते मेढक
तालाब किनारे जुड़ मेढक
सब अजब तरह से मुड़ मेढक
जब तान कभी लेते मेढक
तब समाँ बाँध देते मेढक

—सोहनलाल द्विवेदी

डाक्टर कुसुमकुमारी

लेखक, श्रीयुत डाक्टर रविप्रताप श्रीनेत

"मामा, मुझे थर्मामीटर चाहिए।" कुसुम बोली।

मैं हैरान था, बोला—"क्या होगा थर्मामीटर ?"

"कुछ भी हो, आपको क्या करना है ? मुझे ला दीजिए।" कुसुम ज़रा गुस्से में बोली।

मैंने नरमी से कहा—"अच्छा, शाम को ला दूँगा। नाराज़ मत हो।" कुसुम खुश होगी—ऐसा मैं समझता था, लेकिन वह वैसे ही रही। ज़रा देर के बाद थोड़ा मुस्कराई और मेरी गोद के पास आकर बोली—"मामा, आप नाराज़ मत हों, मैं बतलाती हूँ कि मुझे थर्मामीटर क्यों चाहिए ?"

मेरा कौतूहल जाग उठा। मैंने कुसुम के सर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बतलाओ, रानी बिटिया।"

कुसुम—"देखिए, हँसिएगा नहीं और किसी से कहिएगा भी नहीं।"

मैं—"अच्छा, नहीं हँसूँगा और कहूँगा भी नहीं। अब तो ठीक है।"

कुसुम—हाँ, ठीक है ! मामा, मैं जल्दी पढ़ रही हूँ; क्योंकि डाक्टर बनना चाहती हूँ। सब लोग मुझे डाक्टर साहब कहेंगे। मैं बुख़ार देखूँगी। क्विनिन मिक्सचर दूँगी। फ़ीस लूँगी और अपने अस्पताल आ जाऊँगी।"

मैं—"अभी तो तुम हिन्दी की दूसरी क्लास में हो। पढ़ते-पढ़ते दस बारह साल लग जायँगे, तब तो डाक्टर होगी।"

कुसुम—"मैं जल्दी-जल्दी पास कर लूँगी।"

मैं—"कुसुम, यह तो बतलाओ कि अभी से थर्मामीटर क्यों माँग रही हो ?"

कुसुम—"इसलिए कि थर्मामीटर से बुख़ार नापना आ जाय।"

मैं—"समझा। तुम्हारी ख़ातिर थर्मामीटर आज ज़रूर ला देंगे।"

कुसुम—"ओहो, तब तो मैं मन्नू की लड़की का बुख़ार ज़रूर नाप लूँगी।"

मैं—"बुख़ार नापने के बाद उस लड़की को क्या दवा दोगी ?"

कुसुम—"आपको नहीं मालूम। वही क्विनिन मिक्सचर की एक ख़ुराक जो मुझे बुख़ार में दी जाती थी।"

मैं—"दिन में कितनी ख़ुराक दोगी ?"

कुसुम—"चार ख़ुराक दी जायगी। पसीना निकल जायगा और बुख़ार भाग जायगा।"

मैं—"कुछ खाने को दोगी या बेचारी को भूखों मारोगी ?"

कुसुम—"भूख लगेगी तो साबूदाना खायगी और नहीं लगेगी तो कुछ भी नहीं।"

कुसुम और बिट्टी

मैं—"ठीक है। अच्छा यह तो बतलाओ कि मन्नू से फ़ीस क्या लोगी ? वह तो ग़रीब है और तुम्हारा नौकर भी है।"

कुसुम—"ग़रीबों से फ़ीस नहीं लेते, मामा। उनके पास तो रुपये ही नहीं होते। मन्नू तो हमारा नौकर है। हमें खिलाता है, झूला झुलाता है और बाग़ से फूल तोड़कर लाता है उससे फ़ीस नहीं लेंगे।"
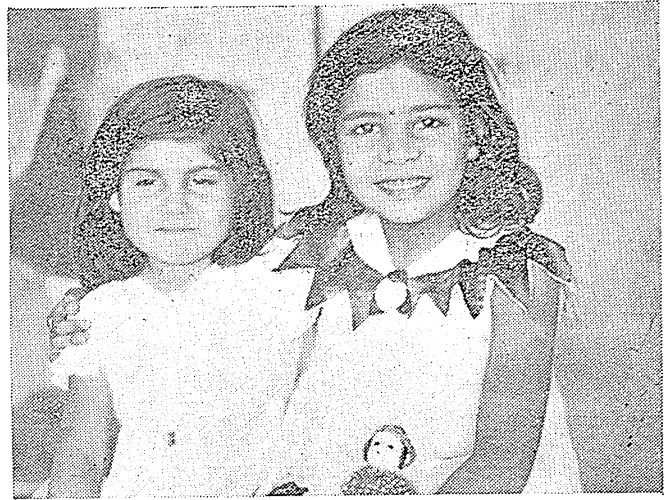
इतने में बिट्टी भी वहाँ आगई। बिट्टी कुसुम की छोटी बहन है। दोनों बहनें फिर बैठकर "बाल-सखा" के चित्र देखने लगीं। कुसुम का पूरा नाम—कुसुमकुमारी है। वह नरसिंहगढ़ के दीवान ठाकुर जगदीशसिंह की पुत्री है। अभी सिर्फ़ ६ साल की है; लेकिन बड़ी होशियार है।

(सच्ची घटना)

साँझ

लेखक, श्रीयुत अंशुमाली

सूरज डूबा गया उजेला।
आई शाम, खिल उठे बेला॥
जहाँ तहाँ बिछ चला अँधेरा।
चिड़ियाँ लेने चलीं बसेरा॥
झिलमिल झिलमिल निकले तारे।
लगने लगे बहुत ही प्यारे॥

चमका चाँदी का-सा चन्दा।
जारी हुआ रात का धन्दा॥
आँगन-आँगन, छत-छत, घर-घर।
बिछी चाँदनी छिटक-छिटक कर॥
धूप-छाँह का खेल निराला।
खेलो हिल मिल मेरे लाला॥

अच्छा

लेखक, श्रीयुत कृष्णमनोहरसिंह सांडल

बहुत दिनों की बात है एक ग़रीब ब्राह्मण और ब्राह्मणी रहते थे। ब्राह्मण कुछ कमाता न था। वह रोज़ सुबह घर से निकल जाता और शाम को ख़ाली हाथ लौटता। बेचारी ब्राह्मणी मेहनत मज़दूरी करके, बड़ी कठिनता से गृहस्थी का काम चलाती। कभी कभी जब वह बहुत परेशान हो जाती तो ब्राह्मण देवता से कहती, "घर का ख़र्च नहीं चलता, कुछ कमा कर लाओ।" ब्राह्मण कह देता, "अच्छा, कोशिश करूँगा।" लेकिन ब्राह्मणी ने उसको कभी कुछ कोशिश करते न देखा। ब्राह्मण के रंग-ढंग वही रहते। सुबह को जाना और शाम को ख़ाली हाथ लौट आना। दो रोटी मिले तो चुपचाप खा लेना और एक मिले तो।

ब्राह्मणी ने सोचा जब तक इनको मुफ़्त में, बिना मेहनत के, खाने को मिलेगा, ये कुछ न करेंगे। अतः एक बार जब वह शाम को घर लौटा तो ब्राह्मणी ने उसको कुछ खाने को न दिया।

ब्राह्मण देवता ने ज़मीन पर पोतना लगाया, आसन बिछाया, और थाली लेकर इन्तज़ार करने लगे कि स्त्री कुछ खाने को दे। किन्तु वह ख़ाली हाथ आकर खड़ी हो गई और बोली, 'आज घर में खाने को कुछ नहीं है।'

ब्राह्मण ने कहा, "अच्छा" और चुपचाप अपनी टूटी खाट पर जाकर लेट रहा। ब्राह्मणी ने कहा, "तुम दिन भर क्या किया करते हो? भिक्षा ही माँगा करो। कुछ तो मिल जायगा।"

ब्राह्मण अच्छा कह कर चुप हो रहा।

ब्राह्मणी ने फिर प्रश्न किया, "तुम दिन भर क्या किया करते हो?"

ब्राह्मण ने मजबूर होकर कहा, "मैं नित्य-प्रति काली जी के मन्दिर में बैठ कर जप किया करता हूँ। जिस दिन वे प्रसन्न हो गईं बस हम मालामाल हो जावेंगे। कोई कष्ट न रहेगा।"

ब्राह्मणी—तुमने मुझको पहले क्यों नहीं बताया। भला कहीं काली देवी कोरे जप से प्रसन्न होती हैं। उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए एक बकरे का बलिदान करो। यह सुन-कर ब्राह्मण के देवता कूँच कर गये। उसने दोनों कानों पर हाथ धरकर कहा, "अच्छा! यह तो मुझको नहीं मालूम था। मुझसे जीव-हत्या न हो सकेगी, मैं तो उनकी अब सेवा-पूजा भी छोड़ दूँगा।"

ब्राह्मणी ने कहा, "ऐसा मत करना। नहीं तो कहीं देवी कुपित हो गईं तो हम कहीं के न रहेंगे। बकरे की भेंट तो तुमको अवश्य चढ़ानी पड़ेगी।"

ब्राह्मण ने कहा, "अच्छा"।

ब्राह्मणी—"ख़ाली अच्छा करने से काम न चलेगा। कल ही सब प्रबन्ध करना पड़ेगा।"

दूसरे दिन ब्राह्मणी ने ज़बरदस्ती उसको बकरे के लिए भेजा। वह थोड़ी देर में लौट आया और कहा, "गाँव में तो देवी के लायक़ कोई बकरा है नहीं।"

ब्राह्मणी—"अपने गाँव में नहीं है तो दूसरे गाँव से ले आओ।"

ब्राह्मण ने कहा, अच्छा। और बकरे की तलाश में दूसरे गाँव को गया। वहाँ उसको एक मन-पसन्द बकरा मिल गया। ब्राह्मण उसको लेकर अपने घर को लौटा।

रास्ते में एक छोटा-सा जंगल पड़ता था। उसमें तीन ठग रहते थे। उन्होंने देखा कि एक आदमी अकेला एक बकरा लिये जङ्गल में से जा रहा है। तीनों ने कहा इसका बकरा अवश्य उड़ाना चाहिए। उन्होंने आपस में सलाह की और थोड़ी-थोड़ी दूर पर पेड़ों के नीचे जा बैठे।

पहले ठग के क़रीब जब ब्राह्मण पहुँचा तो ठग ने हाथ जोड़ कर कहा, "पालागन, महाराज।"

ब्राह्मण ने सिर हिला कर अभिवादन स्वीकार किया।

ठग ने कहा, "महाराज, इस कुत्ते को कहाँ लिये जा रहे हो?"

ब्राह्मण ने उसकी बात पर कुछ ध्यान न दिया और आगे बढ़ गया। थोड़ी दूर पर दूसरा ठग मिला। उसने कहा, "जयराम जी की, इस कुत्ते को पालोगे क्या।"

अब ब्राह्मण चकराया। उसने बकरे को ओर ग़ौर से देखा कि कहीं बेचनेवाले ने धोखा तो नहीं दिया और अपने रास्ते पर चलता गया। तीसरे ठग ने ब्राह्मण और बकरे को देखते ही ज़ोर से चिल्लाकर कहा, "अरे भाई इस कुत्ते को क्यों घसीटे लिये जा रहे हो?"

यह सुनकर ब्राह्मण ने सोचा, "निस्सन्देह यह कुत्ता ही है। नहीं तो ये लोग वृथा झूठ क्यों बोलने लगे।" उसने बकरे के गले से रस्सी खोलकर उसको जङ्गल में हाँक दिया।

ठगों ने जाकर बकरे को पकड़ लिया और अपनी चतुराई पर बड़े प्रसन्न हुए।

जब ब्राह्मणी ने देखा कि ब्राह्मण बकरा नहीं लाया तो उसने जवाब तलब किया।

ब्राह्मण ने सब हाल बता दिया और कहा, "अवश्य बेचनेवाले ने मुझको धोखा देकर बकरे के बदले में कुत्ता पकड़ा दिया। रास्ते में मुझको ईश्वर की कृपा से भले आदमी मिले जिन्होंने मुझको मेरी ग़लती बता दी नहीं तो गाँव भर में मेरी हँसी होती।"

ब्राह्मणी ने अपना माथा पीट लिया और कहा, "तुम्हारे किये कुछ न होगा। तुम निरे पोंगा हो।"

ब्राह्मण अच्छा कह कर चुप हो रहा।

मेरा प्यारा कुत्ता

लेखक, श्रीयुत मदनमोहन "सुधाकर",
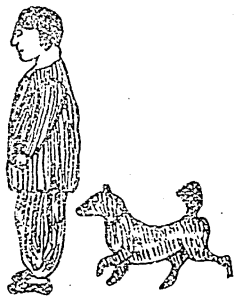
(१)

भूरा रंग का मेरा कुत्ता,
काला रंग का उसका पट्टा।
रेशमी बालों से लदा हुआ है,
मेरे पीछे खड़ा हुआ है।

(२)

खेल में मेरा घोड़ा बनता,
अकड़ के उस पर मैं चढ़ता।
दादी को मैं सदा डराता,
"लुहा लुहा" कर पैसा लेता।
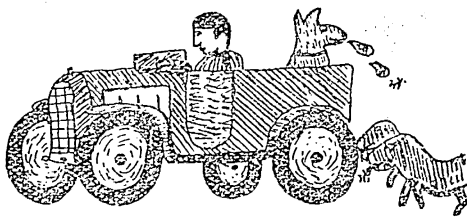
(३)

सैर करने को जब जाता,
सदा साथ उसे ले जाता।
आगे बैठ मैं मोटर चलाता,
वह पीछे जा उछल बैठता।
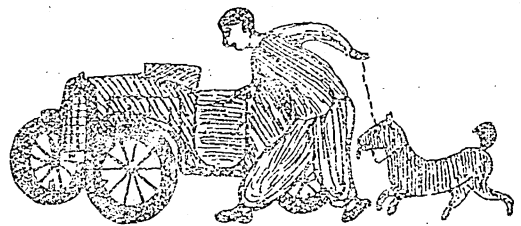
(४)

सड़क के कुत्ते उसे तंग करते,
"भौं भौं" करके पीछा करते।
मेरा बड़ा बहादुर कुत्ता,
"भौं भौं" करके उन्हें भगाता।

(५)

रास्ते में मोटर बिगड़ गई जब,
मुझे बहुत परेशानी हुई तब।
उसे बनाने को बहुतेरा सोचा,
पर मेरे कुछ समझ न आया।
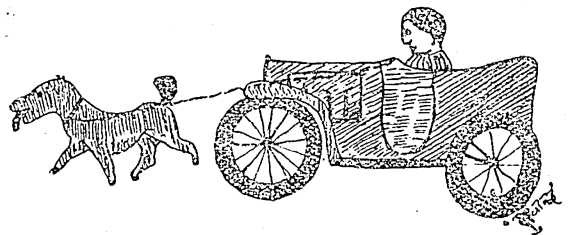
(६)

समझ में एक तरकीब आई मेरे,
रस्सी की लगाम बना कर।
मोटर में फिर उसको जोतकर,
लौटा उस पर राजा बनकर।

चाँद और भौंरे

लेखक, श्रीयुत केदारनाथ द्विवेदी

प्राचीन काल में एक ऐसा समय आया था, जब भौंरों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। उनके दल के दल तालों और सरोवरों पर जाया करते थे और कमल का स्वादिष्ट रस पीकर, मस्त हो गुंजन किया करते थे।

धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती ही गई। संख्या बढ़ने के कारण, सबको कमल-रस मिलना कठिन होगया। वे थोड़ा-थोड़ा कमल-रस पान कर किसी तरह निर्वाह करने लगे। दुर्भाग्यवश एक साल भीषण गरमी पड़ी। ताल, तलैया आदि जलाशय सूख गये। पानी के अभाव से कमल के फूल मुरझा मुरझा गिर गये। भौंरों के लिए कमल मिलना असम्भव हो गया। कमल-रस न मिलने से भौंरे भूखों मरने लगे। अंत में सब भौंरे अपने दुःख को सुनाने के लिए राजा के पास पहुँचे और कहा, "हे राजन्! हम लोगों को कमल-रस मिलना अब दुर्लभ हो गया है। चारों ओर ढूँढ़कर हार गये, किन्तु कहीं भी कमल देख नहीं पड़ते। सर्वदा कमल का स्वादिष्ट रस पीते रहने के कारण हमें दूसरे फूलों का रस नहीं भाता। आप हम लोगों को कोई उपाय बताइए, जिससे हम लोगों को कमल-रस प्राप्त हो सके, नहीं तो हम लोगों का जीना असम्भव है। हम लोग भूखों मर रहे हैं"।

भौंरों का राजा अपनी प्रजा का दुख सुन कर बड़ा दुःखी हुआ। कुछ दिनों से वह भी कमल-रस प्राप्त न कर सका था और स्वयं बड़ा दुखी था, जब अपनी प्रजा को दुखी देखा तब उसका दुख और बढ़ गया और करुण स्वर में कहा "भाइयो! तुम लोगों को दुखी देख, मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है। कुछ दिन पहले हम लोग थोड़ा-थोड़ा रस पीकर किसी तरह दिन काट रहे थे, किन्तु आज वह भी मिलना दुर्लभ हो गया। क्या किया जाय, क्या भूखों मरना पड़ेगा?"

चारों ओर शान्ति छा गई। सब भौंरे अपने भविष्य का विचार करने लगे। एकाएक एक भौंरा आगे बढ़ कर बोला, "मित्रो! इस तरह हिम्मत हारने से काम न चलेगा, हमें कुछ उद्योग करना चाहिए। चलो! हम विष्णु भगवान् के पास चलें और अपना दुख सुनावें। वह निश्चय ही हम लोगों पर दया करेंगे और कमल-रस पान करावेंगे"।

यह बात सब भौंरों को पसन्द आई। सब विष्णु भगवान् के पास चलने को तैयार हो गये। राजा भी सबकी सम्मति के अनुसार विष्णु भगवान् के पास चलने को तैयार हो गया।

सब चलने ही वाले थे कि सहसा एक बुड्ढा भौंरा सामने आकर सबको सम्बोधित कर बोला, "भाइयो! विष्णु भगवान् हम जैसे तुच्छ जीवों से मिलना पसन्द न करेंगे। हमें वहाँ से निराश होकर लौटना पड़ेगा, जिससे हमारी

मिहनत निरर्थक जायगी। मुझे एक ऐसे कमल का पता लग गया, जिसका रस अति स्वादिष्ट है और हम सब उसे हमेशा पीते रहेंगे"।

बुड्ढे भौंरे की बात सुनकर सब भौंरे आनंद में मग्न हो गये। सबके सब हर्षित हो पूछने लगे, "कहाँ है बाबा! वह कमल कहाँ है?"

पूर्णिमा की रात थी। चन्द्रमा आकाश में अत्यन्त शोभित हो रहा था। बुड्ढा भौंरा आकाश की ओर दिखाकर बोला "देखो! वह नील स्वच्छ सरोवर है, उसके मध्य में एक कैसा सुन्दर कमल खिला है। अगर हम सब उस कमल के पास पहुँच जायँ तो हमारे कष्ट का अंत हो जायगा और जन्म-जन्मांतर मीठे स्वादिष्ट कमल-रस का पान करते रहेंगे। हमारे बाल-बच्चे भी उससे वंचित न होंगे, वे भी उस रस का स्वाद लेते रहेंगे। उस कमल के रस का अंत नहीं हो सकता। आओ! चलो! हम सब उस कमल के पास चलें और स्वादिष्ट रस का पान करें"।

इतना कह बुड्ढा भौंरा चन्द्रमा की ओर उड़ा, दूसरे भौंरे उसके पीछे पीछे उड़ने लगे। कुछ दिनों बाद वे उस कमल के पास पहुँच गये और आज तक उस कमल का रस पीकर उसके आस पास मँडरा रहे हैं।

भाइयो! जो चन्द्रमा में काले काले दाग़ दिखाई पड़ते हैं वे दाग़ नहीं, भौंरे हैं। चन्द्रमा-रूपी कमल का रस पी-पीकर उसके समीप मँडराते रहते हैं।

प्यासा कौआ

लेखक, श्री राजेन्द्रपाल गर्ग, एम० ए०

इक कौवे को लगी जो प्यास,
पानी करने चला तलाश।
घड़ा एक जो आख़िर पाया,
कौआ उतर उसी पर आया॥
चोंच जो उसने अन्दर डाली,
देखा घड़ा बहुत है ख़ाली।
हिम्मत उसने मगर न हारी,
ले आया एक कंकर भारी॥
डाल उसे पानी के अन्दर,
लगा देखने फिर से झुक कर।
पानी मगर अभी था दूर,
पीना लेकिन समझ ज़रूर॥
कंकर चुनकर बहुत-से लाया,
एक के पीछे एक गिराया।
यों पानी को ऊपर लाकर,
कौआ अपनी प्यास बुझाकर॥
उड़ा हवा में फिर से गाता,
काहिल बच्चों को बतलाता।
है कोई मुशकिल जो नहीं भागे,
मेहनत और हिम्मत के आगे॥

चरवाहे की खोपड़ी

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, करसियाङ्ग

खदीपुर गाँव में एक ग़रीब ब्राह्मण देवता रहते थे। घर में बूढ़ी माँ को छोड़ और कोई नहीं था। ब्राह्मण ने सोचा कि किसी तरह से मेरी शादी हो जाय तो स्त्री आकर माँ की थोड़ी टहल-सेवा करती रहे। झोपड़ी में 'तले दुपट्टा और ऊपर बस' ही था। फिर भी उसने हिम्मत कसी और धन की खोज में चल पड़ा। कई जगह धक्के और गालियाँ ही नसीब हुईं बिचारे को, अन्त में एक दानी साहूकार को ब्राह्मण के गिड़गिड़ाने पर तरस आ गई और उसने १००) रुपये एक मुश्त दे, उसे बिदा किया। ब्राह्मण अपने दानी की ख़ैर मनाता, माँ के पास लौटा और कुछ दिनों में पास ही के एक दूसरे गाँव में उसकी शादी भी हो गई। बहू घर आई, और अब ३ प्राणी हो गये। जो रुपये बचे खुचे थे वे भी पेटराम को भेंट चढ़ गये। अब फ़ाके-कशी के दिन आ गये। माँ की आज्ञा लेकर, बेचारा ब्राह्मण कुछ द्रव्यो-पार्जन के लिए दूर किसी शहर में चला गया। ठीक उसी साँझ को एक भूत, इस ब्राह्मण का रूप धरके उसके घर आ पहुँचा। माँ-स्त्री ने पूछा कि तुम तो कमाई करने गये थे, फिर ४ ही घंटों में क्यों लौट आये। ब्राह्मण जो भूत था, बोला कि एक जजमान ने थोड़े से रुपये दे दिये, इसी से लौट आया और तुम्हें छोड़ कर जाने को जी भी नहीं चाहता था। अब कुछ दिनों बाद ही जाऊँगा। यह सुनकर किसी को भी सन्देह नहीं हुआ। माँ ने सोचा कि यह मेरा बेटा है और स्त्री ने सोचा कि मेरा पति है। बस, तीनों सुख से रहने लगे। और इस तरह एक वर्ष बीत गया।

इधर असली ब्राह्मण किसी सेठ के यहाँ रसोइए का काम करता रहा और अपनी साल भर की कमाई और कुछ कपड़े-लत्ते लेकर घर लौटा, पर उसके घर में तो भूत-ब्राह्मण-महाराज क़ब्ज़ा किये बैठे थे। बिचारा ग़रीब ब्राह्मण, यह तमाशा देखकर अजीब हैरान था कि बात क्या है। उसने लाख कहा कि यह मेरा घर है, वह मेरी माँ है और उधरवाली मेरी स्त्री है। मगर भूत-ब्राह्मण ने उसे पागल और बिगड़ी खोपड़ी-वाला बता कर, मार भगाया। बूढ़ी माता और बहू भी बड़े आश्चर्य में थीं पर उन दोनों ने तो भूत-ब्राह्मण ही को पुत्र-पति समझ रखा था। बिचारा ग़रीब ब्राह्मण दुःख से पागल हुआ जा रहा था और अपने गाँव के ठाकुर साहब के पास जाकर, उनके पैरों पर गिर पड़ा और रोते रोते सारी रामकहानी उनसे कह सुनाई। इधर ठाकुर साहब की भी अक़्ल जवाब दे गई, वे समझ ही न सके कि माजरा क्या है। 'अगले हफ़्ते आओ, अगले हफ़्ते आओ' यही कह कर ठाकुर साहब भी अपना पिण्ड छुड़ाते रहे।

दुःख का मारा ब्राह्मण भटकता फिर रहा था। एक दिन उसने देखा कि उसके गाँव के कुछ चरवाहे लड़के, एक खेत में दोप-

हर के वक्त., राजा, वज़ीर, कोतवाल बन कर कुछ नाटक-सा खेल रहे हैं। राजा ने वज़ीर से पूछा, कि यह ब्राह्मण हमेशा पागल बना रोता हुआ क्यों फिरा करता है। वज़ीर ने जो कहानी ब्राह्मण के बारे सुन रखी थी, उसे कह सुनाया। राजा ने कहा कि हमारे गाँव के ठाकुर साहब अगर इस मामले में मुझे इन्साफ़ करने दें तो मैं पूरा न्याय कर सकता हूँ। वज़ीर ने यह बात ब्राह्मण से कही, और ब्राह्मण ने ठाकुर साहब से बिनती की। इधर ठाकुर साहब .ख़ुद अपनी परेशानी मिटाने की जल्दी में थे। झट एक तारीख़ नियत की गई। चरवाहे का लड़का जो राजा बना करता था, ठाकुर साहब की आज्ञा पाकर, उनके पास ही उच्चासन पर विराजमान हुआ। असली ब्राह्मण, भूत-ब्राह्मण, माँ, स्त्री और अनेक अफ़सरों से कचहरी ठसाठस भरी हुई थी

सबसे पहले ग़रीब ब्राह्मण ने अपनी करुण-कहानी फूट फूट कर कह सुनाई। बयान लिख लेने के बाद, सासु-बहू को पूछा गया, उन दोनों जैसे—काठ मार गया हो, बिचारी कुछ भी न बोल सकीं। अब भूत-ब्राह्मण की बारी आई। उसने ख़ूब निडर होकर साफ़ साफ़ सब बातें कहीं, और बोला कि इस बदमाश भिखमंगे की शरारत तो ज़रा देखिए ! यह पागल-वागल कुछ नहीं है, थूक के आँसू निकाल रहा है। अल्ला मियाँ ने जल्दीबाज़ी में इसकी शक्लो,-सूरत, कुछ कुछ मुझ-जैसी बना दी है और अब यह पाजी मेरे घर का मालिक बनना चाहता है। हुज़ूर .ख़ुद सोच कर फ़ैसला करें।

जज साहब ने सभों का बयान बड़ी शान्तिपूर्वक सुना और लिख लिया। क़रीब आध घंटे तक ख़ूब सोच लेने के बाद गंभीर-मुँह बनाकर, उन्होंने यह हुक्म सुनाया, "दोनों तरफ़ के बयान और उज्र मैंने सुन लिये हैं" यह कहकर उन्होंने अपनी जेब से बिना डाट की एक बोतल निकाली, उसे टेबुल पर रखते हुए बोले, "भाई, तुम दोनों में जो आदमी इस बोतल में घुस सकेगा, वही इस घर का, बूढ़ी का और इस युवती का मालिक होगा"। यह फ़ैसला सुन कर ग़रीब ब्राह्मण तो पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ा, कारण कि इस न्याय से उस बेचारे की रही-सही आशा ही जाती रही। लेकिन भूत-ब्राह्मण तो इस हुक्म से ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। भूत की अक़्ल—भैंस जैसी काली और मोटी हुआ ही करती है। वह आगा-पीछा बग़ैर सोचे झट बोल पड़ा," इस बोतल में घुसना तो मामूली-सी बात है, यह लीजिए, अभी जाता हूँ, "यह कह कर पल-भर में, मक्खी बनकर, उस बोतल में वह घुस गया। इधर जज साहब ने फ़ौरन ही दूसरी जेब से एक डाट निकाल कर, बिना कुछ कहे, उस बोतल के मुँह में कस डाला और ठाकुर साहब के एक विश्वासी नौकर को हुक्म दिया कि इस बोतल को दूर ले जाकर एक ख़ूब गहरे गड्ढे में पटक कर, उसे मिट्टी से पुर देवे।

चरवाहे के लड़के का यह बुद्धिमत्तापूर्ण न्याय अब सभों की समझ में आगया। भूत-

राम ने अपने किये का फल पाया। ठाकुर साहब ने, हँसते हँसते, इस छोटे जज की पीठ ठोंकी और जज साहब और ब्राह्मण-देवता दोनों को, बहुत-सा धन देकर खुशी खुशी विदा किया।

बेचारा ब्राह्मण ठाकुर साहब और जज साहब, दोनों को असंख्य आशीर्वाद देता हुआ अपने घर लौटा और तीनों प्राणी अब सुख से जीवन व्यतीत करने लगे।

खईपुर में इस ईश्वरीय न्याय की चर्चा आज तक हो रही है।

लोग कहते हैं कि "सच्चे का बोल-बाला। झूठे का मुँह काला॥

बुढ़िया और बच्चा

लेखक, श्रीयुत बाबूलाल विद्यार्थी

एक दिन का ज़िक्र है बच्चो सुनो,
सुन चुको तो दूसरों से भी कहो।

एक बुढ़िया थी बुढ़ापे से नहाल,
इसलिए चलना भी था उसको मुहाल।

एक दिन बाज़ार में थी जा रही,
अपनी लाठी को ज़मीं पर टेकती।

देखती जाती थी चारों ओर वह,
ताकि उसको कोई भी ख़तरा न हो।

हाथ में उसके खिलौने थे नए,
थे ख़रीदे अपने नन्हें के लिए।

एक झकोले से ज़मीं पर वह गिरे,
वह झुकी उनको उठाने के लिए।

बाय क़िस्मत एक मोटर आगई,
और वह रफ़्तार से भी तेज़ थी।

ऐन मुमकिन था कि मर जाती कहीं,
एक लड़का ग़र न आ जाता कहीं।

सामने मोटर के एकदम आगया,
जिससे मोटर को वहीं रुकना पड़ा।

वह खिलौने हाथ में उसने लिये,
झट से उस बुढ़िया के हाथों दे दिये।

उसको रस्ते से परे फ़ौरन किया,
इस तरह से जान दी उसकी बचा।

ख़ैरो आफ़ियत से वह घर को गई,
रास्ते में उसके गुन गाती हुई।

तुम भी ऐसा वाक़या देखो अगर,
जान ग़ैरों की बचाओ दौड़कर।

हमारी चित्रावली
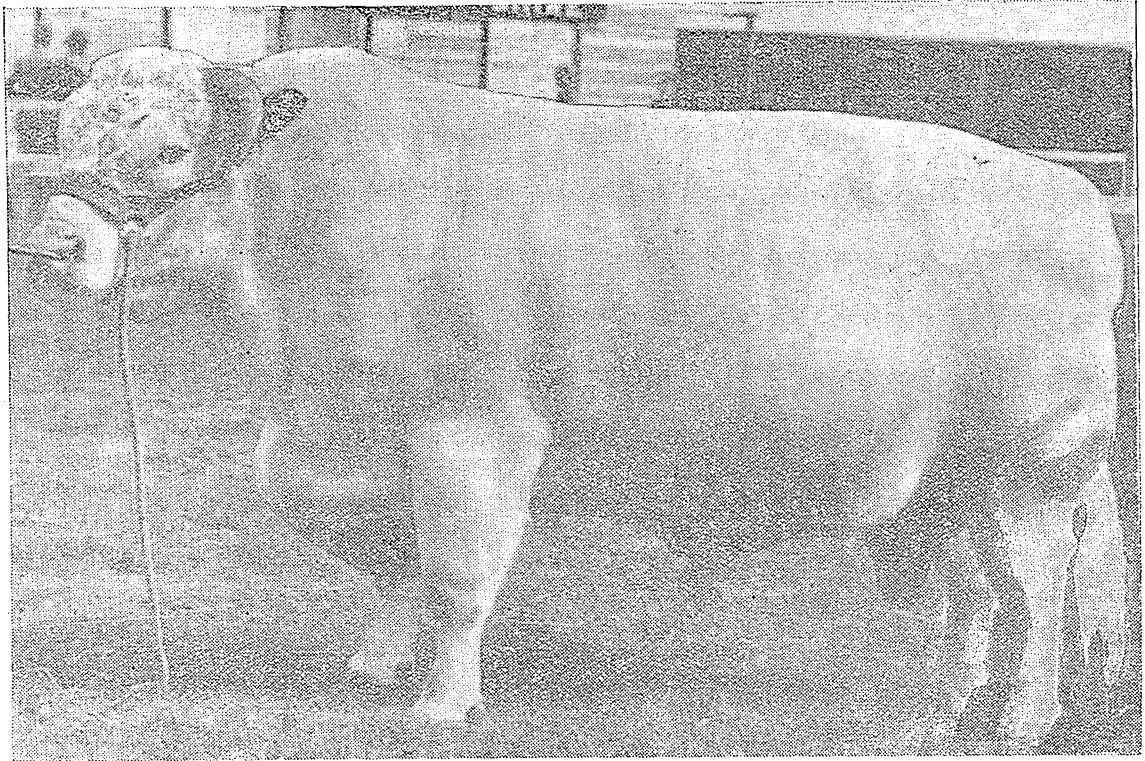
विलायत की एक कृषि-प्रदर्शिनी में आया हुआ साँड़। इसका मूल्य ५,००० पौंड है।

श्रीयुत एस० पी० शाह, आई० सी० एस० (लखनऊ)—फ़्रांस में आपके २०,०००) के लगभग के जवाहर चोरी हो गये थे। परन्तु फ़्रांस की पुलिस ने उनका पता लगाकर भारत भेज दिया है। शाह साहब के भाई जहाज़ से उतारे जाने के बाद बाक्सों को अपने अधिकार में ले रहे हैं।

कुमारी तारा देवास—नागपुर-विश्वविद्यालय में मेट्रिकुलेशन के ५,००० विद्यार्थियों में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।
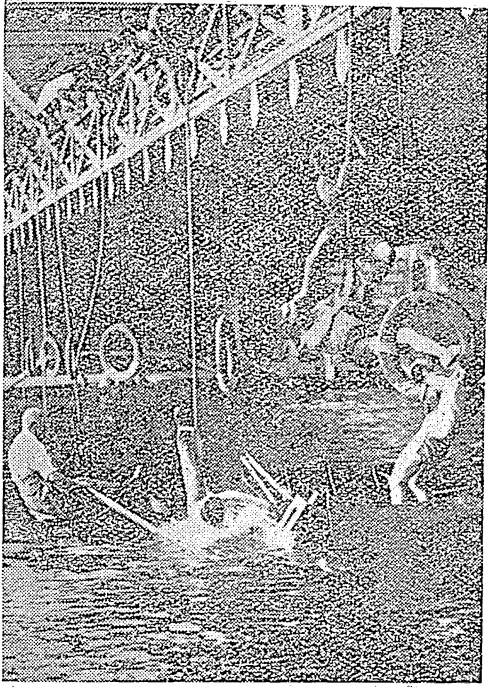
इँग्लेंड में जल के साहस-पूर्ण खेलों का एक दृश्य।
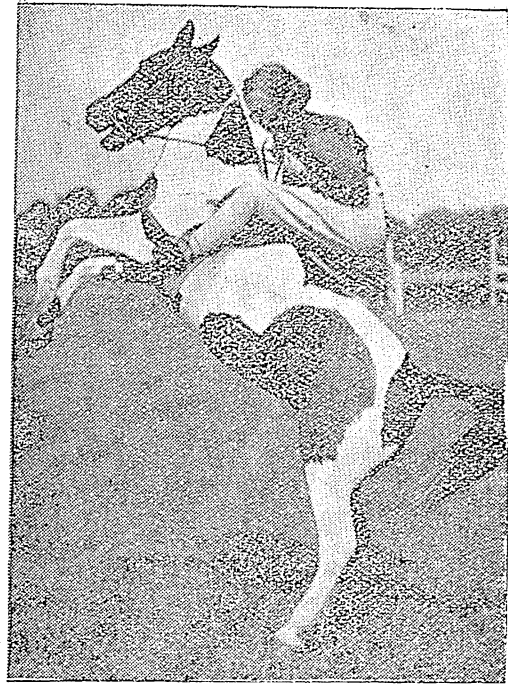
मिस पेगी एली (लंदन) के घोड़ा कुदाने का एक साहस-पूर्ण दृश्य।

हर्टफ़ोर्डशायर (इँग्लेंड) में मोटर-साइकिल की ऊँची कूद।

कैटरहम छावनी (इँग्लेंड) में मेहमानों को गैस की कोठरी दिखाई जा रही है।

चन्दा दीदी की चिट्ठी

प्यारे सुरेन्द्रनाथ (उरई)—साइन्स ज़बानी रटने की चीज़ नहीं है, समझने की चीज़ है। यदि तुम्हें रटने का शौक़ ज़्यादा हो तो साइन्स छोड़ो और संस्कृत ले लो।

प्यारे ब्रह्मप्रकाश शर्मा (सम्भल)—तुम मुझे देखना चाहते हो यह जान कर ख़ुशी हुई। मैं तुम्हारे पास भी अपना एक फ़ोटो भेजूँगी।

प्यारे राकेशमोहन जोशी (लैन्सडौन)—तुम्हारी कविता मुझे बहुत पसन्द आई। मैंने बाल-सखा के सम्पादक जी से उसे छापने के लिए सिफ़ारिश की है। पर ऐसी चीज़ें सीधा सम्पादक के ही पास भेजा करो।

प्यारे देवकीनन्दन (कटक)—तुम्हारा सोचना बिलकुल ठीक है। चन्दा दीदी वास्तव में कोई चीज़ नहीं है। पर यह चिट्ठी तो वास्तविक है। और तुम्हारे दिल बहलाव के लिए यह काफ़ी है।

प्यारी भुवनमोहनी (दिल्ली)—कोई ज़रूरी नहीं कि लड़कियों को सीना पिरोना और भोजन बनाना आवे ही। पर यदि आवे तो अच्छा है। तुम दिमाग़ से काम लोगी, ठीक है। पर भोजन बनाना जान तो लो।

प्यारे काशीनाथ (भोपाल)—तुम कई जवाबी कार्ड भेज चुके हो, यह ठीक है। इस बार मैं तुम्हें अलग से भी उत्तर दे रही हूँ। पर यदि मैं अलग से उत्तर न दूँ तो तुम्हें नाराज़ न होना चाहिए। क्योंकि मैं पहले कह चुकी हूँ कि मैं यहीं उत्तर दूँगी।

प्यारी मिस विमला (नाभा)—यह ख़ुशी की बात है कि तुम्हारे पिता हेडमास्टर हैं। पर मुझे यह जान कर अफ़सोस हुआ कि उन्होंने तुम्हारे लिए बाल-सखा मँगाना बन्द कर दिया। मुझे एक कहानी याद आती है। एक बार धूल में एक हीरा पड़ा था। लोग उस पर पैर रखकर जाते थे। पर हीरे को अफ़सोस न होता था। एक दिन एक जौहरी उस राह से निकला। जब वह भी हीरे को कुचल कर चला गया तब हीरा रोने लगा। बाल-सखा को यदि माता-पिताओं के मार्ग में पड़ा हीरा मान लें तो तुम्हारे पिता तो जौहरी हैं। उन्हें तो इसकी क़द्र करनी चाहिए।

(सब बच्चों की प्यारी)

"चन्दा दीदी"

C/o सम्पादक बाल-सखा, इलाहाबाद

महापुरुषों की सरल कहानियाँ

बाल-सखा के पिछले अङ्क में पाठक महात्मा गांधी की सेगाँव में रहने की कहानी पढ़ चुके हैं। उस कहानी के लेखक हैं श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी। श्री प्रभुदयाल जी महात्मा गांधी के पास ही रहते हैं। अतएव वे उनके बारे में अच्छा लिख सकते हैं। इस अङ्क में उन्होंने महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री महादेव भाई की कहानी लिखी है। वह लेख अन्यत्र छपा है। महात्मा जी के पास और भी जो बड़े लोग रहते हैं या आते जाते रहते हैं इन सबकी कहानियाँ श्री प्रभुदयाल जी बाल-सखा के पाठकों के लिए लिखेंगे। कुछ नाम ये हैं—

(१) श्री जे० सी० कुमारप्पा जी, (२) श्री कस्तूर बा० गान्धी, (३) श्री मीरा बेन, (४) पं० जवाहरलाल जी नेहरू, (५) सी० यफ० एन्डरूज, (६) श्री हरमैन केलन बेक, (७) श्री जमनालाल जी बजाज़, (८) बिनोवा भावे नालवाडी आश्रम के संचालक, (९) श्री किशोरलाल जी मशरुवाला, (१०) देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी, (११) श्री काका साहब कालेलकर, (१२) खान साहब, (१३) श्री राजगोपालचारिया।

ये इन लोगों की सरल कहानियाँ इसलिए लिखना चाहते हैं कि इन्होंने इन लोगों को उनके बहुत निकट सम्पर्क से देखा है।

आशा है यह लेखमाला पाठकों को पसन्द आयेगी।

मज़ेदार उपदेशप्रद कहानियाँ

श्री मनोरमा चौधुरी एम० ए० का बाल-सखा से बड़ा स्नेह है। उन्होंने उसके लिए बहुत-सी मज़ेदार कहानियाँ लिखकर भेजी हैं। एक इस अङ्क में भी छप रही है। आगे पाठकों को प्रति-मास ये मज़ेदार कहानियाँ पढ़ने को मिलेंगी। पाठक श्री भारतीय एम० ए० को न भूले होंगे। अगले अङ्क से उनकी भी मज़ेदार कहानियाँ छपेंगी।

एक मज़ेदार प्रश्न और उसका उत्तर

श्री दुर्गादत्त झुंझनूवाला ने हमारे पास एक दर्जे के लड़कों की बात-चीत लिखकर भेजी है। उसमें किसी ने प्रश्न किया था कि ४ में से १ घटाया तो बाक़ी क्या बचे। लड़कों ने जवाब दिया—३। यह ठीक ही है। परन्तु प्रश्नकर्त्ता ने कहा—"तीन नहीं पाँच।" पाठक सोचेंगे कि यह कैसे सम्भव हो सकता है। प्रश्नकर्त्ता ने इसे सम्भव कर दिखाया। उसने एक चौकोर

कागज़ लिखाया और कहा—"भाइयो देखो! इसमें चार कोने हैं। मैं एक कोना निकालता हूँ।" यह कहकर उसने एक कोना कैंची से काट दिया। अब तो कागज़ में पाँच कोने हो गये। कम से कम यहाँ यह बात साबित हो गई कि "चार में एक घटाया बाकी बचे पाँच।" पाठक इस प्रश्न को अपने साथियों पर आजमायें बड़ा मज़ा आयेगा।

बाल-संसार

बाल-सखा के पाठकों ने 'भूगोल' नामक मासिक पत्र का नाम सुना होगा। यह अपने विषय का हिन्दी में अकेला पत्र है। इसके सम्पादक पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० बड़े घुमक्कड़ हैं। वे देश-विदेश की सैर करके सब जगह का सच्चा हाल भूगोल में छाप चुके हैं। अब उन्होंने बाल-संसार नाम से उसका विशेषाङ्क निकाला है। इस विशेषाङ्क में दुनिया भर के बच्चों की मज़ेदार कहानियाँ और तसवीरें हैं। जो बालक इस अङ्क को पढ़ना चाँहें वे भूगोल-कार्य्यालय, इलाहाबाद को पत्र लिखें।

कौन दिन था ?

श्री नगेन्द्रनाथ दे लिखते हैं—

सितम्बर १९३७ के बाल-सखा में एक लेख निकला है ३८१ पृष्ठ में "कौन दिन था" १९२८ की ५ मार्च को? अब हिसाब से १९२७ का चौथा हिस्सा ४३१ के बदले ४८१ आता है। इस अंक को लेकर जैसा कि लेख में बतलाया गया है योगफल २४५७ होता है न कि २४०७। अब २४५७ को ७ से भाग देने पर शेष कुछ नहीं बचता। इसलिए दिन हुआ रविवार। और यदि २४०७ लिया जाय जैसा कि लेख में है, उसे ७ से भाग देने पर शेष बचा ६। इसलिए दिन हुआ शनिवार। परन्तु १९२८ की ५ मार्च को दिन था सोमवार। लेख के हिसाब मुताबिक यह आता नहीं। कृपा कर इस हिसाब को साफ़ कीजिए।

—नगेन्द्रनाथ दे

कलम-सखा

मुझे भी टिकट-संग्रह का शौक़ है। मेरे पास इँग्लैंड, जापान, जर्मनी, मक्का, फ्रांस, डेन्मार्क, यू० एस० ए०, बेलजियम, इटली, टर्की आदि बहुत-से देशों के टिकट हैं। जो पाठक टिकट अदल-बदल करना चाहें वे कृपया मुझसे पत्र-व्यवहार करें।

—माधवमल मेहता,
c/o गोविन्दमल मेहता, वकील, चोफ़ कोर्ट,
माणक चौक, जोधपुर।

× × × ×

दो एक बार मेरा पता बाल-सखा में छपा है परंतु लड़कियों से पत्र-व्यवहार करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। मुझे बड़ी प्रबल इच्छा है कि अन्य प्रान्तों की लड़कियों से पत्र व दोस्ती करूँ, वह मेरे को अपने लिए एक अच्छी प्यारी सखी पायेंगी मुझे निम्नलिखित बहनों से भी पहचान करने की इच्छा है, क्या आशा करूँ कि, ये लोग मुझे पत्र देकर विशेष आनिन्दत करेंगी।

जैसे:—कुमारी नयनतारा पंडित, मंसूरी। शांतिदेवी, अनूपशहर। कुमारी लाजवंती लैया। प्रेमलता, देहली। रुक्मिणीबाई शुक्ल, कटनी। कान्तीदेवी, लखनऊ। सावित्रीदेवी, देहरादून। शांतिदेवी, बदायूँ सिटी।

पता—रत्नकुमारी देवी वर्मा, फ़तेहपुर सी० पी०

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.
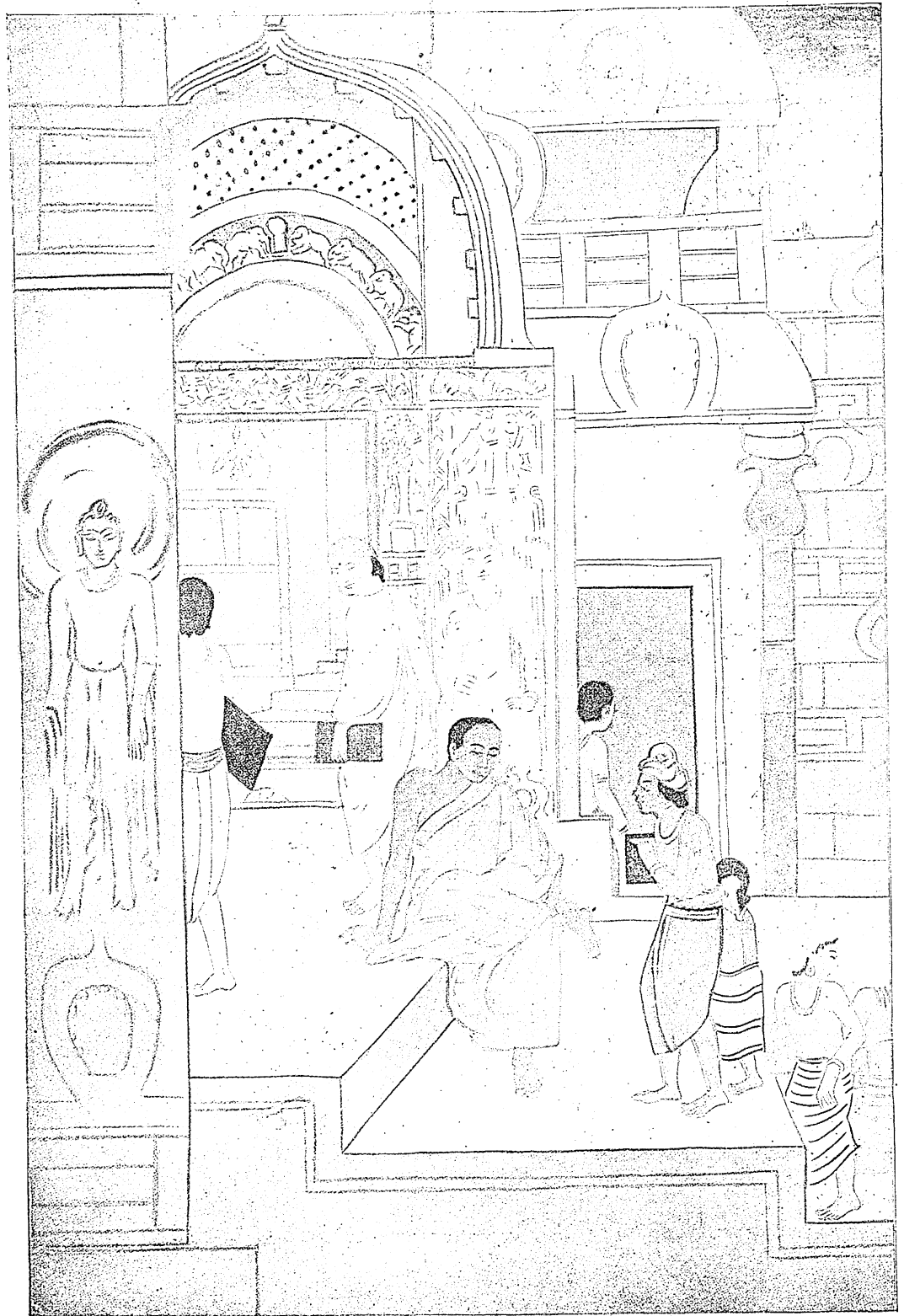
नालन्दा-विश्वविद्यालय और द्वारपाल

[प० श्रीनारायण चतुर्वेदी के सौजन्य से
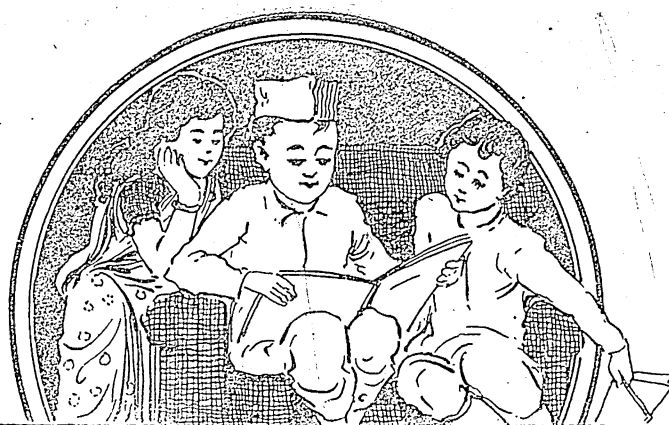
बालसखा

सम्पादक—श्रीनाथसिंह

वर्ष २१] नवम्बर १९३७—कार्तिक १९९४ [संख्या ११

नालन्दा विश्वविद्यालय और द्वारपाल

नालन्दा में किसी समय में एक बड़ा था द्यालय
पंडित एक द्वार पर उसके बैठा करता था निर्भय ॥
उस विद्यालय में जो पढ़ने आते उनसे वह पंडित।
प्रथम दिवस कुछ प्रश्न पूछता और मेटता निज संशय ॥

इस प्रकार वह वीर व्रती चतुरों की चारु परीक्षा कर।
जाने की अनुमति देता था उनको फाटक के भीतर ॥
आज नहीं वह द्वारपाल है और नहीं वह विद्यालय।
पर इतिहास-पृष्ठ पर रक्षित है उनकी यह कथा अमर ॥

—'श्रीश'

बापू क्या चाहते हैं ?

लेखक, श्रीयुत काशिनाथ त्रिवेदी

बापू से मेरा मतलब महात्मा गांधी से है। जिनकी ६८वीं साल-गिरह अभी-अभी हमारे देश ने बड़े धूम-धाम से मनाई है। और, क्या चाहते हैं—से मतलब है, देश के बालकों और किशोरों से क्या चाहते हैं। 'बाल-सखा' के पाठकों को यह ख़बर देने की तो शायद ही ज़रूरत हो कि पिछले अगस्त से हमारे देश के छः (और अब सात) बड़े प्रान्तों में देश की सबसे बड़ो संस्था राष्ट्रीय महासभा के चुने हुए प्रतिनिधि मंत्रो बनकर इन प्रान्तों पर शासन कर रहे हैं। और यह शासन बहुत कुछ उन आदर्शों के अनुसार हो रहा है, जिनके लिए हमारी राष्ट्रोय महासभा पिछले ५० बरसों से बराबर मेहनत करती और लड़ती-झगड़ती आई है।

राष्ट्रीय महासभा के इन आदर्शों में एक बड़ा आदर्श यह भी रहा है कि जिस दिन हुकूमत की डोर हिन्दुस्तान के हाथ में आयेगी, हिन्दुस्तान की वह पहली सरकार सबसे पहले इस बात की कोशिश करेगी, कि इस देश के इस छोर से उस छोर तक,—यानी हिमालय से कन्या कुमारी तक और द्वारका से डिबरूगढ़ तक,—कोई ऐसा गाँव और शहर न रहे, जहाँ बच्चों, बूढ़ों और नौ जवानों के पढ़ने-लिखने का और हर तरह के काम-धन्धों में क़ाबिल बनने का पूरा-पूरा इन्तज़ाम न हो। महासभा को यह आदर्श अपने सामने इसलिए रखना पड़ा है कि सारी दुनिया में एक हमारा मुल्क हिन्दुस्तान ही, ऐसा मुल्क है, जहाँ सौ में मुश्किल से नौ या दस आदमी पढ़े-लिखे माने जाते हैं। और इन पढ़े-लिखों में वे लोग भी शामिल हैं, जो महज़ प्राइमर या पहली तक पढ़े हैं। और सिर्फ़ अपना नाम पढ़ना या दस्तख़त करना जानते हैं।

हिन्दुस्तान जैसे बड़े और पुराने मुल्क के लिए यह हालत कितनी शर्मनाक है, और इससे दुनिया के दूसरे देशों में हमारी कितनी बदनामी है, सो जाननेवाले अच्छो तरह जानते हैं।

इन्हीं सब बातों पर ग़ौर करके गांधी जी ने मुल्क के सामने और ख़ास कर उन मंत्रियों के सामने, जो हिन्दुस्तान के सात प्रान्तों में आज राष्ट्रीय महासभा के हुक्म से हुकूमत का काम

कर रहे हैं, देशवासियों की शिक्षा के बारे में अपने कुछ अनोखे विचार रक्खे हैं। और इन विचारों की वजह से आज देश में इस सवाल को लेकर एक ख़ासी मज़ेदार बहस-सी छिड़ गई है।

कुछ लोग हैं जो गांधी जी के विचारों को मानते हैं; उनको दाद देते हैं, और शिक्षा के मामले में उनके बताये रास्ते पर चलना देश के लिए अच्छा समझते हैं। कुछ दूसरे लोग हैं, और इनमें बड़े-बड़े लोग हैं, जो गांधी जी की इन बातों को काटते हैं, और इनकी अच्छाई में सन्देह प्रकट करते हैं!

ये सब बड़ों की बड़ी बड़ी बातें हैं, और वे सब सरगर्मी के साथ इन पर अपना दिमाग़ लड़ा रहे हैं। और मेरे ख़याल में वह दिन दूर नहीं है, जब हमारे देश के और ख़ास कर इस देश के बालकों और नौजवानों की शिक्षा के बारे में, हमारे बड़े किसी बहुसम्मत नतीजे पर पहुँच जायँगे और उसके अनुसार देश में नये ढंग की शिक्षा का श्रीगणेश हो जायगा।

यह नये ढंग की शिक्षा कैसी होगी और इसका प्रबन्ध कैसे किया जायगा, इसके बारे में गांधी जी ने अपने जो विचार देश के सामने रक्खे हैं, उनका निचोड़ मैं 'बाल-सखा' के पाठकों के सामने रखता हूँ; इस आशा से कि वे इस पर विचार करेंगे, और इसके बारे में अपनी राय ज़ाहिर करेंगे। मैं इसे ज़रूरी इसलिए समझता हूँ कि यह सवाल जितना बड़ों के मतलब का है, उससे ज़्यादा नहीं, तो उतना ही छोटों के यानी हमारे मतलब का भी है। इसलिए हमारा फ़र्ज़ हो जाता है कि हम इसमें दिलचस्पी लें, और हमारे बड़े हमारे ही हित के लिए जो कुछ सोच रहे हैं, उसे समझने की हम कोशिश करें।

गांधी जी ने नये ढंग की शिक्षा की दो ख़ूबियों पर ज़्यादा ज़ोर दिया है। और वे इस तरह हैं—

१—गांधी जी चाहते हैं कि अब हमारे देश में नई परिस्थिति के अनुसार शिक्षा का जो तरीक़ा जारी किया जाय, उसमें ज़ोर किताबों की पढ़ाई पर कम और दस्तकारियों पर ज़्यादा दिया जाना चाहिए,—ख़ास कर ऐसी दस्तकारियों पर जो हमारे देहात में आसानी से फैल-बढ़ सकती हों, और जिनसे गाँववालों को गाँव ही में रोज़ी मिल सकती हो। इसके लिए उनका यह कहना है कि ७ साल की उमर से ही बालकों को पाठशाला में ऐसी उपयोगी दस्तकारियाँ सिखानी चाहिएँ, जिनसे १४-१५ बरस की उमर में, जब वे मैट्रिक तक की योग्यता हासिल करके स्कूल से निकलें, तो इस क़ाबिल हों, कि जहाँ बैठें, वहाँ से कुछ कमा कर उठें, और बेकारी का कभी मुँह भी न देखें! इसका यह मतलब नहीं कि नई पाठशालाओं में केवल दस्तकारी ही दस्तकारी सिखाई जाय! सिखाये तो सभी विषय जायँगे,—भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, चित्रकला, संगीत, आदि सभी—पर इन सबको सिखाने का ज़रिया दस्तकारियाँ रहेंगी; आजकल की तरह निरी किताबें ही किताबें न रहेंगी। यानी गांधी जी चाहते हैं कि अब के बालक, जो कल के नागरिक होंगे, और देश की हुकूमत चलायेंगे, केवल दिमाग़ी पहलवान और किताबी कीड़े

ही न हों बल्कि वे लोग हों, जो दिमाग़ के साथ-साथ हाथ-पैर से भी निहायत ख़ूबी और मुस्तैदी से काम कर सकें, और अपने पसीने की कमाई से अपनी रोटी खा सकें। अब तक की हमारे स्कूल कालेजों की पढ़ाई ने जिन लोगों को तैयार किया है, वे दिमाग़ी काम तो थोड़ा-बहुत करना जानते हैं, पर मेहनत-मशक्क़त का नाम सुनते ही उनके होश ग़ायब हो जाते हैं। यही वजह है कि आज ऐसे लोगों में बेकारी जंगल की आग की तरह फैल रही है, और ये देश में चिन्ता के विषय बने हुए हैं। फिर हम तो अपने देश को आज़ाद करना चाहते हैं और ख़ुद ही अपना राज चलाना चाहते हैं। अब जो राज करना चाहते हैं उनके तो हाथ-पैर भी मज़बूत होने चाहिएँ और दिल-व दिमाग़ भी मज़बूत होना चाहिए। नहीं, लूलों-लँगड़ों से कभी किसी देश का राज चला है ?

२—दूसरी बात जो गांधी जी कहते हैं, यह है कि देश में ऊपर के ढंग की शिक्षा का फैलाव इस क़दर हो जाना चाहिए कि एक भी आदमी फिर वह बालक हो, जवान हो, या बूढ़ा हो, अनपढ़ और अनघड़ न रहना चाहिए। यानी छोटे बड़े, स्त्री-पुरुष, सबको इतना लिखना-पढ़ना आना चाहिए कि वे अपना सब काम आसानी से ख़ुद कर सकें और इतनी दस्तकारी उन्हें सीख लेनी चाहिए कि जहाँ कहीं रहें, उसके प्रताप से रोज़ की इतनी मज़दूरी तो कर ही लें, कि न ख़ुद भूखों मरना पड़े, न बाल-बच्चों को भूख से तड़-पाना पड़े।

अब आप सोच सकते हैं कि यह कितना बड़ा काम है ? अगर आज ही के ढंग से इस सारे काम को चलाया जाय, तो सिर्फ़ इसी एक काम के लिए हमें करोड़ों रुपयों का ख़र्च बढ़ाना पड़े, और इन करोड़ों का इन्तज़ाम करना पड़े। अब ये करोड़ों रुपये हमारे हिन्दुस्तान-सा ग़रीब और ग़ुलाम मुल्क लाये कहाँ से ? और इस एक ही काम में इतने रुपये ख़र्च करके वह जाये कहाँ ?

इस कठिनाई को हल करने के लिए गांधी जी ने जो रास्ता सुझाया है, वह विचार करने लायक़ है। उनका कहना है कि हमें अपने स्कूलों की पढ़ाई को स्वावलम्बी बना देना चाहिए। यानी सारी पढ़ाई की अवस्था इस ढंग से करना चाहिए, कि पढ़नेवाले आज़ादी के साथ पढ़ें भी और उनकी पढ़ाई पर जितना ख़र्च हो, उतना वे स्कूल ही में दस्तकारियों-द्वारा पैदा कर लें। इस तरह वे पढ़-लिखकर और काम-धन्धा सीखकर क़ाबिल के क़ाबिल बन जायँगे, और इस क़दर अपने पैरों पर खड़े रहना सीख जायँगे, कि न अपने घरवालों पर बोझ बन कर रहेंगे, न मुल्क के लिए बोझरूप होंगे! फिर बेकारी का तो सवाल ही पैदा न होगा। और जब बेकारी न होगी, सबको काम मिलेगा। और सब कमायेंगे, तो न ग़रीबी रहेगी, न ग़ुलामी रहेगी। हमारी राष्ट्रीय महासभा जो चाहती है, यह यही चीज़ है; और उसे हासिल करने का यह एक तरीक़ा गांधी जी ने सुझाया है, जो ध्यान देने योग्य है।

अब आप पूछ सकते हैं कि वे दस्तकारियाँ क्या होंगी, जो प्राइमरी, मिडिल या हाई स्कूलों में सिखाई जायँगी ?

इसके जवाब में गांधी जी यह कहते हैं, कि

आम तौर पर तो जिस हलके में जो दस्तकारी फ़ायदे के साथ चल सकती है, और जिसकी माँग है, वही सिखाई जायगी; पर ख़ास तौर पर हाथ से कपड़ा बनाने, यानी कपास ओटने, रुई धुनने, सूत कातने और कपड़ा बुनने की, सभी क्रियायें सिखाई जानी चाहिएँ। इसके अलावा, बढ़ईगीरी, लुहारी, सुनारी, दर्ज़ीगीरी वग़ैरह कई धन्धे हैं जो आसानी से सिखाये जा सकते हैं, और जिनसे ख़ासा लाभ उठाया जा सकता है।

गांधी जी कहते हैं कि यह सब सीखते और करते हुए स्कूलों में विद्यार्थियों को फ़ी घण्टा कम से कम दो पैसे की मज़दूरी तो ज़रूर ही मिलनी चाहिए। इस तरह अगर वे रोज़ चार घण्टे की मेहनत करें तो कम से कम दो आने कमा लेंगे, और अपनी पढ़ाई का ख़र्च ख़ुद चला सकेंगे।

वैसे देखने-सुनने में तो गांधी जी की ये सारी बातें बिलकुल नई निकम्मी-सी और ख़याली-सी मालूम होती हैं, मगर इनके पीछे स्वतंत्र देशों के अनुभव का बल है, और गांधी जी जैसे तपस्वी की वह श्रद्धा है, जिसने इससे पहली भी बहुत-सी अनहोनी बातों को होनी बना दिया है।

मेरा अपना भी यह ख़याल है, कि अगर हम अपने दिल और दिमाग़ को साफ़ और शान्त रखकर इस सवाल पर विचार करेंगे, और अपने देश की बेबसी, ग़रीबी और पिछड़ी हुई हालत को ध्यान में रक्खेंगे, तो हम भी बहुत कुछ उसी नतीजे पर पहुँचेंगे, जिस पर गांधी जी पहुँच चुके हैं।

वैसे तो हर नया काम शुरू में मुश्किल दिखाई देता है, लेकिन जब एक बार हम कमर कस कर उस पर पिल पड़ते हैं, तो वही इतना आसान हो जाता है कि ख़ुद हमीं को अचंभा होता है कि अरे, हमने इसे मुश्किल कैसे समझ लिया था! हम क्यों न सोचें कि यही बात हमारी पढ़ाई की इस नई योजना के बारे में भी हो सकती है, और हम अपने निश्चय के बल पर आज के असम्भव को कल का संभव बना कर दिखा सकते हैं?

अब आप समझे होंगे कि देश में इधर जो नई हवा बहने लगी है, उसको पक्की और पूरी शकल देने के लिए शिक्षा के मामले में गांधी जी हमसे क्या चाहते हैं?

गांधी जी के विचार आपके सामने हैं। अब आप सोच लीजिए कि ये कहाँ तक उपयोगी और हितकारी हैं, और अगर नहीं हैं, तो क्यों नहीं हैं?

नर-भक्षी मनुष्यों की क़ैद में

लेखक, श्रीयुत संतराम, बी० ए०

डाक्टर गार्डनर नाम के एक अँगरेज़ पादरी अपनी पत्नी और पुत्री हेलीना के साथ लाइबेरिया देश के अन्तर में रहते थे। वहाँ वे जंगली लोगों की चिकित्सा करते थे। एक दिन सवेरे ही पति-पत्नी पाँच कोस की दूरी पर एक गाँव में बुख़ार के बीमारों को देखने गये। पीछे अस्पताल में उनकी पुत्री कुमारी हेलीना, उसकी नौकरानी मुरा और दो जंगली नौकर रह गये।

बड़ा घोर घाम हो रहा था। हेलीना ने बाहर कुछ शोरगुल सुना। कोई बीस जंगली मनुष्य डाक्टर के दो नौकरों के साथ झगड़ रहे थे। मुरा डर के मारे पागल-सी हो गई। हेलीना उससे केवल इतना ही मालूम कर सकी कि ये जंगली मनुष्य शत्रु हैं।

ऐसा प्रतीत हुआ कि वे किसी शत्रु-जाति के मनुष्य हैं। कोई झगड़ा हो गया था जिसका बदला लेने वे आये हैं। शत्रु-जाति के किसी मनुष्य को पकड़ कर खा लेना ही वे सबसे अच्छा बदला समझते हैं। डाक्टर के दोनों नौकरों को, शायद बूढ़ा और चिमड़ा होने के कारण, खाने के योग्य नहीं समझा गया। परन्तु मुरा जवान, हृष्ट-पुष्ट और खाने में मज़ेदार थी। उनकी बातों को हेलीना तो समझ न सकती थी, परन्तु मुरा सब समझ रही थी। डर के मारे उसका ख़ून सूख गया।

डाक्टर के दोनों नौकर उन बीस मनुष्यों को घर के भीतर घुसने से न रोक सके। जंगली मनुष्य हेलीना को नहीं वरन् मुरा को लेना चाहते थे। मुरा ने रोकर हेलीना से प्रार्थना की कि मुझे बचाओ। हेलीना का हृदय पिघल गया। उसके पास कोई शस्त्र होता तो उनसे वह लड़ती। परन्तु उसके पास कुछ न था। उसने उनकी राह रोक कर उनको घर से निकल जाने की आज्ञा दी।

वे एक क्षण के लिए हिचकिचाये। फिर उन्होंने हेलीना को ढकेल कर एक ओर कर दिया और मुरा को घसीट कर ले चले। हेलीना उनके पीछे दौड़ी और मुरा को उनसे छीन लेने का यत्न किया। उसने उनको दण्ड दिलाने की धमकी दी।

वे अभी तक मुरा को ही खाने का निश्चय किये हुए थे। परन्तु अब उनको विचार आया कि यदि हमने हेलीना को छोड़ दिया तो यह फ़ौजी चौकी में ख़बर कर देगी, जो कि वहाँ से पच्चीस मील पर थी, और फ़ौज आकर हमारे रंग में भंग डाल देगी। इससे बचने का एक उपाय यह था कि हेलीना को भी साथ ही ले जायँ। बस वे उसे भी साथ ले गये। परन्तु अब तक भी उनके मन में उसे हानि पहुँचाने का कोई विचार न था।

वे उन दोनों को जंगल में से घसीट कर

अभ्यन्तर में ले गये। जब जब भी वे तनिक विश्राम करना चाहतीं या चलने से इनकार करतीं तो वे उनकी बाँह को इतने ज़ोर से खेंचते कि वह कंधे से अलग होने लगती। कोई तीन घंटे की इस विपदा के बाद वे उनकी छावनी में पहुँचीं। उनको देखने के लिए उस जाति के सभी दूसरे पुरुष, स्त्रियाँ और नंगे बच्चे उनके गिर्द आकर इकट्ठे हो गये।

वे उसे पकड़कर देग के निकट ले गये

वहाँ बड़ा हो-हल्ला मचा। पकड़नेवालों ने दूसरे लोगों को बताया कि मुरा को तो खाने के लिए लाया गया है और हेलीना को इसलिए ताकि वह सिपाहियों को बुला कर हमारे भोज में विघ्न न डाल सके। परन्तु वृद्धों ने एक कठिनाई बताई।

उन्होंने कहा कि यदि हेलीना को पीछे से छोड़ दिया गया तो यह जाँच करायेगी और मुरा के ग़ायब हो जाने से बड़ा कष्ट और दण्ड भोगना पड़ेगा।

अन्त को उन्होंने निश्चय किया कि जो भी हो मुरा को ज़रूर खा लेना चाहिए और कुमारी हेलीना की फिर सूरत नज़र न आये। इसका मतलब यह था कि पादरी की लड़की को मार डाला जायगा और खा भी लिया जायगा। इसलिए निश्चय हुआ कि कुमारी हेलीना को पहले खाया जाय, क्योंकि गोरी लड़की एक अनोखी वस्तु थी।

उन नर-भक्षी मनुष्यों की बातें कुमारी हेलीना तो कुछ न समझती थी। हाँ मुरा ख़ूब समझ रही थी। परन्तु उनकी चाल-ढाल को देखकर हेलीना को भी जल्दी ही संदेह हो गया। उनके पास लोहे का एक बहुत बड़ा काला देग था। उसके गिर्दागिर्द वे आग जलाने लगे। देग चूल्हे पर नहीं, वरन् भूमि पर ही धरा हुआ था।

कुछ लोग बड़े उत्साह के साथ आग जला रहे थे, कुछ लोग पानी, भाजी और बूटियाँ ला रहे थे। भाजियों को एक तरफ़ रख दिया गया।

यह सारा काम एक बूढ़े मनुष्य की देख-रेख में हो रहा था, जो कि प्रधान रसोइया था। हेलीना को अपने बारे में उस समय संदेह हुआ जब वे मुरा को थोड़ी दूर पर अलग ले गये। वह वहाँ भूमि पर अचेत पड़ी थी।

यद्यपि वे मुरा पर पहरा दे रहे थे, परन्तु उनकी सारी दिलचस्पी हेलीना में थी। उसे दो मनुष्यों ने आग के निकट पकड़ रखा था। वे भूख से अपने होंठों को चाट रहे थे, हेलीना पर टकटकी लगा कर देख रहे थे, कभी कभी उसकी बाँहों और गर्दन को हाथ से टटोल कर उसके बारे में टीका-टिप्पणी करते थे, और उससे दृष्टि उठाकर देग पर डालते थे। यह देख हेलीना काँपने लगी। अब उसे मालूम हो गया कि देग में मुरा नहीं, मैं जा रही हूँ।

कहारों ने पानी लाना बंद कर दिया। परन्तु रसोइए ने, आँख से कुमारी हेलीना को नाप कर, अपना सिर हिलाया और पानी डालने की आज्ञा दी।

उस देग को उबलने में कम से कम तीन घंटे लगे होंगे, परन्तु पादरी की लड़की को वे कुछ मिनट मालूम हुए। अब वह देग खद-बदाने लगा।

हेलीना के घुटने काँप रहे थे। वह भय के कारण, मुरा की ही भाँति, मूर्च्छित-सी थी। परन्तु मेरा अन्तकाल इतना निकट आ पहुँचा है, इस विचार ने उसे जगा दिया। वह छूटने का यत्न करने और चिल्लाने लगी। परन्तु इसका उन पर कुछ असर न था, उलटा वे ख़ुश हो रहे थे। चिल्लाने से कुछ लाभ न देख, उसने अपने को शान्त करने का यत्न किया और उनके साथ सोच-समझ की बातें करने लगी। उसने उनसे कहा, मेरे पिता फ़ौज की चौकी में गये हैं और जल्दी ही सिपाही लेकर यहाँ आ पहुँचेंगे। यदि उन्हें पता लगा कि तुम ने मेरी हानि की है तो वे तुम्हें दण्ड देंगे।

उसकी धमकी का बूढ़े रसोइए पर कुछ असर होता मालूम हुआ। वह उसकी बातों को बड़ी चिन्ता के साथ सुन रहा था। इससे हेलीना को कुछ ढाढ़स मिली। इससे उत्साहित होकर उसने रसोइए को कुछ शब्द कहे। हेलीना को निश्चय हो गया कि मैंने उसे विश्वास करा दिया है। रसोइए ने अब ऊँची आवाज़ से जल्दी से हुकुम देना शुरू किया। परन्तु हेलीना को यह जान कर शोक हुआ कि रसोइए की आज्ञा उसे छोड़ देने की नहीं, वरन् आग को दुगुना कर देने की थी, ताकि सिपाहियों के पहुँचने के पहले पहल वह पक जाय और खाई जाय। वे जानते थे कि उसके पिता को फ़ौजी चौकी में जाने और वहाँ से लौटकर यहाँ पहुँचने के लिए पचास से भी अधिक मील चलना पड़ेगा। इसलिए वह उसे बचाने के लिए ठीक मौक़े पर नहीं पहुँच सकेगा। परन्तु वे चाहते थे कि सिपाहियों के आने के पहले पहल ही भोज समाप्त हो जाय और कोई सबूत न रहने पावे। हेलीना ने अपने मृत्यु को आप ही जल्दी बुला लिया।

वह फिर निराशा से अचेत हो गई। उसे

ऐसा जान पड़ता था मानो वह रात्रि में कोई भयानक स्वप्न देख रही है। उसे विश्वास नहीं होता था कि यह सब कुछ सचमुच है। देग में बुदबुदे उठने लगे। वह ज़ोर से उबलने लगी। हेलीना के कानों में उसका गर्जन हो रहा था। भाफ के बादल उठ रहे थे। पास खड़े कुछ लोग रसोइए से अनुरोध करने लगे कि अब पानी काफ़ी गरम हो गया है।

एक प्रकार की भयानक बेहोशी में हेलीना को आश्चर्य हो रहा था कि क्या वे मेरा सारे का सारा शरीर देग में डाल सकेंगे। उसे यह संभव नहीं जान पड़ता था।

अकस्मात् रसोइए ने कुछ कहा, जिससे सब हर्षित हो उठे। कुछ मनुष्यों ने देग की उस तरफ़ से आग हटा दी जिधर से हवा आ रही थी, ताकि हेलीना को उठा कर देग में फेंकने-वालों को आँच न लगे। कुछ मनुष्य और ईंधन ले आये। तब पहरेदार हेलीना को आगे लाने लगे। निराशा से उत्पन्न हुई शक्ति के साथ वह लड़ने और चिल्लाने लगी। परन्तु यह सब व्यर्थ था। उसे दर्जनों भूखे नर-भक्षी मनुष्य घेरे खड़े थे। वे उसे पकड़ कर देग के इतना निकट ले गये कि हेलीना के मुख और हाथों पर आग की गरमी लगने लगी।

परन्तु ठीक उसी समय जंगल के किनारे पर सीटी की तेज़ आवाज़ सुनाई पड़ी। डा० गार्डनर ने गरज कर उनको ललकारा। हेलीना अचेत हो गई।

डाक्टर के दोनों नौकर दौड़े हुए उसे समाचार देने गये थे। डाक्टर ने एक को तो फ़ौजी चौकी में भेज दिया था और दूसरे को साथ लेकर हेलीना को बचाने इधर दौड़ा आया था। वे चाहते तो उसे भी आसानी से मार सकते थे। परन्तु वे समझ गये कि अब बात दूर तक पहुँच चुकी है, अब हमारा बचना कठिन होगा। इसके अतिरिक्त उनमें से कुछ का डाक्टर इलाज भी कर चुका था। इससे वे लज्जित थे। जो भी हो, उन्होंने हेलीना और मुरा दोनों को छोड़ दिया और वे जल्दी ही अपने गाँव को वापस आ गईं।

पूसी

लेखिका, श्रीमती रुक्मिणीबाई शुक्ल

शीला बाई।
पूसी आई॥
जल्दी पकड़ो।
रस्सी जकड़ो॥
पकड़ लिया है।
प्रेम किया है॥

दूध पिलाया।
भात खिलाया॥
रस्सी तोड़।
मटका फोड़॥
भागी पूसी।
पहुँची भूँसी॥

चार मूर्ख मित्र

लेखक और चित्रकार, श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय

(१)

चार विप्र-सुत किसी नगर में,
करते थे सप्रेम निवास।
मित्रों के समान था उनका,
बालकपन ही से सहवास॥

(२)

शास्त्र ज्ञान से युक्त किन्तु थे
बुद्धि-रहित उनमें से तीन।
और एक था बुद्धि-सहित पर,
दैवयोग से विद्याहीन।

(३)

एक समय चारों के मन में,
ऐसा भाव हुआ उत्पन्न।
विद्या-बल से धन अर्जित कर,
हम भी बनें वित्त-सम्पन्न।

(४)

किया उन्होंने इस विचार से
पूर्व देश की ओर गमन।
चले किसी राजा के आगे,
दिखलाने निज विद्याधन।

(५)

किन्तु मार्ग में एक मित्र के
मन में ऐसा हुआ विचार।
विद्याहीन मित्र को हम में,
रहने का है क्या अधिकार।

(६)

अपना अर्जन किया हुआ धन,
इसे न देंगे हम किञ्चित।
विद्या-रहित कौन हो सकता,
सफल कार्य में बुद्धि-सहित।

(७)

किन्तु एक ने कहा नहीं यह,
मित्रों का होगा अपमान।
हम चारों को मिल सकता है,
अर्जित धन का भाग समान।

(११)

एक मित्र ने अस्थि उठा कर,
ऐसा पुनः किया प्रस्ताव।
इस मृत प्राणी को जीवित कर,
देखें विद्या-शक्ति-प्रभाव।

(१२)

किया अस्थियों को सञ्चित तब,
पहिले ने उत्कण्ठा-युक्त।
और दूसरा मन्त्र-शक्ति से,
करने लगा रुधिर संयुक्त।

(१३)

लगा तीसरा जीवित करने,
तब सुबुद्धि ने कहा विचार।
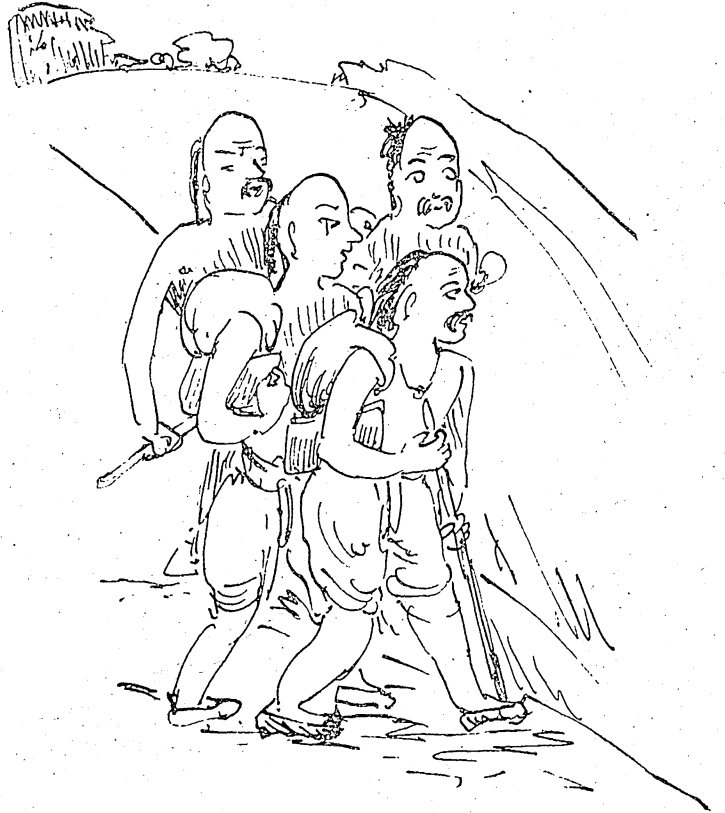
(८)

अपना और पराया ऐसा,
कहना केवल नीच विचार।
वसुधा को अपने कुटुम्ब सम,
सदा जानते व्यक्ति उदार।

(९)

ऐसा निश्चित कर आगे को,
पुनः उन्होंने किया गमन।
मृतक सिंह की अस्थि कहीं से,
एक पा गये विद्या-धन।

(१०)

उसे देख कर बोले पण्डित,
आज हुए हैं हम सब धन्य।
विद्याबल की सफल परीक्षा
का अवसर न मिलेगा अन्य।

ठहरो मित्र सिंह जीवित हो,
अपना कर देगा संहार।

(१४)

जीवित होकर प्रथम करेगा
निर्माता को ही यह नष्ट।
इससे मित्रो यह न उपस्थित,
करो अकारण दारुण कष्ट।

(१५)

कहा उन्होंने विद्याबल को,
हम न करेंगे मूर्ख विफल।
है धिक्कार तुझे जो होता,
इस प्रकार भय से विह्वल।

(१६)

करो मित्र जो चाहो कह कर,
एक वृक्ष पर चढ़ा सुबुद्धि।
मृतक सिंह में प्राणारोपण,
तब वे करने लगे कुबुद्धि।

(१७)

मन्त्र-शक्ति ने भी दिखलाया,
अपना दिव्य प्रभाव तुरन्त।
और सिंह ने जीवित होकर,
तीनों का कर डाला अन्त।

(१८)

अपने घर की ओर चला तब,
बुद्धिमान वह चिन्तारत।

ऐसा कह कर बिना बुद्धि के,
होते विद्यावान निहत।

(१९)

विद्या से सत् बुद्धि श्रेष्ठ है,
कहते यही नीति मर्मज्ञ।
सिंह बनानेवालों के सम,
मृत्यु प्राप्त करते हैं अज्ञ।

—

स्पेन देश की एक पुरानी कहानी

सच्चे मित्र कम मिलते हैं

लेखक, श्रीभारतीय, एम० ए०

एक भले आदमी के एक लड़का था। उसने उसे सीख दी कि जहाँ तक हो मित्रों की संख्या बढ़ावे। पुत्र ने पिता की आज्ञा का पालन किया। उसके साथियों की संख्या बढ़ने लगी। वह सबको अपना मित्र समझता—और समझता कि काम पड़ने पर वे सब उसके लिए जान दे'गे।

एक दिन उसके पिता ने बातचीत में पुत्र से पूछा, "क्या तुम्हारे मित्रों की संख्या काफ़ी है?" पुत्र ने उत्तर दिया, "हाँ और मेरे मित्रों में दस तो ऐसे हैं जो मेरे दुख-सुख के साथी हैं। काम पड़ने पर मेरे पसीने की जगह अपना लहू बहा देंगे।"

पिता को यह सुनकर आश्चर्य्य हुआ। उसने कहा, "आश्चर्य्य है कि तुमने इतने थोड़े समय में इतने सच्चे मित्र प्राप्त कर लिये। मुझे तो सारी उम्र में इतने मित्र प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं हुआ। मुझे तो इतने वर्षों में केवल डेढ़ मित्र मिल सके।"

पुत्र ने पिता को विश्वास दिलाना चाहा कि उसके मित्र वास्तव में सच्चे हैं। पिता ने कहा, "अच्छा इसकी परीक्षा लेनी होगी।" पुत्र ने कहा, "आप प्रसन्नता से परीक्षा ले लें। मेरे मित्र सच्चे निकलेंगे।"

पिता ने कहा, "अच्छा इसकी परीक्षा यों होगी। तुम कल एक सूअर मार डालो। उसे बोरे में भर कर अपने एक मित्र के घर ले जाओ और उससे एकांत में कहो कि तुमने एक आदमी की हत्या कर डाली है और वह तुम्हारी सहायता करे और उस बोरे में भरी हुई लाश को छिपा दे। नहीं तो तुम्हारी जान आफ़त में फँसेगी।"

पुत्र ने वैसा ही किया। वह एक एक करके अपने सभी मित्रों के पास पहुँचा। कोई उसकी सहायता करने पर तैयार न हुआ। सब ने कहा, "भाई हम तुम्हारे लिए हर तरह तैयार हैं पर भाई इसमें हम तुम्हारा साथ देकर अपनी जान जोखिम में नहीं डाल सकते। क्षमा करना। ईश्वर के लिए किसी से हमारे यहाँ आने की बात न कहना नहीं तो हम मुफ़्त में फँसेंगे।"

इस तरह अपने सभी मित्रों से जवाब पाकर वह लड़का अपने पिता के पास पहुँचा। पिता ने सब हाल सुना। उसने पुत्र से कहा, "अच्छा अब हमारे डेढ़ मित्रों की परीक्षा लो। तब तुम्हें विश्वास होगा कि हम बूढ़े लोग 'सठिया' नहीं गये हैं—हम बूढ़ों के अनुभव से तुम जैसे नवयुवकों को सीख लेनी चाहिए।"

पिता की आज्ञा मानकर पुत्र-पिता के 'आधे मित्र' के पास पहुँचा और उससे सहायता माँगी। उसने उत्तर दिया, "बेटा मुझे तुम्हारे पिता का बड़ा ख़याल है—मैं न तुम्हारा मित्र हूँ न मेरा तुमसे किसी प्रकार का परिचय है। फिर भी तुम्हारे पिता की ख़ातिर मैं तुम्हारी सहायता करने का वचन देता हूँ और यथाशक्ति

तुम्हारे अपराध पर परदा डालने का प्रयत्न करूँगा।" उसने लाश भरे बोरे को लेकर अपने बाग़ के एक कोने में उसे छिपा कर गाड़ दिया और उसे घास फूस से ढक दिया।

लड़का अपने पिता के पास लौट गया और उससे उसने सारी घटना सुनाई। पिता ने कहा, "अच्छा! अब तुम एक काम करो। मेरे उसी मित्र के पास जाओ और उससे बात-चीत करते समय किसी बात पर बिगड़ कर उसे मार बैठो।"

पुत्र ने पिता की आज्ञा का पालन किया। उसने उस बूढ़े आदमी को बात ही बात में घूँसे जमा दिये। वह भला आदमी उस पर भी शान्त रहा। उसने केवल इतना कहा, "ईश्वर की शपथ, लड़के तूने बड़ा भारी अपराध किया है। पर मैं तुझे विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तेरा बुरा न चाहूँगा। तेरा भेद मैं अपने ही तक रखूँगा।"

पुत्र ने आकर अपने पिता से सारा समाचार कहा। पिता ने कहा, "अब तुम मेरे पूरे मित्र के पास जाओ।"

पिता की आज्ञानुसार पुत्र उसके पूरे मित्र के घर पहुँचा। उसने उसे अपनी सारी विपत्ति की कहानी कही और उसकी सहायता माँगी। उसके पिता के बूढ़े मित्र ने विश्वास दिलाया, "तुम निश्चिन्त रहो। मेरे रहते तुम पर आँच नहीं आ सकती।"

दैवयोग से नगर में एक आदमी का सचमुच ख़ून होगया। न हत्यारे का पता चलता था न लाश ही का। पुलिस पता लगा रही थी। कुछ लोगों ने उस लड़के को वह बोरा कंधे पर रख कर ले जाते देखा था। लोगों को संदेह हुआ कि हो न हो उसमें उसी आदमी की लाश थी। कानाफूसी पुलिस के कानों तक पहुँची। उसने इस सन्देह पर उस लड़के को गिरफ़्तार किया। मुक़दमा चला। वह अपराधी प्रमाणित हुआ। उसके पिता के मित्र उसे छुड़ाने का प्रयत्न करके थक गये। जब उन्हें और कोई उपाय न सूझा तब उस अपराधी लड़के के पिता के 'पूरे मित्र' ने अदालत में जाकर यह बयान दिया, "हजूर, मैं नहीं चाहता कि एक भले आदमी का लड़का व्यर्थ में अपराधी बनकर अपनी जान खोये। मैं इसी लिए स्वीकार करता हूँ कि उस आदमी की हत्या मेरे पुत्र ने की है। वह मेरा अकेला लड़का है। इसी लिए ममतावश मैं उसका अपराध छिपाना चाहता था।"

अदालत ने उसकी बात मान ली और उस लड़के को 'बरी' कर दिया और उसके स्थान पर उस बूढ़े आदमी का लड़का गिरफ़्तार किया गया।

× × ×

लड़का जब छूट कर अपने पिता के पास पहुँचा तो उसने कहा, "तुमने देख लिया न कि सच्चे मित्र इतनी आसानी से और इतनी अधिक संख्या में नहीं मिला करते। बूढ़े की बात मानो बहुत-से मित्र न बनाओ—सच्चे मित्र बहुत कम मिलते हैं।"

से ठिक ठिक करने लगा और चींटे उल्लास से सूँड हिलाने लगे। मेंढ़क आकर सबसे मिला। अब और कोई उपद्रव न रहा था। सभी शत्रुओं का नाश हो चुका था। अब सब सुख से वास कर सकेंगे। चारों ओर आनन्द की धूम मच गई।

द्वारपाल ने आकर कहा, "काली रानी साहिबा और सब सखियाँ मेंढ़क महाराज का गान सुनने के लिए आग्रह कर रही हैं यह सुनकर सभी उसे गाने के लिए अनुरोध करने लगे। मेंढ़क ने कहा, "तुम्हारे सबके मिल कर साथ देने पर ही मैं गा सकूँगा।" इस पर सब सहमत हो गये।

मेंढ़क ने अपनी पुरानी कलम्बी के डंठल की सारंगी बाहर करके उसके सुर ठीक करके गाना प्रारम्भ किया :—

मेंढ़क—कट् कट् कट् कों कों कों।
मेरी सारंगी बज रही खूब नये ढंग्।
ओ ना मा सी ढंग, गुरु जी चितम्।
मेरी सारंगी बाजे, कैसा नया रंग।
कों कों कों कों।
झींगुर—झां झां झां
इच किच इच् किच् किच् किच् किच्।
मेंढ़क—झना ना ना ना ना ना झना ताना झन्न।
झिल्लि झिल्लि करते चहुँ ओर झिल्ली।
दुश्मन की बोलि गई टिल्ली लीली टिल्ली।
कों कों कों कों
चींटा—चीं चीं चीं चीं चीं चीं चीं।
गिरगिट—टिक टिक टिक टिक टिक टिक्
मेंढ़क—सुना जी सुनो जी नया नया ढंग्।
मेरी सारंगी बज रही गुरू जी चितम्।
वाह रंग संग, जंग ढंग, शत्रु हुए ढंग।
कों कों कों कों

इसी प्रकार महानन्द में रात कट गई।

समाप्त

मेरी पहेली

लेखक, श्रीयुत प्रियबधु

माँ तू कहती 'बूझ पहेली'
पर तू तो है स्वयं पहेली
दादी कहती 'घर की रानी'
ताई कहती है 'दिवरानी'
चाचा कहते 'भाभी मानी'
चाची कहती हैं 'जेठानी'
मामा कहते 'जोजो मेरी'
पर तू तो है 'अम्मा मेरी'

'मेरी बेटी' नानी कहती
'नँनद मेरी' मामो कहती
'मेरी चाची' कहता रामू
'मेरी भाभी' कहता श्यामू
'साली' हो तुम मौसा की जब
'जीजी' कैसे मौसी को तब
गिरजा की तुम 'सखी सहेली'
कलिका की भी हो 'बहनेली'

पहले बूझो यही पहेलो
तब बूझूँ मैं नई पहेली

डाक्टर मेघनाद साहा

लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर तोषनीवाल, प्रयाग

आज हम देश के एक ऐसे सपूत के जीवन-चरित्र की चर्चा करने जा रहे हैं जिन्होंने वैज्ञानिक संसार में हमारे भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा रक्खा है। डाक्टर मेघनाद साहा की अवस्था केवल ४४ वर्ष की है, लेकिन इतनी कम अवस्था होने पर भी आपने जो वैज्ञानिक संसार में अपने अन्वेषणों-द्वारा तहलका मचा रक्खा है वह प्रशंसनीय है। आपने विज्ञान की बहुत सेवायें की हैं, जिनका कि वैज्ञानिक संसार हमेशा ऋणी रहेगा। आपकी अपूर्व सूझों के उपलक्ष्य में आपको देश तथा विदेशों ने बड़ी बड़ी उपाधियों से सुशोभित किया है पर वे तो ऐसे महान् व्यक्ति की देन के लिए कुछ भी नहीं हैं।

डाक्टर मेघनाद साहा का जन्म सन् १८९३ ई० में ढाका ज़िले के सिओरातालो नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू जगन्नाथ साहा था। बाबू जगन्नाथ साहा सादगी से बहुत प्रेम करते थे, जिसका कि आपके सुपुत्र साहा साहब पर काफ़ी असर पड़ा है। आपके बचपन से ही मालूम होता था कि आप एक बड़े प्रतिभाशाली पुरुष होंगे। आपकी बचपन से ही विद्या की ओर काफ़ी रुचि थी। आप अपनी कक्षा में हमेशा प्रथम रहते थे। आप कई सवालों को तो इतनी जल्दी हल कर लिया करते थे कि आपके साथी तथा अध्यापकगण चकित हो जाते थे और आपकी बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते थे। इसके अलावा आप स्कूल के खेलों में भी ख़ूब हिस्सा लिया करते थे।

डाक्टर साहा का स्कूल तथा कालेज की पढ़ाई में हमेशा प्रथम स्थान रहा। आपका गणित तथा रसायन से तो बहुत प्रेम था और हमेशा इन विषयों में ७५ प्रतिशत से अधिक नम्बर पाया करते थे। कालेज की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् आप कलकत्ते की प्रेसिडेन्सी कालेज में भर्ती होगये। वहाँ आपने एम० एस-सी० की परीक्षा रसायन-शास्त्र में प्रथम श्रेणी में पास की। आपके अध्यापकों में से आचार्य जगदीशचन्द्र वसु तथा सर प्रफुल्लचन्द्र राय के नाम उल्लेखनीय हैं। जब कि ऐसे-ऐसे महान् पुरुष आपके आचार्य रहे हों तब भला उनके शिष्य साहा भी क्यों न उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करेंगे।

विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के बाद आप कलकत्ते की सायंस कालेज में अध्यापक का कार्य करने लगे। इसके साथ ही साथ आप अन्वेषण-कार्य भी करते जाते थे। आपका अध्ययन शुरू से ही इतना उच्च कोटि का रहा कि सन् १९१८ में आपको सायंस के डाक्टर की उपाधि (जो कि वैज्ञानिक जगत् में सबसे बड़ी डिग्री है) से विभूषित किया। इसी वर्ष आपने एक बड़ा ही सारगर्भित मौलिक लेख लिखा जिस पर आपको प्रेमचन्द्र रायचन्द्र

नामक १०,०००) रु० का पुरस्कार मिला तथा विदेशों में अध्ययन करने के लिए एक छात्रवृत्ति भी मिली।

अतः १९२१ में आप इँग्लैंड को रवाना होगये। वहाँ आपने प्रो० फाउलर की प्रसिद्ध प्रयोगशाला में अन्वेषण-कार्य किया। यहाँ की खोज इतनी महत्त्वपूर्ण निकली कि आपको वहीं पर जगह-जगह से व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रण आने लगे। वहाँ का काम समाप्त करके आप जर्मनी तथा अन्य देशों में भ्रमण करते हुए तथा व्याख्यान देते हुए भारत लौट आये। यहाँ कुछ समय तक तो आप बंगाल में ही रहे। बाद में आप प्रयाग-विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के आचार्य की जगह पर नियुक्त किये गये, जिस पद को आप अभी तक सुशोभित कर रहे हैं।

डाक्टर मेघनाद साहा

डाक्टर साहब अपने परिवार में

प्रयाग-विश्वविद्यालय में भी आप अपना अनुसन्धान-कार्य कर रहे हैं। आप अपनी खोजों पर कई ग्रंथ तथा लेख प्रकाशित कर चुके हैं। आपकी देख-रेख में आठ सज्जनों को विज्ञान के डाक्टर की डिग्री मिल चुकी है इसके अलावा आपका शिक्षण-कार्य-क्रम भी बड़े सुचारुरूप से चल रहा है। आपके विद्यार्थी बड़ी-बड़ी परीक्षाओं में हमेशा प्रथम-द्वितीय रहा करते हैं।

डाक्टर साहा साहब की योग्यता को देखकर कई वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको अपना सदस्य बनाया है जिनमें लंदन की रायल सोसायटी भी है। यह हम भारतवासियों के लिए बड़े गर्व की बात है क्योंकि ऐसी उच्च कोटि की संस्थाओं के सदस्य अफसर भारतवासी कम होते हैं। भारत भर में यह सौभाग्य केवल स्वर्गीय रामानुजम्, सर

जगदीशचन्द्र वसु, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, डा० मेघनाद साहा, सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन तथा प्रो० वीरबल साहनी को ही प्राप्त हुआ है। सन् १९२४ की बम्बई की सायंस कांग्रेस के आप ही सभापति बनाये गये थे।

आपके मित्रों में विश्वविख्यात विद्वान् जैसे प्रो० अपैल्टन, प्रो० समरफिल्ड, आचार्य नर्न्स्ट, सर जे० जे० टामसन आदि हैं। लेखक और आपकी लगभग ५ वर्षों से मुलाक़ात है। साहा साहब बड़े ही हँसमुख, सरल स्वभाव तथा मिलनसार हैं। आपके चेहरे से तेज टपकता है। आपकी स्मरण-शक्ति बहुत ही तेज है। आप बातचीत करने में भी बड़े निपुण हैं, सुननेवाले आपके विचारों से शीघ्र ही प्रवाहित हो जाते हैं। आप कई विदेशी भाषाओं के ज्ञाता हैं। आप प्रतिवर्ष अनेक निबंध प्रकाशित कराते रहते हैं। विशेष कर आजकल आपको बेतार की तारबर्क़ी से तो बहुत ही प्रेम होगया है।

डा० मेघनाद साहा भारतवर्ष की अनुपम विभूति हैं। आप विज्ञान की उन्नति के लिए जी तोड़ कर परिश्रम कर रहे हैं जिनमें कई प्रयोगों में तो बहुत महत्त्वपूर्ण खोज हुई है। आशा है आगे भी आप वैज्ञानिक जगत् में भारत का मस्तक सदैव ऊँचा रक्खेंगे।

किस जगह क्या पहनते हैं ?

लेखक, श्रीयुत दामोदर उपाध्याय, वैद्य

प्यारे बालको! 'बाल-सखा' के पिछले किसी अंक में हम यह बतला चुके हैं कि "कहाँ पर क्या खाते हैं"। आज हम यह बतलायेंगे कि किस जगह क्या पहनते हैं? दुनिया में हर जगह का पहनावा अलग अलग है। ठंढे देश के लोग, गर्म ऊनी कपड़े पहनते हैं, गर्म देश के लोग कम कपड़े पहनते हैं। विलायत वग़ैरह ठंढे देशों में बराबर गर्म कपड़ा पहनते हैं। हिन्दुस्तान में चार महीने जाड़ों में ऊनी गर्म कपड़े पहनते हैं और बरसात गर्मी में, सूती, रेशमी वस्त्र पहनते हैं।

अब हिन्दुस्तान में कहाँ क्या पहनते हैं इस बात को देखो। बर्मा के लोग, लुंगी (तहमत) कुरता पहनते हैं, सिर पर रेशमी रूमाल बाँधते हैं। बर्मा के स्त्री पुरुषों का पहनावा मिलता जुलता है। बंगाली लोग, चप्पल, चुनी धोती, छोटा कुरता पहनते हैं। कंधे पर बड़े लोग चद्दर डालते हैं, बंगाल के

लोग सिर पर साफा, पगड़ी, टोपी नहीं लगाते।

बिहार-प्रान्त का पहनावा बंगाल जैसा ही है। काश्मीर के लोग, पाजामा, कुरता, पगड़ी, साफा पहनते हैं। काश्मीरी लोग, ऊनी गर्म कपड़े ज़्यादा पहनते हैं। काश्मीर देश में मुलायम ऊनी कपड़े बहुत अच्छे होते हैं, पंजाब के लोग, पाजामा, कोट, साफा पहनते हैं। पंजाब की स्त्रियाँ भी कुरता, पाजामा पहनती हैं। मद्रासी लोग बहुत गर्म देश के होते हैं इसलिए वे बहुत कम कपड़ों से काम चलाते हैं। तहमत पहन लिया एक चद्दर ओढ़ लिया। मद्रासी स्त्रियाँ धोती से ही, सलूका, जंफर, जाकिट और चोली का काम चला लेती हैं। गुजरात के लोग, धोती ख़ूब नीची, कुरता, टोपी बस, मरहठे लोग मरहठी पगड़ी, कुरता धोती, कभी कभी कोट भी। मरहठी स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह पिछोटा (लाँग) बाँधती हैं। मरहठे और गुजराती रंग बिरंग की रंगीन पगड़ी ज़रूर बाँधते हैं। मारवाड़ी लोग, मारवाड़ी पगड़ी, कच्छ (धोती) कुरता और कभी कभी लंबा कोट भी पहनते हैं। मारवाड़ी स्त्रियाँ अपने लहँगों में बहुत कपड़ा लगा देती हैं, उनका लहँगा बहुत भारी होता है।

युक्तप्रान्त के लोगों को बहुत वस्त्र की ज़रूरत नहीं है। भारतरत्न माननीय पंडित जवाहरलाल जी नेहरू का फ़ैशन ख़ूब जँचता है। चप्पल, धोती, कुरता, सदरी और गाँधी कैप। कम क़ीमत और सुन्दर पहनावा है। युक्तप्रान्त के लोग नेहरू-फ़ैशन को पसंद करने लगे हैं।

बालको! तुम देखते हो कि पहलवान लोग बहुत कम कपड़ा पहनते हैं—जानते हो वे ऐसा क्यों करते हैं? प्रकृति से मिली हुई सूर्य की रोशनी और हवा अपने शरीर में ख़ूब लगने देते हैं, इससे उनका शरीर मज़बूत रहता है। ज़्यादा कपड़ा पहननेवालों का शरीर पीला और कमज़ोर होता है। इसलिए शरीर पर बहुत कपड़ों का बोझ नहीं लादना चाहिए।

बालको! एक बात और याद रखा करो कि जहाँ तक हो, खद्दर (खादी) का कपड़ा पहनो, इसके बाद हिन्दुस्तानी मिल का। स्वदेशी खाओ और स्वदेशी पहनो।
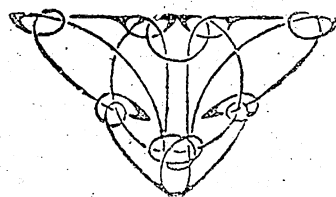
रेल की यात्रा

लेखक, श्री मालीराम अग्रवाल, करसियाङ्ग

रेलगाड़ी में थर्डक्लास कम्पार्टमेंट में जो भीड़ होती है उससे शायद ही कोई व्यक्ति अपरिचित होगा, हाँ तो उस भीड़ में मैं भी एक सीट पर बैठा भीड़ के मारे परेशान हो रहा था। अगर बैठने ही तक की बात होती तो कुछ मुज़ायक़ा ही न था, पर मुझे तो दई-मारी नींद ने क्षुब्ध कर रखा था। मैं कोई युक्ति ढूँढ़ रहा था कि किस युक्ति से मुझे सोने के लिए यह पूरी सीट मिल सकती है। सोचते साचते आख़िर एक युक्ति सूझ ही पड़ी बस फिर क्या था मेरा हृदय नौ नौ ताल उछलने लगा। बात यह थी कि मेरे पास की वर्थ पर सात आठ मारवाड़ी बैठे गप्पाष्टक कर रहे थे। मैं अपने वर्थ को छोड़ कर वहाँ जा बैठा मुझे बैठे देखते ही एक ने सवाल किया—तू कुण हैं।

मैंने कहा बाबू जी मैं तो मोची हूँ, बस मेरा इतना कहना था कि सब हड़बड़ा के उठ गये, यह तो मैं चाहता ही था कि यह सीट ख़ाली हो जाय, कारण और उस कम्पार्टमेंट में मारवाड़ी जैसा धर्म्मभीरु कोई न था वह सब मुझे गालियाँ दे दे कर निकल जाने की धमकी दे रहे थे, किन्तु निकलना तो था दूर की बात मैं कपड़ा बिछा चादर ओढ़ के सो गया, पर यह मारवाड़ी भाई कब सह सकते थे आख़िर एक मारवाड़ी दूसरे स्टेशन जब गाड़ी पहुँची उस वक़्त एक टी० टी० को ले आये। वह टी० टी० मेरी चादर खींच खींच कर उठो उठो कर चिल्लाने लगा। मैंने सोये हुए ही अँगरेज़ी में मारवाड़ियों की धर्म्मभीरुता का परिचय दिया। टी० टी० मुस्करा कर वहाँ से चला गया।

मैं आई० ए० पास था। मेरे परिचय ने टी० टी० को परिस्थिति का ज्ञान करा दिया। टी० टी० को जाते देख मारवाड़ी हैरान था। अस्तु बेचारे क्या करते चुप चुप खड़े मुझे गालियाँ दे रहे थे, इधर मैं हँस रहा था उधर गाड़ी में बैठे हुए और लोग भी हँस रहे थे, इस घटना पर।

मैं था तो पञ्जाबी पर मुझे ऐसी परिस्थिति में मोची बनने का मज़ा आ रहा था। कई बार मुझे इन मारवाड़ियों की धर्म्म-भीरुता पर दया भी आई किन्तु आराम से नींद लेने का लोभ भी न छोड़ सका। क्योंकि दया और स्वार्थ में भी आपस का बैर है, बस स्वार्थ ने मुझे न उठने दिया। आख़िर मुझे कब नींद आई कह नहीं सकता जब उठा तो सवेरा हो गया था। गाड़ी अपनी तीव्र गति से दौड़ी जा रही थी। साथ साथ मानो जंगल के वृक्ष झाड़ भी दौड़ते हों ऐसा दिखाई दे रहा था। मैंने जल

लेकर हाथ मुँह धोया तब तक सन्ताहार के प्लेटफ़ार्म पर गाड़ी आ खड़ी हुई। चायवाले चाय बिस्कुट की आवाज़ लगा रहे थे। मुझे भी दिल्लगी सूझी। मैंने एक मुग़ल को चाय गोस पावरोटी देने को कहा। जैसे ही वह पावरोटी गोस वग़ैरह देने लगा तो सब मारवाड़ी घबड़ा उठे और राम राम कहने लगे।

मुझे तो ख़ाली दिल्लगी करनी थी अतएव मैंने बासी का बहाना कर टाल दिया। तब जाकर उन मारवाड़ी भाइयों को सान्त्वना हुई। फिर भी वह अपनी भाषा में मेरा वर्णन कर मुझे गालियाँ दे रहे थे। पाठको इस वक्त की गाली का स्वाद वही समझ सकता है जो स्वयं भुक्तभोगी हो।

कुछ ही मिनट व्यतीत हुए होंगे मुझे एक मनुष्य अण्डे बेचते हुए दिखाई दिया। मैंने उसे आवाज़ दे अपने पास बुलाया, क्योंकि इस वक्त मुझे इन धर्म्मभीरु मारवाड़ियों की दुर्दशा पर आनन्द आ रहा था। एक तो बेचारे मेरी शैतानी पर स्वयं ही हैरान थे तिस पर मैंने उस अण्डेवाले को कहा—अण्डे क्या भाव हैं तो उसने कहा चौदह आना दरजन। मैंने कहा इन मारवाड़ी भाइयों को एक एक अण्डे दे दो मेरा यों कहना था कि इन सबको जूड़ी आने लगी। आख़िर वह अण्डेवाला दिल्लगी समझ कर वहाँ से चलता बना। मैं आज इन्हें तंग करने की क़सम खा चुका था। न जाने और भी क्या क्या करता, किन्तु समय ने पलटा खाया जिसने सारी ही गुत्थियों को सुलझा दिया। बात यह थी कि मुझे इस वक्त लघुशंका की आवश्यकता हुई पर करता क्या लाचार था। कान में जनेऊ डालने के लिए मुझे मजबूर होना पड़ा। बस मेरे कान में जनेऊ को देखना था कि यह भोले-भाले धर्म्मभीरु मारवाड़ी भाई परिस्थिति को समझ मेरी ओर चकित हो देखने लगे, मैं तो पेशाबख़ाने का दरवाज़ा खोल भीतर चला गया वे लोग आपस में बात करने लगे कि "यो हुननो कोणी है आतो मैं कहछु।"

मुझे इनके भोलेपन पर जो गुदगुदी हो रही थी आख़िर में जब मैं हँसते हुए बाहर निकला तो एक मारवाड़ी ने कहा "थां तो म्हाने आच्छो ठग्यो।" मैंने भी हँसते हुए अपना परिचय दिया कि मैं पञ्जाबी हूँ, वाक़ई नींद और आपकी धर्म्मभीरुता ने मुझे इस झूठ के लिए मजबूर किया। अतएव इस कष्ट के लिए मुझे क्षमा करें।

एक बनजारे और उसके कुत्ते की एक सच्ची कहानी

कुत्ता-बावड़ी

लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी

उज्जैन से देवास को एक पक्की सड़क जाती है। उस पर एक निर्जन स्थान में, उज्जैन से ५-७ मील दूर एक बावड़ी बनी हुई है, उसे कुत्ताबावड़ी (जलाशय) कहते हैं। इस कुत्ता-बावड़ी की कहानी बड़ी रोचक है। हम अपने प्यारे सखाओं के मनोरंजनार्थ उसे यहाँ दे रहे हैं।

पहले हमारे भारत में रेलगाड़ियाँ न थीं। उन दिनों माल एक जगह से दूसरी जगह बैलगाड़ी और बैलों पर ही ले जाया और लाया जाता था। परन्तु सब जगह बैलगाड़ियाँ भी नहीं पहुँच सकती थीं। इसलिए बैल ही अधिकतर काम में लाये जाते थे। इन्हीं पर सौदा रख कर व्यापार किया जाता था। बैलों पर जो सौदा रख कर बेचते थे, वे बनजारे (बनिज+हारे) कहाते थे। आज दिन भी बनजारे नाम की एक क़ौम भारतवर्ष में है परन्तु वे अब रेल, मोटर, गाड़ी, घोड़े अच्छी अच्छी सड़कों के कारण यह काम नहीं करते, परन्तु फिर भी उन्होंने व्यापार नहीं छोड़ा। वे लोग आजकल तवा, कुल्हाड़ी, करछुली, चिमटा आदि लोहाई का सामान बना बनाकर एक गाँव से दूसरे गाँव भटकते फिरते रहते हैं और व्यापार करते हैं। आजकल वे लोग नीची जातियों में से एक माने जाते हैं, परन्तु वास्तव में ये लोग वणिक् जाति के हैं। वे अछूत नहीं हैं। परन्तु रहन-सहन के मारे वे अछूत जैसे जान पड़ते हैं।

हमारी कुत्ताबावड़ी भी, पुरानी घटनाओं में एक का स्मारक है। उन दिनों एक बनजारे के पास पैसा न रहा था परन्तु एक बैल और एक कुत्ता ज़रूर रह गया था। कुत्ते पर उसे असीम प्रेम था और था भी बड़ा प्रामाणिक। अपने मालिक की सेवा वह बड़े तन मन और प्रेम के साथ करता था। बेईमानी तो उसको छू भर नहीं गई थी।

जब बनजारे के पास कुछ न रहा तब वह देवास में एक साहूकार के पास रोज़गार के लिए पैसा उधार लेने गया। साहूकार ने कहा, भाई हम कोई चीज़ चाहते हैं। जिसे रेहन रखकर हम रुपया दें।" बनजारा अब बड़ी उलझन में पड़ गया। उसके पास भला कुछ होता तो वह उधार ही क्यों माँगने आता। उसने फिर भी कुछ सोचा और निश्चित किया कि यदि बैल को दे दूँगा तो व्यापार कैसे करूँगा, उधार लिया धन फिर किस काम में आयगा, इसलिए उसने कुत्ते को रेहन रखने की ठानी और अपने विचार साहूकार को कह सुनाये। साहूकार

पहले तो कुत्ते को रेहन रखने में ज़रा हिचकिचाया, परन्तु कुछ सोच कर उसने उसे रख लिया और बनजारे को रुपया उधार दे दिया।

कुत्ता भी समझ गया कि उसे रेहन रखा जा चुका है। बनजारे के जाते समय वह रोया, बनजारा के भी उसे छोड़ते समय आँसू आगये, कुत्ता अपने मालिक को पहुँचाने तीन चार कोस तक गया, और फिर साहूकार के घर आ गया। उसके यहाँ वह निगरानी का काम करता था।

बात की बात में ग्यारह साल हो गये। कुत्ता भी बूढ़ा हो गया था। साहूकार ने भी बनजारे की आशा छोड़ दी थी। परन्तु बनजारा अपनी ईमानदारी और कुत्ते को न भूला था, और कुत्ता तो बनजारे को भूलने ही क्यों लगा था। दोनों बड़े प्रामाणिक और लगन के पूरे थे।

एक दिन की बात है। रात्रि के समय उस साहूकार के घर में चोर घुसे। उन्होंने साहूकार का सारा धन चुराकर गठरियों में बाँध लिया। कुत्ता यह सब चुपचाप एक कोने में पड़ा देखता रहा। जब चोर गठरियाँ उठाकर एक ओर को चल दिये, तब कुत्ता भी चुपके से उनके पीछे हो लिया। परन्तु अब रात बीत चुकी थी। सवेरा होने ही को था। इसलिए चोरों ने हिस्सा बाँट करने को दूसरी रात को ठानी, और माल की गठरियाँ, लेडियातालाब के पाल के नीचे खोदकर गाड़ दी और अपने अपने घर चले गये। कुत्ता भी साहूकार के यहाँ लौट आया।

प्रातःकाल जब साहूकार की आँख खुली तब उसने अपने को लुटा हुआ पाया। वह बड़ी बुरी तरह से रोने लगा। परन्तु कुत्ता साहूकार के पास केऊ, केऊ, करके दुम हिला हिला कर चिल्ला रहा था और लेडिया-तालाब की ओर अपना मुँह उठाता था। कभी कभी साहूकार को वह अपने मुँह में उसका कुरता दबा कर अपनी ओर खींचता और उसे उसके पीछे चलने को प्रेरित करता था। परन्तु साहूकार को उसकी ये बातें नहीं सुहाती थीं। वह उस पर नाराज़ होता था और मारने भी दौड़ता था। परन्तु फिर भी कुत्ता न मानता था।

आख़िर दो चार बड़े बूढ़ों ने साहूकार को समझाया और कहा, "भाई, कदाचित् यह कुत्ता चोरों के विषय में कुछ जानता हो इस-लिए यह इतनी चेष्टायें कर रहा है। तुम इसके पीछे हो तो लो। देखो यह कहाँ जाता है और क्या करता है। आख़िर बनजारे का होशियार और प्रामाणिक कुत्ता है।

साहूकार को उन लोगों की यह बात पट गई और उसने कुत्ते से कहा—चल, कहाँ चलता है। कुत्ता आगे और साहूकार तथा उसके कुछ साथी कुत्ते के पीछे हो लिये। कुत्ता सीधा उन सबों को लेकर लेडियातालाब के पाल के नीचे ले गया और अपने पंजों से मिट्टी खोदने लगा। मुँह में भर भर कर मिट्टी

भी हटाने लगा। साहूकार उसकी इस कार्यवाही को ताड़ गया। उसने और उसके दूसरे और साथियों ने मिलकर वहाँ खोदा। ज़रा सी देर में गठरियाँ निकल आईं। उन्हें खोलकर देखा तो सारा माल ज्यों का त्यों रखा हुआ पाया। साहूकार बड़ा प्रसन्न हुआ। लोगों ने भी कुत्ते की बड़ी तारीफ़ की। उसकी बुद्धिमत्ता और चातुरीभरी करतूत की चर्चा सारे शहर में फैल गई। शहर के लोग कुत्ते को देखने के लिए आने लगे।

साहूकार ने जब अपना सारा धन, तिनका तिनका सम्हाल लिया तब उस कुत्ते को अपनी गोद में उठा लिया, उसका मुँह चूमा और कहा, "बेटा, आज तुमने अपने मालिक के उधार का पैसा कौड़ी कौड़ी मय सूद के चुका दिया। अब मेरा उसकी ओर कुछ भी लेना नहीं है। मैं तुम्हें भी मुक्त करता हूँ तुम्हारे मालिक से, तुम्हारी सेवकाई के फल-स्वरूप सब कुछ पा चुका। तुम अब अपने मालिक के पास जा सकते हो।"

साहूकार यह थोड़े ही जानता था कि कुत्ता चल देगा। परन्तु कुत्ता तो सचमुच उज्जैन की ओर चल दिया जिधर उसका मालिक गया था। साहूकार ने थोड़ी देर के बाद जब उसे न पाया तब वह उसे इधर उधर ढूँढ़ने लगा। परन्तु वह वहाँ कहाँ था।

कुत्ता चलते चलते उज्जैन के निकट पहुँच गया। उज्जैन उस स्थान से केवल ५-७ मील रह गया था। सहसा वही बनजारा (उसका मालिक) उसे बनिये के रुपये लिये आते मिला। कुत्ता कूद कर उसके पास पहुँचा और उसके पैरों से लिपट गया। चट से पैर चाट लिये और कैंऊ कैंऊ करने लगा। परन्तु बनज़ारा उसे देखकर बड़ा नाराज़ हुआ और बोला, "बेईमान, नमकहराम, मैं तो तेरे ही लिए आ रहा था। आख़िर कुत्ते की जात!" यह कह कर, एक लट्ठ उसके सिर पर ज़ोर से मार दिया। कुत्ता बेचारा, वहीं मर गया। बनजारे ने कहा, "नमकहराम को अपने किये का फल मिल गया? साहूकार को तो मैं किसी न किसी प्रकार माफ़ी माँग कर समझा ही लूँगा।" इसके बाद वह देवास की ओर चल दिया।

बनजारा, साहूकार के पास शाम को पहुँचा। वहाँ जाते ही उसने कहा "लो सेठ जी, अपना रुपया मय ब्याज के। वह कुत्ता ही तो था। बड़ा बेईमान निकला।

सेठ—मैं रुपया नहीं लूँगा, वह कुत्ता कहाँ है?

ब०—कुत्ते से आपको मतलब? आपको रुपया से काम है। कुत्ता मेरा था, वह बेईमान निकल गया तो निकल जाने दो।

सेठ—कुत्ता कहाँ है, कुत्ता?

बनजारा—कह दिया न! वह बेईमान निकल गया, निकल जाने दो।

सेठ—कुत्ता तो बेईमान नहीं था। उसे तो मैंने ही कह दिया था कि तेरे मालिक का देना, मैंने तेरी सेवकाई से पा लिया। अब तू

अपने मालिक के पास जा सकता है। वह तो सचमुच न जाने कहाँ आज सवेरे का चला गया। भाई, मैं तो सवेरे का उसे ढूँढ़ रहा हूँ क्या वह तुम्हें मिला ?

बनजारा—बात समझ में नहीं आई ? ठीक ठीक कहो तो सही ?

साहूकार ने सारा क़िस्सा कहा। बनजारे ने उसे बेईमान जान मार डालने की बात भी सुनाई। साहूकार इस घटना को सुनकर सन्न रह गया। बनजारे के भी होश उड़ गये। जब दोनों का जी ठिकाने हुआ तब ख़ूब रोये। कई दिनों तक रोटियाँ नहीं खाईं। खाईं भी तो कम। अनजाने कैसी घटना घटी थी। जिसका कोई ठिकाना ही न था।

दो चार दिन यों ही बीते। फिर बनजारे ने साहूकार से कहा, "सेठ जी, अपना रुपया ले लो"। साहूकार बोला, "मैं तो अपना रुपया पा चुका हूँ। अब झूठा रुपया कैसे ले लूँ। मैं तो कुत्ते को कह चुका हूँ। अब बेईमानी न करूँगा।

परन्तु बनजारा कब मानने लगा था। वह रुपया ले लेने के लिए उसे विवश करने लगा। बात आगे पंचों तक बढ़ी। उन्होंने फ़ैसला किया कि "जितना रुपया बनजारा लाया है उतना ही रुपया और साहूकार दे और जहाँ पर वह कुत्ता जंगल में मरा है वहाँ पर उसके नाम का जलाशय (बावड़ी) बनवा दी जाय।" साहूकार और बनजारे दोनों ने यह बात मान ली। उसने भी उतना ही रुपया दे दिया। परन्तु बनजारा दो चार ही दिनों के बाद कुत्ते के शोक में मर गया।

साहूकार ने दोनों के रुपये लिये और यह "कुत्ताबावड़ी" बना दी।

हम तो जब कभी उज्जैन से देवास की राह जाते हैं तब ज़रूर उस "कुत्ता-बावड़ी" को देखकर कहते हैं "प्रमाणिकता का पारितोषिक"। सचमुच तीनों जने बड़े प्रामाणिक थे। उसमें भी फिर कुत्ते की बात का तो क्या कहना ?
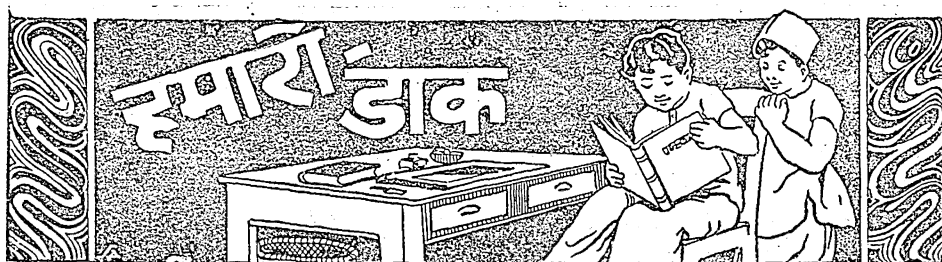
श्रीयुत सम्पादक जी नमस्कार

मेरी छोटी बहिन कुमारी इन्दुमती व्यास बाल-सखा की ग्राहिका होने से मुझे भी कभी कभी पढ़ने को मिल जाता है, सितम्बर के अङ्क में पृष्ठ ३८१ पर कुमारी श्री सावित्री देवी का लेख 'कौन दिन था'? पढ़ा और उसी के सम्बन्ध में आक्टोबर के अङ्क में श्री नगेन्द्रनाथ दे की टिप्पणी पृष्ठ ४२४ पर पढ़ी। फार्मूला तो पूरा सही और उपयोगी है परन्तु लेखिका और लेखक दोनों ने उसकी क्रिया में भूल की है। ठीक ठीक क्रिया आपके पत्र में स्थान पाने के लिए भेजता हूँ।

प्रश्न 'कौन दिन था'? १९२८ की ५ मार्च को

१९२७ का चौथा हिस्सा ४८१

(१९२७ + ४८१) = २४०८ और १९ का पौना १५

(२४०८—१५) = २३९३ अब १९२८ के जनवरी से मार्च ५ तक के दिन (जनवरी ३१ + फ़रवरी २९ + मार्च ५) = ६५

(२३९३ + ६५) = २४५८ जिसमें ७ का भाग देने से शेष रहा। शेष १ उत्तर सोमवार

इसी प्रकार अन्य कोई-सा भी दिन निकाला जा सकता है।

आपका

दुर्लभराम व्यास

श्रीमान् सम्पादक जी,

सादर प्रणाम। कल मेरा प्यारा "बाल-सखा" मुझको सानन्द प्राप्त हुआ। डाक्टर रविप्रतापसिंह श्रीनेत के नाम से जो गढ़ आला, पण सिंह गेला, नामक कहानी छपी है वह मैंने चौथी पोथी नामक पुस्तक में पढ़ी थी। अब मैं आशा करता हूँ कि डाक्टर साहब आइन्दा ऐसी ग़लतियाँ पकड़ने का मौक़ा न देंगे। सम्पादक जी, इस माह के बाल-सखा में दूसरी चोरी पकड़ी है वह यह है कि कुमारी सावित्रीदेवी के नाम से जो पहेली छपी वह तो ("बाल-सखा") में छप चुकी है। मैं इनसे भी आशा करता हूँ कि वे अब ऐसी पहेलियाँ न भेजा करें। सम्पादक जी जब मेरा बाल-सखा आता है तब मेरा परियों खून बढ़ जाता है।

आपका प्यारा

ग्राहक

ब्रह्मप्रकाश कक्षा ६

"बाल-सखा" मिला

प्रथम पृष्ठ पर ही चोरी की कविता? आपके "इंडियन प्रेस" से ही छपी हुई "बाल-साहित्य-माला" भाग २ में सातवें पाठ में "विफल वरदान" नामक श्री "मैथिलीशरण" जी की कविता है। श्री वल्लभदास बिन्नानी ने तो ठीक उसी नाम से छपवाया है। "बाल-सखा" में ऐसा होना "बाल-सखा" की ही बदनामी है।

भवदीय

आनन्दकृष्ण

सम्पादक का पृष्ठ

विद्यावान् होना और बुद्धिमान् होना एक ही बात नहीं है। पढ़े लिखे आदमी भी मूर्खों की तरह काम करते देखे गये हैं। इसके विपरीत बहुत-से ऐसे लोग हैं जिन्हें अक्षर-ज्ञान भी नहीं होता पर वे ऐसे काम कर दिखाते हैं कि उन्हें कोई मूर्ख नहीं कह सकता। इसका एक अच्छा नमूना श्री रामगोपाल विजयवर्गीय ने अपनी चार मूर्ख मित्र नामक कहानी में उपस्थित किया है। यह कहानी इसी अङ्क में ४३४ पृष्ठ पर छपी है।

\+ + + +

यों तो हम सभी मित्रों से घिरे रहते हैं पर सच्चा मित्र कौन है इसकी पहचान मुसीबत पड़ने ही पर होती है। श्री भारतीय एम० ए० ने अपनी कहानी में इस बात को बड़े अच्छे ढङ्ग से समझाया है। यह कहानी ४३७ पृष्ठ पर छपी है। इसी सम्बन्ध में श्री मनोरमादेवी चौधुरी एम० ए० की भी एक कहानी ४३९ पृष्ठ पर छपी है। इन कहानियों के सहारे मित्रों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना जा सकता है। हममें से हर एक को सच्चा मित्र बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जितने ही लोगों के साथ हम सच्चे मित्र का-सा व्यवहार करेंगे उतने ही अधिक हमारे भी सच्चे मित्र हो जायँगे।

\+ + + +

संसार में विज्ञान की आजकल जैसी उन्नति हुई है वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। यह सच है कि हमारा देश इस दिशा में अभी बहुत पिछड़ा है पर यह भी सच है कि हमारे देश में भी कुछ ऐसे वैज्ञानिक उत्पन्न हो गये हैं जो संसार के वैज्ञानिकों से टक्कर ले सकते हैं। सर जगदीश-चन्द्र वसु और सर सी० वी० रमन, हमारे देश के विख्यात वैज्ञानिक हैं। इनके चरित्र हम बाल-सखा में छाप चुके हैं। इस अङ्क में हम एक और संसार-प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक का जीवन-वृत्तान्त छाप रहे हैं। यह वैज्ञानिक कौन है? यह जानने के लिए ४५२ पृष्ठ पर छपा श्री गौरीशंकर तोषनीवाल का लेख पढ़िए।

\+ + + +

ईमानदारी और वफ़ादारी में कभी कभी कुत्ते ऐसा कमाल दिखाते हैं कि मनुष्य को दङ्ग रह जाना पड़ता है। मनुष्य-जाति के इतिहास में अपनी वफ़ादारी के कारण कुत्तों ने भी एक स्थान बना लिया है। महाभारत जैसी प्राचीन पोथियों में भी कुत्तों का ज़िक्र आया है। कहते हैं अंत समय में युधिष्ठिर का साथ एक कुत्ते ने ही दिया है। बाल-सखा के इस अङ्क में ४५८ पृष्ठ पर श्री लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी ने एक कुत्ते की

ऐतिहासिक कहानी लिखी है। बालक उसे अवश्य पढ़ें।

\+ \+ \+ \+

श्री मालीराम अग्रवाल ने मारवाड़ियों की धर्मभीरुता का अपने रेल की यात्रा नामक लेख में बड़ा मज़ाक उड़ाया है। इस प्रकार की धर्म-भीरुता मारवाड़ी ही नहीं हिन्दू-जाति के सभी वर्णों में पाई जाती है। पर जान पड़ता है मालीराम जी ने बात बहुत कुछ बढ़ा कर लिखी है। हमें भी मारवाड़ियों के साथ रेल में लम्बी यात्रा का अवसर मिला है। हमने उन्हें अछूतों से इस प्रकार भागते नहीं देखा जैसा कि श्री मालीराम ने लिखा है।

\+ \+ \+ \+

कलम-सखा

"मुझे तमाम देशों के टिकट संग्रह करने की बड़ी रुचि है तथा अब भी मेरे पास बहुत-से देशों के टिकट हैं। जो पाठक दोस्ती तथा पत्र-व्यवहार मुझसे करना चाहें तो नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।"

पता—नागेन्द्रदत्त मिश्रा
४३। १८ जतनबर
बनारस सिटी

× × ×

श्रीमान् सम्पादक जी—

मैंने कृष्णकुमार कपूर निपुण के बारे में जब से सुना है तब से मैं उनसे दोस्ती करने के लिए लालायित हूँ सो इनका पता मुझे भेज देना और किसी ब्रह्मा के ग्राहक का। और एक पता निज़ाम हैदराबाद के ग्राहक का मेरे पास भेज दीजिएगा। आपकी बड़ी कृपा होगी।

पता—ओमप्रकाश कपूर
c/o झंडूमल एण्ड सन्स, देहरादून

× × ×

मैं भी "टिकट संग्रह" करती हूँ और जो मेरे से चिट्ठी पत्री करना चाहें बहुत ख़ुशी से कर सकते हैं। मेरे पास सब तरह के टिकट जुबिली, राजतिलकोत्सव, विदेशी टिकट और भारत के टिकट हैं और आशा है कि आप सब पाठकों से सूचित करा दें कि मैं टिकट बेचना भी चाहती हूँ। आपकी अत्यन्त कृपा होगी।

—सावित्री मक्कड़, पोस्टबक्स, ६४८, कलकत्ता

× × ×

मुझे टिकट संग्रह तथा चाकलेट मिठाई की तसवीरों का ऐलबम बनाने तथा कारटून इकट्ठे करने का बहुत शौक़ है। मैं बाल-सखा के अन्य पाठकों से अपने इन शौक़ों को पूरा करने के लिए पत्र-दोस्ती करना चाहता हूँ। मेरा पता यह है—

ओमप्रकाश कपूर c/o झंडूमल एन्ड सन्स,
क्लौथमर्चेंट, देहरादून (यू० पी०)

× × ×

मुझे डाक के तथा अन्य भारत के और दूसरे देश के टिकिट संग्रह का बड़ा शौक़ है। इसलिए मैं अपने शौक़ को पूरा करने के लिए "बाल-सखा" के पाठकों तथा अन्य भाइयों के साथ चिट्ठी व्यवहार करना चाहता हूँ।

—सुमेरचन्द्र बोरड़, c/o डालमचन्द्र फूसराज
१३, नारमल लोहिया लेन, कलकत्ता

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

बालसखा

सम्पादक—श्रीनाथसिंह

वर्ष २१] दिसम्बर १९३७—मार्गशीर्ष १९९४ [संख्या १२

शरद पूर्णिमा

शरद की अन्तिम निशा है चन्द्रमा मुसका रहा है,
गगन पर्वत पेड़ भू तक चाँदनी छिटका रहा है।
हे तपस्वी ताड़ना अब सह रहे हो किस लिए तुम,
आज यह जग स्वर्ग के अति पास सा दिखला रहा है॥

अब नहीं है वह अँधेरा वह न वसुधा पर उदासी,
और चेतन हो उठी है अमृत पीकर प्रकृति प्यासी।
व्यर्थ तुम गिरि की गुफ़ा में हो छिपे कर बंद आँखें,
आज सागर सुप्त निज तट को जगाने आ रहा है॥

—श्रीनाथसिंह

सत्य की खोज

लेखक, ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

बहुधा ऐसा देखा जाता है कि अचानक कोई काम होने से, लोग नाना प्रकार की कल्पना करने लगते हैं। और उन कल्पनाओं की कथा कहानियाँ बना कर डराते हैं। परंतु जो लोग अपनी बुद्धि से काम नहीं लेते, लोगों के कहने पर ही भरोसा करते हैं, वे डर जाते हैं। जो डर बालकपन में पैठ जाता है, वह बड़े होने पर भी नहीं निकलता। भूत-पिशाच की कहानियाँ भी इन्हीं में से हैं। जब कभी शंका हो, उसकी असलियत या सचाई की खोज करने से असल हाल प्रकट हो जाता है। सत्य की खोज करते रहने से, असली बात मालूम हो जाती है और फिर भय कभी पास ही नहीं आता। ऐसे अनेक लोग हुए हैं जिन्होंने सत्य की खोज करके लोगों के भ्रम को दूर कर दिया है, इसी प्रकार जब अवसर आवे तब उसकी खोज करना चाहिए। आज हम ऐसे ही लोगों की कुछ बातें सुनाना चाहते हैं।

इँग्लैंड के वेलस प्रान्त में एक ज़मींदार रहता था। वह बड़ा चतुर और बुद्धिमान था। उसे अपना काम काज देखने के लिए जंगलों में बहुधा आना जाना पड़ता था। एक दिन वह जंगल में एक पहाड़ी के पास से घोड़े पर चढ़ा हुआ रात के समय जा रहा था। एक स्थान पर उसे शिकारी कुत्ते के रोने की आवाज़ सुनाई दी। आवाज़ सुन कर पहले तो वह इधर-उधर देखने लगा। परन्तु कहीं भी कुत्ता दिखाई न दिया। उसने भूत-प्रेतों की बहुत-सी बातें सुन रक्खी थीं, इसलिए उस समय उसके मन में नाना प्रकार की शंकायें उत्पन्न हुईं, और वह डरने लगा, परन्तु तुरन्त ही उसने साहसपूर्वक यह निश्चय कर लिया कि आज इसकी असलियत का पता ज़रूर लगाना चाहिए। उसने वहीं पर थोड़ी दूर घूमघाम कर इस बात का पता लगाना चाहा कि वह आवाज़ कहाँ से आती है। परन्तु वहाँ उसे न तो कुत्ता दिखाई दिया और न वह आवाज़ बंद हुई। इतने में करत्यूपक्षियों का एक झुण्ड उसके सामने ही आकर मैदान में उतरा। उन पक्षियों की बोली सुन कर उसकी समझ में आगया कि यही बोली कुत्तों की बोली के समान है। यहाँ पर कुत्ता वग़ैरह कुछ नहीं है। इन्हीं पक्षियों की बोली ने मुझे भ्रम में डाल दिया था। उसने इस बात को विस्तार-पूर्वक अपनी एक पुस्तक में लिखा है। इस पुस्तक को पढ़ कर बहुत-से लोगों का भूत-प्रेत-सम्बन्धी भ्रम दूर होगया।

ऐसी ही एक कहानी एक फ्रेंच मनुष्य की है। वह अपने एक मित्र के साथ बातें करता करता जंगल में चला जा रहा था, कि उसे शिकारी कुत्ते की आवाज़ सुनाई दी। इधर-उधर देखने से उसे न तो शिकारी कुत्ता दिखाई

पड़ा और न कुत्ते के पैर की आवाज़ ही मालूम पड़ी। उसे बड़ा संदेह हुआ और इस आवाज़ का असली भेद जानने के लिए वह प्रयत्न करने लगा। इतने ही में गाँव का एक मनुष्य उसे रास्ते में जाते हुए मिला। उसे खड़ा करके उसने पूछा कि यह किसकी आवाज़ है? उसने एक छोटी-सी तलैया की ओर हाथ उठाकर कहा—महाराज, जो आवाज़ आपको सुनाई देती है वह मेंढक की है। इस देश में, इस मौसम में, मेंढकों की सदा की बोली बदल कर शिकारी कुत्तों के समान भयानक हो जाती है। इस आवाज़ को अनजान आदमी, दूर से सुन कर यही समझता है कि कोई शिकारी कुत्ता बोल रहा है। उस आदमी से यह बात सुनकर उसका भय जाता रहा।

ऐसी ही एक अजीब बात अमेरिका के एक मो. सर ने अपनी एक किताब में लिखी है। वह एक दिन रात के समय अपने कमरे में बैठा लिख रहा था, चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। इतने में एकायक दूर से बादलों के गरज की-सी आवाज़ आई। यह आवाज़ सुनकर पहले तो वह डरा और सोचने लगा कि किसी महा-भयंकर संकट का यह पूर्वरूप तो नहीं है? जो कुछ वह लिख रहा था उसको उसने बंद कर दिया, और बाहर आकर आकाश की ओर देखने लगा। आकाश उस समय बिलकुल निर्मल था। यह दशा देख वह और भी घब-राया। परन्तु इतने ही में उसे याद आगई कि स्काटलेंड के शिकारी कुत्ते जब ख़ूब सो जाते हैं तब वे कभी कभी चौंक कर इसी प्रकार की आवाज़ करते हैं, प्रोफ़ेसर साहब ने स्काटलेंड का एक कुत्ता मँगवाया था और वहीं पास के एक कमरे में सोया हुआ था। अब उन्हें मालूम हुआ कि वह आवाज़ उसी कुत्ते की थी। यह समझ कर उनकी शंका और भय दूर हुआ।

इस प्रकार का अज्ञान संसार में कहीं कम, कहीं ज़्यादा हर जगह मौजूद है। हमारे यहाँ भी इसकी कमी नहीं है। यह अज्ञान केवल गाँवों में हो ऐसा नहीं है। बड़े बड़े शहरों तक में यह पाया जाता है। इस अज्ञान को दूर करने का एक मात्र उपाय यह है कि जहाँ तक हो सके उसकी असलियत की खोज की जावे। असलियत की खोज करने से सब प्रकार के भ्रम अवश्य दूर हो जाते हैं। किसी काम को समझ लेने पर जितना अज्ञान दूर हो जायगा उतना ही अच्छा वह काम दिखाई पड़ने लगेगा।

बहुत-से लोगों ने हाथी को देखा होगा। जब वह नदी के किनारे जाता है तब वह अपना अगला पैर सहार सहार कर रखता है। यदि ज़रा भी पोली ज़मीन मालूम होती है तो वह दलदल के भय से आगे पैर नहीं बढ़ाता। महावत चाहे जितनी अंकुश की ताड़ना दे। बन्दर जब किसी फल या वस्तु को खाना चाहता है तब उसे सूँघ लेता है। जब पशु तक सत्य की खोज के लिए जाँच करते हैं तब मनुष्य होकर हमें क्यों न करना चाहिए?

पोर्चुगाल देश की एक सुन्दर कहानी

भाग्यवान् बालक

लेखक, श्री भारतीय, एम० ए०

गाँव की सबसे बूढ़ी औरत अपने पोते का हाथ पकड़े हुए मेंड़ से चली जा रही थी जिसके दोनों ओर घास उगी थी। ऊषा की धुँधली रोशनी में ओस से भीगी हुई घास मानो उदास और रोती हुई जान पड़ती थी। बुढ़िया की कमर झुक कर कमान हो रही है। लाठी टेकते हुए वह धीरे-धीरे चली जा रही है। क़दम-क़दम पर वह आहें भरती हुई अपने सिसकते हुए पोते को सीख देती जाती है।

"बेटा, अब तू पैसा कमायेगा। देख घमण्ड मन में न आने देना। ईश्वर इससे नाराज़ होता है।"

"हाँ,—दादी अच्छा।"

"देख, मालिक का भला मनाना। पुरखों को न भुला देना।"

"अच्छा—दादी—अच्छा—"

"अगले बार जब मेला लगे—तो अपने लिए एक टोपी ख़रीद लेना—जब पैसे पास हों।"

"अच्छा—दादी—अच्छा।"

बातें होती जाती थीं—दोनों धीरे धीरे चलते जा रहे थे—आगे—आगे—आगे—रास्ते की निर्जनता उस अबोध बच्चे की उदासी को और गहरा रंग दे रही थी। बेचारा मानों दीनता, त्याग और निर्धनता की जीवन के आरंभ ही से दीक्षा ले रहा था। बुढ़िया ढुलती चली जा रही थी। रह-रह कर आँसू पोंछती और आहें भरती जाती थी। बच्चा सिसकता था, काँपता था। सर्दी से बचने भर के तन पर कपड़े न थे।

पौ फट चुका था पर पश्चिमीय आकाश के किसी कोने में दो एक सितारे अभी टिमा-टिमा रहे थे। सामने गाँव की ओर से आती हुई लोमड़ी ने रास्ता काट दिया। दूर पर गाँव के कुत्तों का भूँकना सुनाई पड़ रहा था। मुर्ग़े अपनी ऊँची आवाज़ से बाँग देने लग गये थे। अब सूर्य्य प्राची की पहाड़ी के शिखर से झाँकने लगा था। घास पर पड़ी हुई ओस अब मोती की भाँति चमकने लग गई थी। वृक्षों पर पक्षीगण चहचहाने लग गये थे। उनके गोल के गोल अब एकत्र होकर चुगाव पर जाने की तैयारी कर रहे थे। रात की अँधियाली में सोई हुई नदी अब हँसती हुई जान पड़ती थी। सुनसान, उदासीन, त्यक्त मार्ग अब गुलज़ार हो रहा था। राहियों की संख्या बढ़ने लगी थी। गड़रिये अपनी बकरियाँ और भेड़ें चराने ले चले थे। गाँव की औरतें गाती, मुसकराती, हँसी करती कुएँ पर पानी के लिए जा पहुँची थीं। किसान अपने बैलों को

हाँकता हुआ खेत की ओर चल पड़ा था—बैल बीच में रुकते, अड़ते, मेड़ पर उगी घास पर मुँह मारते चले जा रहे थे। सामने एक सफ़ेद दाढ़ीवाला बूढ़ा, सिर हिलाता चला आ रहा था।

"तुम सब मेले में जा रहे हो क्या ?"

"ना—बाबा, हम—इस लड़के के लिए नौकरी ढूँढ़ने जा रहे हैं।"

"कै बरस का होगा ?"

"कमाने खाने की उमर है बाबा—बीते सावन में इसका नौवाँ पूरा हुआ था"।

दादी और पोता दोनों अपने रास्ते चले जा रहे थे। उनके मार्ग का अंत न था। धूप निकल आई थी। गाँव के किसान रास्ते रास्ते से आने जाने लगे थे। टट्टुओं पर सामान लादे बनिये नारियल गुड़गुड़ाते हुए बिक्री की बात करते मेले की ओर चले जा रहे थे। छोटे मोटे देहाती बिसाती, तेली, तमोली—सौदा लिये मेले की ओर चले जा रहे थे। सामने नाले पर भेड़ियारा अपने जानवरों को पानी पिला रहा था। बुड्ढी और वह बच्चा सामने महन्त को आते देख अदब से एक बगल खड़े हो गये।

"पैर छूती हूँ—बाबा—"

"पैर लगता हूँ—"

महन्त ने अपनी घोड़ी रोक ली, "कहाँ चले—आशीर्वाद—मेले न जाओगी ?"

"हम गरीबों के लिए मेले में क्या है महाराज! इस बच्चे के लिए काम ढूँढ़ने जा रही हूँ।"

"इसे गुरमुख नहीं कराया ?"

"हाँ, महाराज, वह अपना मंत्र जानता है। गरीब क्या राम राम भूल जाता है ?"

"अच्छा—अच्छा"—घोड़ी आगे बढ़ गई।

बुड्ढी अपने पोते का हाथ पकड़े चली जा रही थी—आगे—आगे—आगे—दूर पर नीले आकाश में मिल जानेवाली पेड़ों की घनी नीलिमा दिखाई पड़ रही थी। उनके ऊपर उठी हुई वह मन्दिर की चोटी—धूप में चमक रही थी। गाँव के छप्परों से उठी हुई धूमराशि मण्डलाकार होकर बल खाती हुई ऊपर उठ रही थी। हाँफती हुई वह बुढ़िया और काँपता हुआ वह बालक—दोनों मन्दिर के फाटक पर जा पहुँचे। फाटक के एक कोने बैठा हुआ वह अंधा नित्य की भाँति गाता हुआ पैसे के लिए हाथ फैलाये था। उसकी आँखें अनंत की ओर उठी हुई जाने किसे देख रही थीं।

"ईश्वर तुम्हारा भला करें। ईश्वर तुम्हें बनाये रखे। परमात्मा तुम्हें सुखी बनावे। दूध-पूत से फलो। अंधे को एक पैसा—बाबा अंधे को एक पैसा—गरीब अंधे को एक अधेला"—

वह अंधा अपनी मैली सूखी हथेली फैलाये पैसे की आशा में बैठा था। बुढ़िया उसके निकट पहुँच चुकी थी। बूढ़ा कुछ पाने की आशा में अपनी अभ्यस्त पुकार दोहरा बैठा।

बूढ़ी औरत ने दुख से धीरे से कहा,

"बाबा हम ग़रीब आदमी हैं—बहुत ग़रीब—हम तुम्हें क्या दें। एक पोता है उसी के लिए नौकरी ढूँढने चली हूँ।"

"कितना बड़ा है—अंधे ने उत्सुकता से पूछा।"

"दस अभी पूरे नहीं हुए।"

"कहाँ है"—सूरदास ने अपनी बाहें फैला दीं।

"बेटा—जा—पास जा—" बूढ़ी ने पोते को उसकाया और उसे ढकेल कर सूरदास को पकड़ा दिया। उस अंधे ने अपने रूखे हाथों से बालक को सिर से पाँव तक टटोला। लड़का संकोच, भय और लज्जा से सिकुड़ा जाता था।

"बेटा, तुम मेरा काम कर सकोगे—"

"हाँ—बाबा—"

"मुझे टिकाते फिरोगे—पैसे बड़ी मेहनत से आते हैं।"

"हाँ, बाबा—"

"मेरे साथ-साथ रात-दिन रहोगे?"

"रहेंगे।"

"अन्धे को धोखा तो न दोगे।"

"न बाबा—ईश्वर बचावे।"

"अच्छा तो आज से तुम हमारे साथी हुए—तुम्हीं हमारी आँखें होगे।"

बुढ़िया और बालक दोनों गद्गद हो गये। सूरदास ने बालक को सीने से चिपका लिया। उसकी आँखों में प्रेम उमड़ आया। अपनी झोली बालक को सिपुर्द कर सूरदास ने कहा, "बहन, हम तो अब यहाँ से दूर माँगने खाने जायँगे—यहाँ कुछ मिलता नहीं।"

बूढ़ी ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा, "जैसी इच्छा। बच्चा तुम्हारी रक्षा में है। मैं तो अब निश्चिन्त हुई। इसका भाग्य जगा। ईश्वर की कृपा है और क्या चाहिए। नौ बरस का बालक! अपना कमा खाता है! और क्या चाहिए। परमात्मा की यही क्या कम कृपा है!! उसके भाग्य जागे!!!"

याद रखो सुखी रहोगे

लेखक, श्रीयुत दामोदर उपाध्याय, वैद्य

प्यारे बालको! आज तुम लोगों को कुछ ऐसी अच्छी बातें बतलाई जायँगी, जिनके मानने से तुम लोगों को सुख मिलेगा।

शिर में सदा धुली हुई तिली का तेल लगाने से, माथे में दर्द नहीं होता। बाल काले रहते हैं पकते नहीं, बालों की जड़ मज़बूत होती है जल्दी टूट कर गिरते नहीं, सुख से नींद आती है। शिर में सरसों का तेल नहीं लगाना चाहिए। बाज़ारों में बिकनेवाले ख़ुशबूदार तेल शिर में लगाने से बहुत नुक़सान होता

है। जैसे बाल जल्दी पक जाते और गिर जाते हैं। आखों में रोशनी कम हो जाती है।

कानों में तेल डालने से बहरापन नहीं होता, आँखों में रोशनी बढ़ती है। कानों के बहुत-से रोग भी नहीं होते हैं।

शरीर में और पैर के तलुओं में सरसों का तेल लगाने से, खुजली नहीं होती, चमड़ा मुलायम रहता है। पैर में खरखरापन नहीं होता और पैर की नसें मज़बूत हो जाती हैं।

मीठा तेल (तिली तेल) को दाँतों में मलने से दाँतों की जड़ मज़बूत होती है। आवाज़ साफ़ निकलती है, और दाँतों में कोई रोग जल्दी नहीं होता।

उबटन लगाने से शरीर का भारीपन, और दुर्गन्ध दूर होता है। शरीर का पसीना साफ़ हो जाता है, शरीर में खुजली नहीं होती और शरीर में बल बढ़ता है।

नहाने से शरीर में बल बढ़ता है, उम्र बढ़ती है, थकावट दूर होती है, पसीना धुल जाता है, शरीर पवित्र हो जाता है, शरीर पर चमक (तेज) आजाती है। ज्वररोगी को नहीं नहाना चाहिए। नहाते समय शिर से पानी छोड़ना चाहिए। धूप में से आकर तुरंत नहीं नहाना चाहिए। खुले में न नहाकर बंद जगह में नहाना ठीक है नदी और तालाबों में, केवल शरदऋतु में ही नहावे, क्वार-कातिक को शरदऋतु कहते हैं—इस ऋतु में नदी और सागर का जल अमृत के बराबर माना गया है, शरदऋतु में नदी का जल निर्मल हो जाता है इसलिए पीने में भी अच्छा है।

साफ़ कपड़ा पहनने से भले लोगों में इज्ज़त बढ़ती है। दरिद्रता दूर भागती है, शरीर सुन्दर मालूम पड़ता है, आयु बढ़ती है, इसलिए साफ़ कपड़ा पहनना ठीक है। कपड़ा फटा हो लेकिन साफ़ हो।

पाखाना होकर हाथ-पैर धोने से, कुल्ली करने से, शरीर शुद्ध हो जाता है, बुद्धि बढ़ती है, आयु बढ़ती है, गंदगी दूर होती है।

जूता पहनने से आँखों में रोशनी बढ़ती है, पैर मुलायम बने रहते हैं, बल बढ़ता है, पैर में काँटे और गंदी चीज़ें नहीं लगतीं, मन प्रसन्न रहता है।

छतरी लगाने से चिड़िया वग़ैरह का टट्टी-पेशाब शिर पर नहीं पड़ता, धूप तथा वर्षा से बचाव होता है। छतरी लगाने से शिर की रक्षा होती है।

फूलों का व्यवहार, अच्छे फूलों को सूँघने से, माला पहनने से शरीर पुष्ट होता है, आयु बढ़ती है, लक्ष्मी प्रसन्न रहती है, शरीर भला मालूम होता है, मन ख़ुश रहता है।

एक बात—'बाल-सखा' के पढ़नेवाले, बालक-बालिकाओं के माता-पिता और शुभचिन्तकों का कर्त्तव्य है कि, 'बाल-सखा' में छपनेवाली अच्छी अच्छी बातों का बच्चों को अभ्यास कराते रहें जिससे पढ़ने और लिखनेवाले दोनों की मिहनत काम में आवे।

बंगाली की हिन्दी

लेखक, कुँअर सुरेशसिंह

बंगाली माशा माफ़ करें इस लेख की मंशा हरगिज़ हरगिज़ उन्हें चिढ़ाना नहीं है। यह तो सिर्फ़ अपने हिन्दी के शौक़ीन बच्चों का जी बहलाने के लिए लिख रहा हूँ।

मेरे एक नहीं कई बंगाली मित्र हैं। कुछ यहीं के और कुछ धुर बंगाल के। सबके सब मेरे ऊपर तो बहुत मेहरबान हैं पर शायद हिन्दी पर कोई साहब मेहरबान नहीं हैं। जब कभी हिन्दी बोलते हैं तो ऐसी बोलते हैं कि क्या बताऊँ। तेज़ी में ज़रा भी कमी नहीं बल्कि ज़्यादा और मिठास तो उससे भी ज़्यादा पर जो बोली उनके मुख से निकलती है वह इतनी मज़ेदार होती है कि हँसते हँसते लोट पोट हो जावो। बोलना ही नहीं लिखना भी उसी ढंग का होता है कि पढ़ कर पेट भर हँसने के बाद कहीं मतलब समझने का मौक़ा मिलता है।

हाँ तो उन्हीं बंगाली दोस्तों में से एक दिन एक साहब बोले—"आपकी घोड़ी में कीतना बखत आया?" मैं हैरान कि घोड़ी और बखत का क्या क़िस्सा है। जल्दी में कुछ समझ में नहीं आया—पूछा "कैसी घोड़ी?" मेरी नासमझी पर .खूब हँसने के बाद आपने कहा—"अरे बाबा! घोड़ी नहीं शोमझने शकता? घोड़ी वही जो वाच (Watch घड़ी)। मुझे अपनी भूल मालूम हो गई।

दूसरे दिन आप एक छोटी मोटर उलटने का क़िस्सा बयान करने लगे। बोले—"लोग बोलता है कि बेशी बड़ा मोटर अब दरकार नहीं होता। छोटा मोटर राखने से ठीक होता है लेकिन आप शब शुन रखा होगा—उस दिन एक छोटा मोटर उलट गया—उसका मूड़ी नीचू को हो गया और गोड़ी ऊपर ईस माफ़िक हो गया।"

जब हम लोग उन्हें स्टेशन पर पहुँचाने जाने लगे तो रास्ते में आप एकदम चौंके और बोले "और बाबा गजब हो गया; मोटर रोको हमारा तो छाती छूट गया" हम लोग हँसते हँसते लोट पोट हो गये। बात यह हुई कि जल्दी में आप अपना छाता लाना भूल गये थे।

यह तो हुए बोली के नमूने। अब लिखावट का हाल सुनो। सुनो, क्यों तुम लोग तो ट्रेन पर चढ़ते ही होगे। उसमें लगे हुए नोटिसों को खुद ही पढ़ लो। लिखा रहता है "मुसाफ़िरों को बोला जाता है कि खिड़की के बाहर अपना कोई भी अंग न निकाले" कुछ इसी प्रकार है। "बोला जाता है" .खूब है।

अभी कलकत्ते का एक बीजों का सूचीपत्र पढ़ रहा था। उसमें बबूल की तारीफ़ में लिखा गया है—"गाय बकरी से अपने बागान को बचाने के लिए आपको बबूल का बीज से बन्दोबस्त करना होगा। इस गाछ में बहुत प्रकार के संसारिक और व्यवहार उपयोगी जीनिस तैयारी होता है।" वही हाल है "लिखें ईसा पढ़ें मूसा।"

इसी सूचीपत्र में मटर का गुणगान इस प्रकार है—"इसका गाछ एक हाथ लंबा होता है। छेमी में सात या आठ दाना होता है। यह वेसी करके फलता है यही इसका तारीफ़ी है।"

यह तो हुई लिखने और बोलने की बात अब तुम्हें एक ऐसे बँगाली सज्जन के मुख से श्री जगन्नाथ जी के रथ-यात्रा का वर्णन सुनाता हूँ जो बंगला में उसी प्रकार अँगरेज़ी मिला देते थे जैसे "रशोगुल्ला" में "रश" रहता है।

इनसे जब इनके अँगरेज़ अफ़सर ने पूछा कि "वेल बाबू इस रथ-यात्रा में क्या होता है?"

तो आपने उत्तर दिया "सर[1]! वुडन[2] चर्च वुडन चर्च, आलमाइटी[3] गाड सिट, लाँग लाँग[4] रोप दे[5] टान दे टान, होरी होरी बोल[6]।"

एक बार एक बंगाली सज्जन कहीं ट्रेन पर जा रहे थे उसी सीट पर एक दढ़ियल मुसलमान साहब भी बैठे थे। बात करने का सिलसिला शुरू करने के लिए बंगाली महाशय ने पूछा—"आपकी नाम क्या है?" मुसलमान सज्जन ने अदब से उत्तर दिया—"बन्दे को मखदूम कहते हैं।"

बंगाली माशा नाम सुनते ही खिल पड़े बोले "मुखेदूम* !!! जथा नाम तथा गून"

एक बंगाली माशा एक दूकान पर शहद खरीदने गये। मधु को शहद कहते हैं यह आप जानते न थे। आपने दूकानदार से कहा—तोमारा दोकान में मोधू है?"

दूकानवाला चकराया कि यह मोधू क्या बला है—उसने पूछा "मोधू क्या बाबू जी?" बंगाली बाबू सोचने लगे कि इस जंगली को कैसे समझाऊँ कि मोधू क्या है। अन्त में आपने फ़रमाया "ओरे बाबा तुम मोधू नहीं जानता! मोधू तो शाब कोई जानता है। ईतना ईतना चीड़िया होता है—उसका पीठ पर छोटा छोटा जैसा पाँख होता हाय अउर उसके एक ठो सूई का माफ़क डाँन्क होता हाय। ओई जो मारता हाय तो बाड़ा दारद होता हाय। ओई के घार का राश। ओई हुआ मोधू। शमझा?"

दूकानदार ने शहद की मक्खी और शहद का ऐसा सुन्दर वर्णन शायद ही पहले सुना रहा हो।

बस आज इतना ही फिर अगले महीने में।

---

१. Sir

२. Wooden Church = रथ से मतलब है।

३. All Mighty God Sit = श्री जगन्नाथ जी बैठते हैं।

४. Long Long Rope = लम्बे लम्बे रस्से (रथ में बाँधे जाते हैं।)

५. They टान They टान = वे लोग खींचते हैं।

६. होरी होरी बोल = और हरी हरी चिल्लाते हैं।

* मुख में दुम। जैसा नाम है वैसा ही गुण है।

मरा सिंह जी उठा

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

कैप्टन क्रेग का धंधा बड़ी ही जोखिम का धंधा है। वह समुद्र की तलेटी पर पहुँच कर और बीहड़ वनों में घूम कर हिंसक जीव-जन्तुओं की फिल्में तैयार करता है। तीसरी कहानी में राक्षस चमगादड़ मछली का हाल बताया जा चुका है जिसने उस मनुष्य को मार डाला था जिसने अपनी मृत्यु की फिल्म आप ली थी। और चौथी कहानी में आक्टोपस की खोह में से क्रेग के बाल बाल बच कर निकल आने का वर्णन था। अब इस पाँचवीं कहानी में बताया जायगा कि क्रेग एक सिंह के मुँह से कैसे बचा।

क्रेग नागपुर के जंगलों में शिकार खेल रहा था। शिकारियों ने उसे बताया कि राज-सिंह भारी होने के कारण चिकनी छालवाले वृक्षों पर नहीं चढ़ सकता। इसलिए यदि वृक्ष के ऊपरी भाग की शाखाओं पर मचान बना कर वहाँ शिकारी बैठ जाय तो फिर उसे कोई डर नहीं रहता। क्रेग ने उनकी बात पर विश्वास कर लिया।

वे सिरोञ्चा नाम के एक छोटे से गाँव के पास चलते-फिरते चित्र लेने गये थे। सिरोञ्चा से निकटतम रेलवे स्टेशन १३५ मील था। उन्होंने एक दस फ़ुट ऊँचा मचान खड़ा किया। इसका मुँह वन में एक ख़ाली जगह की तरफ़ था। उसके पड़ोस में किसी जगह एक बड़ा सिंह छिपा हुआ था। नौकरों को आज्ञा दी गई कि उस सिंह को हाँक कर उस खुली जगह में लावें। मचान में उन्होंने अपने कैमरे तैयार करके खड़े कर दिये ताकि ज्यों ही सिंह खुली जगह में पहुँचे उसका चित्र ले लिया जाय। यह मचान वैसे तो सब तरह से काफ़ी सुरक्षित जान पड़ता था, फिर भी सावधानी के तौर पर, वृक्षों की ऊपरी शाखाओं में, कैमरों के दोनों ओर, दो छोटे छोटे चबूतरे और बना लिये गये। उनमें, संकट के समय के लिए, शस्त्र देकर पहरेदार बैठा दिये। यह सावधानी बाद को बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई।

दूर पर खलासियों की चिल्लाहट सुनाई दी। कैप्टन क्रेग समझ गया कि सिंह इधर आ रहा है। वह बंदूक़ लेकर चबूतरे पर चढ़ गया। यह चबूतरा या मचान भूमि से अठारह-बीस फ़ुट ऊपर वृक्ष की डालों के साथ रस्सी की बुनी चारपाई बाँध कर बनाया गया था।

कई मनुष्य बंदूकें लिये, उसी वृक्ष की टहनियों में, क्रेग से कुछ ऊपर दबक कर बैठ गये। दाहिनी ओर कुछ दूर पर उसका मित्र कैम्पबल भी उसी प्रकार मचान में बंदूक़ लिये बैठा था। दोनों के बीच और उनसे तनिक नीचे कैमरे लिये लड़के बैठे थे ताकि

ज्योंही सिंह निकले वे चित्र लेने के लिए कैमरों की मशीनरी को चला दें। सब लोग साँस रोके बैठे थे।

अब खलासियों की चिल्लाहट मंद पड़ गई। अचानक जंगल की झालर से सिंह बाहर निकला और बिजली की रेखा के समान दौड़ कर खाली जगह की झाड़ियों के झुंड में चला गया। अब सभी खलासी पेड़ों पर चढ़ कर बैठ गये। क्रेग ने केम्पबल को इशारा किया कि यदि सिंह कैमरेवालों की ओर झपटे तो उस पर गोली दाग़ देना। परन्तु उसने कुछ और ही समझ लिया। उसने ज्योंही सिंह को झाड़ियों में हिलते-डुलते देखा झट उस पर गोली चला दी।

उस पेड़ पर चढ़ते हुए शेर का चित्र जिस पर कैप्टन क्रेग बैठे थे

गोली सिंह को लगी, परन्तु घाव गहरा नहीं हुआ। उसको क्रोधित करने के लिए इतना ही काफ़ी था। सुनहली बिजली की एक बड़ी गेंद की भाँति क्रुद्ध जन्तु झाड़ी से बाहर निकला और गरजता हुआ सीधा केम्पबल के मचान की ओर दौड़ा। उसे भयानक देखकर क्रेग ने उस पर गोली चलाई। सिंह के पाँव उखड़ गये। परन्तु वह फिर तत्काल उठ खड़ा हुआ। उसने घूम कर उस पेड़ की ओर हल्ला किया जिस पर क्रेग बैठा हुआ था।

क्रेग निश्चिंत था कि सिंह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता। परन्तु वह चकित रह गया जब उसने सिंह को असंभव कार्य को करने की चेष्टा करते और उसमें सफल होते देखा। घायल और क्रुद्ध होने से उसमें कुछ फालतू बल आ गया था। वह झोंके की तरह क्रेग की ओर पेड़ पर चढ़ रहा था।

क्रेग चौंक पड़ा। यद्यपि उसकी बंदूक़ में एक और गोली बाक़ी थी, परन्तु मुश्किल यह हुई कि सिंह ऐसी स्थिति में था जहाँ बिना खड़े हुए ठीक निशाना नहीं लगाया जा सकता था।

वह पाँव के बल लेट गया।

केम्पबल चढ़ते हुए सिंह पर गोली चलाने से डरता था, ताकि कहीं बीच में बैठे हुए कैमरेवाले लड़कों को न लग जाय। उधर क्रेग के ऊपर बैठे हुए मनुष्य भी गोली न चला

सकते थे, क्योंकि उसके क्रेग के लग जाने का डर था।

अब उस हिंसक बिल्ली को रोकना केवल क्रेग का ही काम था। परन्तु उसके लिए रस्सी की चारपाई पर खड़े रहना मुश्किल था। वह अपने ऊपर एक टहनी को पकड़ कर खड़ा होगया। इतने में उस गरजते और झपटते हुए जन्तु का सिर मचान के किनारे से ऊपर आ गया और उसने क्रेग पर एक ज़ोर से पंजा मारा।

एक हाथ से अपने ऊपर की टहनी को पकड़े और दूसरे से बंदूक का निशाना लगाते हुए क्रेग ने गोली चला दी। सिंह भयानक प्रयत्न के साथ एक बार फिर उस पर झपटा। इस बार उसका आधा शरीर मचान पर आ गिरा। क्रेग डरा कि जब तक मैं बंदूक को दुबारा भर पाऊँगा तब तक यह मेरे चिथड़े चिथड़े उड़ा देगा। इसलिए उसने सिंह के मुँह में बंदूक की नली घुसेड़ दी। इससे वह और भी झुँझला उठा और ज़ोर से झपटा। उसके झटपने से मचान की चारपाई टूट गई। सिंह की झपट से बचने के लिए क्रेग पीछे हटा। इससे उसके हाथ से टहनी छूट गई। उसी समय उसके पहरेदार की गोली सनसनाती हुई उसके कान के पास से निकल गई। उसके धमाके से वह काँप गया और लड़खड़ा कर नीचे गिर पड़ा। इसके बाद जब उसे होश आया तो उसने अपने को पृथ्वी पर घास में लेटा पाया। सिंह उसके साथ ही मरा पड़ा था। पहरेदार की गोली उसके सिर में लगी थी।

क्रेग काँपता और घबराया हुआ पाँव के बल खड़ा हो गया। वह उस काले और सुनहले रंग के सुन्दर जन्तु को देख रहा था, जो एक मिनट पहले क्रोध से पागल होकर गरज रहा था। अब वह थरथराती हुई लाश थी। उसके दाँतों और पंजों में मचान के अंश फँसे हुए थे। दोनों में से एक का मरना ज़रूरी था—या तो क्रेग मरता या फिर सिंह ही। परन्तु क्रेग बच गया।

सिंह को जब तक डराया या चिढ़ाया न जाय वह अपने आप बहुत कम आक्रमण करता है। जंगलों में रहनेवाले लोग, जब उन्हें कोई सिंह मिल जाय तो चुपचाप खड़े होकर उसके सामने देखने लगते हैं। यदि वे मुड़ कर भागने लगें तो सिंह उनके पीछे दौड़ कर उनको गिरा देता है और फिर उनका बचना कठिन होता है।

यदि तुम सिंह के सामने खड़े रह कर उसे घूरोगे, तो वह आश्चर्य से तुम्हारे मुँह की ओर ताकेगा, और जब वह देखेगा कि तुम उस पर आक्रमण नहीं कर रहे हो तो वह संभवतः जम्हाई लेकर चलता बनेगा।

इसके विपरीत मनुष्य-भक्षी सिंह कभी तुम्हारे सामने नहीं आयेगा। वह झाड़ियों में छिपा रहेगा। जब तुम उसके पास से होकर निकल जाओगे तो वह पीछे से तुम पर झपटेगा।

एक मर्तबा की बात है। एक शिकारी ने सिंह पर गोली चलाई। गोली के लगते ही वह

धम से गिर पड़ा। मचानों से उतर कर शिकारी उसके गिर्द जमा हो गये। उसको नापने के लिए उन्होंने उसे खींच कर लंबा किया। एक कीला उसके मुँह के पास गाड़ा गया। दूसरा कीला उसकी पूँछ के पास गाड़ने के पहले एक शिकारी ने उसकी पूँछ को ज़ोर से खींचा ताकि वह पूरी तरह लंबा हो जाय। इस पर अचानक सिंह खाँसा, पाँव के बल खड़ा हो गया और बड़ी शान के साथ टहलता हुआ जंगल में चला गया। शिकारी अभी बंदूकों को ठीक ही कर रहे थे कि वह अन्तर्धान हो गया। इससे सिद्ध होता है कि जब तक सिंह की खाल न उतार ली जाय यह कहना कठिन होता है कि वह मरा है या जीता।

देखो बच्चो

देखो बच्चो गाड़ी आती,
ऊपर है इसके मटका।
कितनी सुन्दर है यह लगती;
लखो ज़रा इसका लटका॥
—रतनलाल बाँगड़, डीडवाणा

गैया घूम रही है वन में,
देख हर्ष होता है मन में।
आओ बच्चो ख़ुशी मनावें,
दूध पिएँ और जी बहलावें॥
—रतनलाल बाँगड़, डीडवाणा

परोपकार

लेखक, श्रीयुत करुण

राजकिशोर एक बुद्धिमान् और सद्प्रकृति का बालक था।

एक दिन, हाकी की मैच खेल कर वह सायकिल पर लौट रहा था। अँधेरा हो चला था और उसके पास लैम्प नहीं था इस कारण वह साइकिल खूब तेज़ी से चलाता हुआ जा रहा था। अचानक सायकिल के अगले पहिये में ज़ोर की ठोकर लगी। उसके हाथ से हैन्डिल छुट गया और सायकिल तेज़ी से सड़क के दाहिने किनारे की ओर झुकती हुई कुछ दूर जाकर गिर पड़ी। सामने से एक घोड़ागाड़ी आ रही थी। बड़ी खैरियत हो गई कि कोचवान ने ठीक समय पर राजकिशोर को गिरते हुए देख लिया और बड़ी कोशिश से अपना घोड़ा रोक लिया अन्यथा राजकिशोर अवश्य दब जाता।

सौभाग्य से राजकिशोर को अधिक चोट नहीं आई। उसने शीघ्र खड़े होकर सायकिल उठाई और सड़क के किनारे जाकर खड़ा हो गया। यद्यपि वह एक साहसी बालक था फिर भी वह घबड़ा गया था। कुछ भयभीत भी हो गया था यह सोचकर कि यदि वह घोड़ागाड़ी न रुक पाती तो वह निश्चय ही दब कर मर जाता। कुछ स्वस्थ होने पर उसने भगवान् को धन्यवाद दिया। फिर उसने सोचा कि चलकर देखना चाहिए कि उसकी सायकिल को किस वस्तु की ठोकर लगी थी। जाकर देखा कि बीच सड़क पर एक ईंट पड़ी है।

उसने विचार किया कि जिस प्रकार वह ठोकर खाकर गिर पड़ा था उसी प्रकार दूसरे आने-जानेवाले गिर पड़ेंगे। सौभाग्य से उसे अधिक चोट नहीं आई मगर दूसरों को चोट लग सकती है। संभव है गिरनेवाला किसी तेज़ी से आती हुई मोटर या गाड़ी से कुचल जाय। कितने ही अनर्थ वह ईंट सड़क पर रहने से कर सकती है। उसका कर्तव्य है कि वह ईंट को सड़क पर से हटा दे। और उसने ईंट उठा कर सड़क के किनारे नाली में फेंक दी।

उस दिन से, वह जब कभी सड़क पर ईंट-पत्थर पड़ा हुआ देखता, उठा कर उसे सड़क के किनारे फेंक देता था। इस कार्य को उसने अपने जीवन का एक नियम-सा बना लिया था। और जब कभी वह किसी पत्थर को सड़क पर से हटा देता था, उसे बड़ी खुशी—एक संतोष-सा—होता था कि उसने एक काम दूसरों की भलाई के लिए किया।

*   *   *

समय पाकर राजकिशोर बड़ा हुआ। सम्मान-सहित उसने बी० ए० पास किया। उसकी शादी भी हो गई और एक सुन्दर-सा बच्चा भी।

अब, उसे नौकरी की चिंता हो गई थी मगर बहुत कोशिश करने पर भी उसे किसी दफ़्तर में नौकरी नहीं मिली। उसके पिता मर चुके थे और आमदनी का कोई ज़रिया न होने के कारण वह बड़े कष्ट में और दुखी रहता था।

एक दिन वह चिन्ता में डूबा हुआ नौकरी की तलाश में जा रहा था। रास्ते में उसने पत्थर का एक बड़ा-सा टुकड़ा पड़ा देखा। वह ठहर कर उसे उठाने लगा। पीछे से एक मोटर आ रही थी। हार्न की आवाज़ सुनकर राजकिशोर ने चाहा कि जल्दी से हट जायँ। बायें हाथ में पत्थर था और दाहिने हाथ में साइकिल का हैंडिल। जल्दी में साइ-किल का हैंडिल घूम गया, वह भाग न सका। मोटर तेज़ी से आ रही थी, रोकते-रोकते बिलकुल समीप आ गई। राजकिशोर साइकिल छोड़, फुर्ती से उछल कर एक ओर हट गया। साइकिल पर मोटर का अगला पहिया चढ़ गया।

शीघ्रता से पत्थर को किनारे फेंक राज-किशोर मोटर के पास गया और उस पर बैठे हुए सज्जन से बोला, "क्षमा करिएगा। मेरी असावधानी के कारण आपको असुविधा हुई।"

मोटर पर बैठे हुए सज्जन एक कपड़े की मिल के मैनेजर थे। उन्होंने कहा, "आपको इस तरह सड़क के बीच में रुकना नहीं चाहिए था। आप कर क्या रहे थे?" कुछ झुँझलाते हुए उन्होंने प्रश्न किया।

राजकिशोर ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "सड़क पर पत्थर का एक टुकड़ा पड़ा था उसे उठाकर किनारे फेंकना चाहता था।"

मिल-मैनेजर ने मोटर पीछे हटा कर सड़क के किनारे खड़ी कर दी। राजकिशोर अपनी सायकिल उठाने लगा। वह टूट गई थी। मैनेजर ने राजकिशोर को सड़क पर से सायकिल हटाने में मदद की और खेद प्रकट करते हुए बोले, "क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ," और अपना कार्ड निकाल कर राजकिशोर को दिया। उसकी सड़क पर से पत्थर हटानेवाली बात से प्रभावित हो मैनेजर उससे बहुत प्रसन्न हो गये थे। राजकिशोर की नम्रता तथा शिष्टता ने उन्हें और भी प्रभावित किया। दूसरे दिन उसे अपने घर पर आने के लिए निमंत्रण दे उन्होंने बिदा ली।

दूसरे दिन राजकिशोर उनके मकान पर गया। जब उन्हें राजकिशोर की परिस्थिति मालूम हुई तो उन्होंने उसे अपनी मिल के दफ़्तर में एक दायित्वपूर्ण जगह दी, इस बात का उनके सहकारी मैनेजर ने विरोध किया कि एक नये आदमी— एक अनुभवहीन युवक— को ऐसा ज़िम्मेदारी का काम न देना चाहिए। उत्तर में मैनेजर ने मुस्कराते हुए कहा, "मैंने इस विषय पर अच्छी तरह विचार कर लिया है। जो युवक एक बार ठोकर खाकर, सड़क

पर से ईंट हटाना अपने जीवन का नियम बना लेता है, उस युवक के चरित्र में बल और दृढ़ता है और वह युवक किसी भी ज़िम्मेदारी के काम को अच्छी तरह निभा सकता है। आप फ़िक्र न करें।"

और मैनेजर का कहना ठीक निकला। राजकिशोर ने योग्यतापूर्वक अपना काम निबाहा। अपनी योग्यता और नम्रता के कारण वह धीरे-धीरे तरक्क़ी करता गया और मैनेजर के अवकाश ग्रहण करने (रिटायर होने) पर उनके पद पर नियुक्त हुआ।

सच है, जो दूसरों की भलाई करता है भगवान् उसकी भलाई करता है।

शर्म का रोग

लेखक, श्रीयुत नारायण स्वामी "दीपक"

मानव-जीवन में शर्म का भी बड़ा ज़बर्दस्त हाथ है। "कोई क्या कहेगा"! यह विचार जब किसी के मस्तिष्क में आता है तो उसे शर्म का रोग आ घेरता है।

जो मनुष्य हर वक्त, बाहर या घर में, अकेले रहता या रहना पसन्द करता है वह शरमीला होता है।

दूसरों के समक्ष अशान्त हो जाना, निःसंकोच-पूर्वक बातें नहीं कर सकना या बातें करते समय घबड़ाना तथा मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगना, दूसरों से आँख से आँख मिला कर बातें न कर सकना ही शर्म के प्रमुख लक्षण हैं। शर्मीला मनुष्य किसी से भेंट करने या मिलने से डरता है, घबड़ाता है। किसी जन-समूह के निकट जब वह खड़ा होता है तो फिर उसकी मनोगति का क्या पूछना—उसके सारे होश-हवास उड़ जाते हैं, वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है और भय तथा शर्म से वह काँपने-सा लगता है।

शर्मीले मनुष्य का जीवन नीरस तथा कंटकाकीर्ण हो जाता है। वह संसार में क्षण भर भी सुखानुभव नहीं कर सकता, वह हमेशा अकेला रहने में ही सारा आनन्द अनुभव करता है। जो मनुष्य एक बार शर्म के जाल में फँस जाता है उसे फिर छुटकारा पाना दूभर हो जाता है। छुटकारा पाने में वह हर समय अपने को असमर्थ पाता है। इस प्रकार शर्म हमारे जीवन-पथ में का कंटक है जिसके होने से हम उन्नति-पथ पर कदापि अग्रसर नहीं हो सकते।

हृदय पर शर्म का सबसे ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ता है। हृदय दुर्बल तथा साहसहीन हो जाता है। शर्म कायरता, चिन्ता, दुर्व्यसन, दुर्मति, दुःसाहस, दुःशीलता तथा अवनति का

द्योतक है—समर्थक है। भला सोचिए शर्म की क्या यह कुछ कम भयंकरता है। इसलिए हमें इस भयंकर रोग से निस्तार पाना परमोचित है।

नीचे लिखे उपायों को यदि व्यवहार में लाया जाय तो इस जीवन-नाशक रोग से सरलता से मुक्ति मिल सकती है। सर्वप्रथम हमें अपने आपका ख़याल छोड़ देना चाहिए अर्थात् जब कभी हमें किसी जन-समूह के निकट से गुज़रना पड़े तो हमें अपने आपका ख़याल छोड़ किसी दूसरी वस्तु या किसी दूसरे विषय पर अपना ख़याल लगा देना चाहिए। यदि कोई मनुष्य हमारी ओर देख रहा हो तो हमें यह नहीं समझना चाहिए कि "मैं बेढंगा हूँ या मेरी पोशाक मुझे फबती नहीं है इसलिए वह मनुष्य मेरी ओर देख रहा है"। चाहे कोई कितना ही क्यों न देखता हो लेकिन हमें उसका ज़रा भी ख़याल नहीं करना चाहिए। हमें हर समय अपने मन में यह विचारना चाहिए कि—"मेरी ओर कोई नहीं देख रहा है और न मेरे विषय में कोई कुछ सोच रहा है"। कभी कभी ऐसा होता है कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे कारण-वश हँसता है तो हम समझने लगते हैं कि "वह मेरी ही ओर देखकर हँस रहा है अथवा मेरी हँसी उड़ा रहा है"। बस, इस विचार के आते ही शर्म के मारे हमारा सिर झुक जाता है, हम संकोच-वश इधर-उधर बिना देखे इस प्रकार भागे जाते हैं जिस प्रकार चोर चोरी करके भाग रहा हो। कोई लाख हँसे लेकिन हमें उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हमें यह सोच कर उसका ख़याल दिल से हटा देना चाहिए कि "जो मूर्ख होता है वही दूसरे की ओर देखकर हँसा करता है" इसके अलावे, जहाँ कुछ मित्र बातें करते हों वहाँ जाकर हमें भी निस्संकोच-पूर्वक बातें करनी चाहिए, अपने को भूल कर भी कभी अकेले नहीं होने देना चाहिए और न किसी से बातें करने से मुँह चुराना चाहिए। यदि उपरोक्त उपायों को व्यवहार में लाया जाय तो निस्संदेह शर्म से त्राण मिल सकता है अन्यथा कदापि नहीं।

अतः यदि हमें प्रतिष्ठित तथा लोकप्रिय बनना हो तो हमें अपने में आकर्षणशक्ति का संचार करना चाहिए अर्थात् अपने को साहसी, मिष्टभाषी, मिलनसार, उदार तथा योग्य बनाना चाहिए। ये ही गुण प्रतिष्ठा और लोक-प्रियता प्राप्त करने की कुञ्जियाँ हैं। यदि हममें लेशमात्र भी शर्म रही तो हम उपरोक्त गुण कदापि प्राप्त नहीं कर सकते और न संसार में कोई सुकर्म ही कर सकते हैं, सदा घृणा के पात्र बने रहेंगे।

हमारी चित्रावली
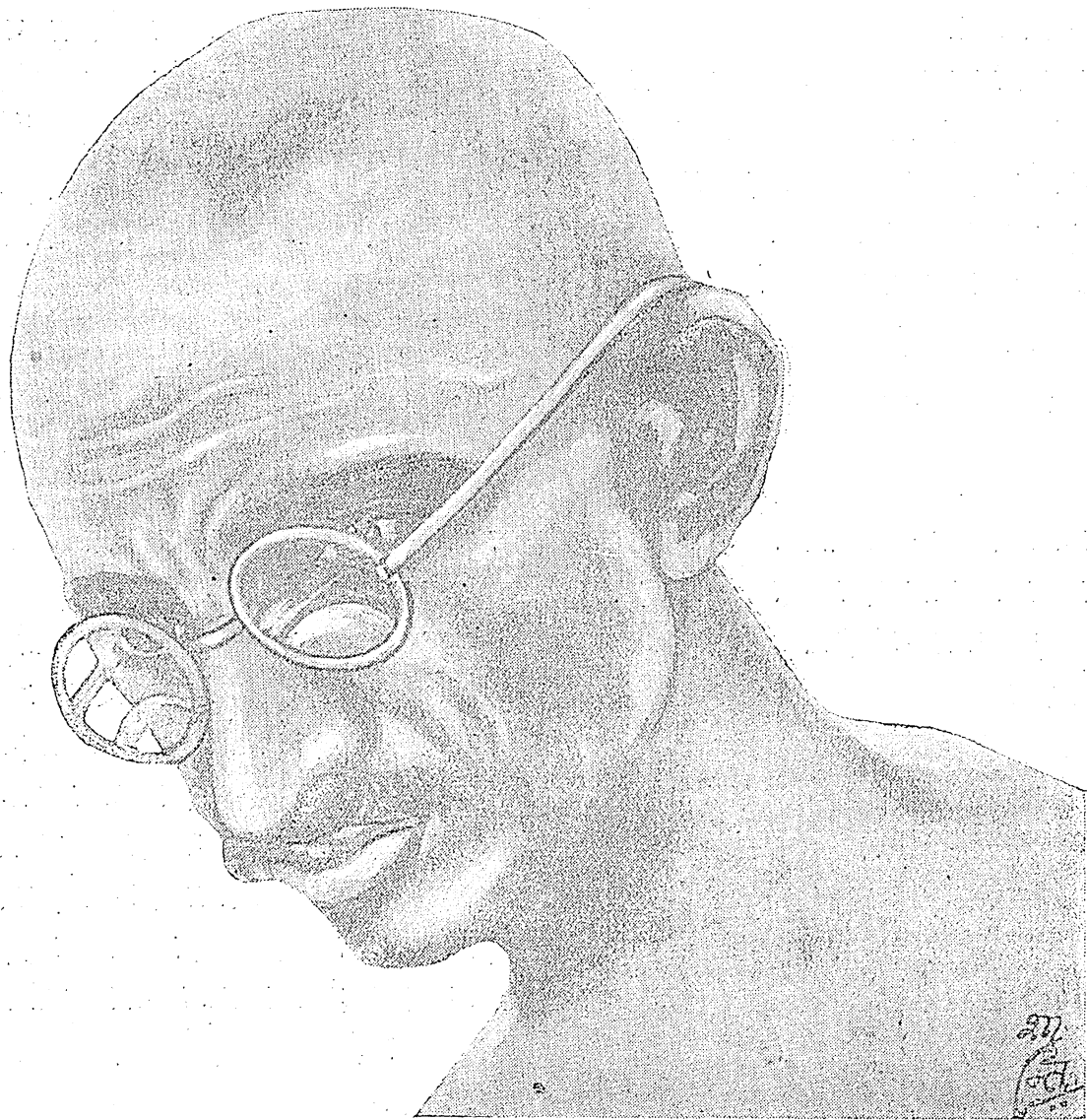
शान्ति भटनागर-द्वारा पेंसिल से बनाया गया महात्मा गांधी का एक चित्र

छुआछूत का भूत भगाओ। बनो किसान गाँव में जाओ।
सत्य अहिंसा चर्खा खादी। का जीवन से मेल मिलाओ॥
तो फिर स्वर्ग बने यह देश। यह है गांधी का संदेश॥

स्वामी कृष्णानन्द अपनी पालतू शेरनी के साथ

खुश हैं पाकर गरम कलेवा। जाएँगे देखने जेनेवा॥

कुमारी अन्नपूर्णा मुकर्जी (आयु १३ वर्ष)
इलाहाबाद से इस वर्ष संगीत की डिप्लोमा-परीक्षा पास की है।

ये फुटबाल खेलने आये।
देखो कितना हैं मुँह बाये॥
पीटर नाम जात चिम्पांज़ी,
'लन्दन जू' इनसे घबराये॥

योद्धा आप बड़े बलवान। जाएँगे लड़ने जापान॥
मदद चीन की करके भारी। ब्याहेंगे बिन नाक की नारी॥

भाई कुत्ते को मत मारो।
सुधर जायगा वह चुमकारो॥
सारे कार्य्य प्रेम से सधते,
कभी न यह सिद्धान्त बिसारो॥

गाड़ी जाती है बंगाल।
नहीं रेल से कम है चाल॥
हा हा हा कहते हैं दादा,
बुरा 'फ़ज़लहक' का है हाल॥

तदबीर से तक़दीर

लेखक, श्रीयुत मुकुटबिहारी द्विवेदी "प्रभाकर"

एक गाँव में एक पुरोहित जी रहा करते थे। जब कभी कोई हाथ-पैर चलानेवाली बात सामने आती तो भाग्य पर टाल कर अलग हो जाते। इस तरह कुछ दिन के बाद सुस्तों के सर्दार और कंगाली के क़िलेदार बन गये। जो कुछ यजमानों के यहाँ से मिल जाता था उसी से दिन काटते; किन्तु पुरोहितानी जी को अपने पति का यह ढंग पसन्द न आता था।

एक दिन बातों ही बातों में पुरोहित और पुरोहितानी जी में बहुत वाद-विवाद हो गया। पुरोहितानी जी चाहती थीं कि ये बाहर निकल कर कुछ कमाई करें, किन्तु पुरोहित जी कहते थे कि जो भाग्य में लिखा होगा अपने आप आ जायगा! अन्त में झगड़ा इस बात पर तय हुआ कि बाहर निकल कर भी पुरोहित जी कुछ अपनी पंडिताई से कमावें।

दूसरे दिन पुरोहित जी अप्रसन्न मन बड़े तड़के ही उठकर घर से कमाई के लिए चल दिये। साथ में पोथी-पञ्चाङ्ग और धोती-लोटा के सिवा और कुछ न था। कुछ दूर आगे जाने पर रास्ते में एक कुआँ मिला। पुरोहित जी सुस्ताने के लिए उस कुएँ पर बैठ गये और अपनी इस परदेश-यात्रा पर मन ही मन बहुत ही दुखी थे। कुछ देर बाद जब चलने की ठानी तो सोचा इस दुःखद यात्रा से तो अच्छा है कि इसी कुएँ में कूद कर मर जावें। यह सोच तुरन्त धड़ाम से उस कुएँ में कूद पड़े।

कुआँ बहुत गहरा था। इसके पानी का लगाव पाताल तक लगा हुआ था, अतः कुछ देर बाद पुरोहित जी पाताल में पहुँच गये। नीचे पहुँच कर पुरोहित जी ने जो कुछ देखा, उससे बड़े विस्मय में पड़ गये। वहाँ एक बहुत सुन्दर बाज़ार लगा हुआ था और सैकड़ों दुकानें खूब सजी हुई थीं। इन्हीं दुकानों के बीच पुरोहित जी ने देखा, कि बराबर बराबर तक़दीर और तदबीर भी पैसे से लेकर सोने-चाँदी और रत्नों की ढेरियाँ लगाये हुए दुकान पर बैठे हैं।

पुरोहित जी कुछ सोच कर तदबीर के पास गये और कुछ पाने की इच्छा प्रकट की। तदबीर ने बिना कुछ सोच-विचार कर एक पत्थर निकाल कर दे दिया और कहा—"इसमें छू जाने से प्रत्येक धातु सोना हो जायगी।" पुरोहित जी प्रसन्न हो उलटे पाँव लौट पड़े और किसी तरह साँस रोक, ज़ोर लगा कर कुएँ के पानी के ऊपर आ गये और पानी भरनेवालों की सहायता से ऊपर निकल आये।

बाहर आकर पुरोहित जी ने बहुत-से पत्थरों को सोना बना कर लोगों को बाँट दिया और ख़ुश हो उस अमूल्य पत्थर को

अपने अँगौछे के छोर में बाँध घर की ओर चले।

पुरोहित जी की प्रसन्नता का कुछ ठिकाना नहीं था। मन में बड़ी उतावली उठ रही थी कि कब घर पहुँचें और अपनी कमाई पुरोहितानी जी को दिखावें। संयोगवश रास्ते में एक तालाब पड़ा। पुरोहित जी पानी पीने के लिए उसके किनारे गये। तालाब बहुत गहरा था उसके साफ़ और निर्मल पानी के अन्दर बहुत पुरानी और मोटी मछलियाँ तैर रही थीं। पुरोहित जी घाट पर बैठ झुक कर पानी पीने लगे। पानी पीते वक्त जल्दी में पुरोहित जी ने कुछ ख्याल न किया और अँगौछे का किनारा पानी में लटक कर डूब गया, जिसे किसी मछली ने कोई खाद्य वस्तु समझ और वह उसे नोच ले गई। किन्तु पुरोहित जी न जान पाये। वे प्रसन्न मन कुछ देर बाद घर पहुँच गये।

पुरोहितानी जी अपने पति को इस प्रकार प्रसन्न मन देख उनसे भी अधिक प्रसन्न हुई। जब पुरोहित जी ने अपनी कमाई की डींग हाकने के लिए अँगौछे की गठरी टटोली तो सन्न हो गये। मन में कुछ देर शोक मना कर चुप हो रहे और मान लिया कि जो कुछ भाग्य में होता है वही मिलता है इस तरह बेकार बैठे बैठे पुरोहित जी को फिर महीनों हो गये। एक दिन आपस में फिर विवाद छिड़ा, पुरोहितानी जी ने कहा—"उद्योग करना चाहिए।" तदबीर करने से एक दिन तक़दीर पलट सकती है। यह सुन पुरोहित जी फिर परदेश यात्रा के लिए निकले। इस बार पुरोहित जी सीधे उसी कुएँ पर गये और बिना कुछ सोच-विचार किये फिर धड़ाम से कुएँ में कूद पड़े।

पाताल में पहुँच कर पुरोहित जी इस बार तदबीर की ओर न जाकर तक़दीर की ओर गये। और कुछ पाने की उससे भी इच्छा प्रकट की।

तक़दीर ने अपने ढेर में से एक पैसा निकाल कर दे दिया तब तो पुरोहित जी को बहुत अनमना होना पड़ा। वे पैसा पाकर फिर मकान की ओर लौट पड़े। कुएँ के ऊपर आकर अपने घर की ओर चले।

उस तालाब के पास पहुँचे तो देखा, कि एक मल्लाह उस तालाब में जाल लगाये हुए बैठा है। मांसाहारी होने के कारण पुरोहित जी के मुँह में पानी भर आया। जब जाल खींचा गया तो पुरोहित जी ने तक़दीर का दिया हुआ पैसा देकर एक मछली ख़रीद ली और थोड़ी देर बाद घर पहुँच गये। पुरोहितानी जी उदास मन घर में बैठी थीं, आज के दिन उनके घर में कुछ खाने को न था। पति-द्वारा मछली पाकर बड़ी प्रसन्न हुईं और तुरन्त उसके बनाने की फ़िक्र में लगीं। उन्होंने चाकू से जैसे ही मछली का पेट चीरा वैसे ही उसमें से वह पत्थर चिथड़े में लिपटा मिल गया, वे तुरन्त उसे पुरोहित जी के पास ले गईं। पुरोहित जी अपना खोया हुआ पत्थर पाकर बड़े प्रसन्न हुए। तुरन्त सैकड़ों

पत्थरों को सोना बना कर धन-सम्पत्ति का ढेर लगा दिया। अब दोनों प्राणी सानन्द दिन बिताने लगे। जब भाग्य के पैसे का चमत्कार पुरोहित जी पुरोहितानी जी को समझाने लगे तो पुरोहितानी जी ने कहा—

"यह तो ठीक है किन्तु तदबीर ही तक़दीर के पास पहुँचाती है। यदि आप तदबीर न करते तो तक़दीर धन कैसे घर पहुँचाती।" यह सुन पुरोहित जी ने मान लिया कि तदबीर से बिगड़ी हुई तक़दीर भी सुधर जाती है।

फ़ैसला

लेखक, श्रीयुत यशोदानन्दन गर्ग

एक सौदागर अकबर बादशाह के पास दो पुतले लाया, जो देखने में बिल्कुल एक-से थे। बादशाह के पूछने पर सौदागर ने उनमें से एक का दाम १००० मोहर और दूसरे का १ मोहर बतलाया, पर यह बात साफ़ साफ़ न बतलाई कि कौन-सा महँगा और कौन सस्ता था।

इस बात को सुनकर बादशाह बड़े सोच में पड़ गया कि वह कौन-सा खरीदे और कौन नहीं, कहीं घटिया खरीद लेता तो उसकी बड़ी बेइज़्ज़ती होती।

बादशाह इसी फेर में पड़ा हुआ था कि बीरबल वहाँ आ पहुँचे।

उन्होंने बाँस की दो सींकें मँगवाईं, उनमें से एक पुतले को लेकर उसे उसके कान में डाला, वह सींक पुतले के पेट में घुस गई। इसी तरह बीरबल ने दूसरे पुतले के कान में भी सींक डाली पर यह उसके मुँह के बाहर निकल आई।

बस, बीरबल को जवाब मिल गया। उन्होंने बादशाह को बतला दिया कि जिस पुतले के सींक पेट में चली गई थी वह तो कोई

श्री यशोदानन्दन गर्ग

बात सुनकर पेट में डाल लेता था इसलिए उसका दाम १००० मोहर था और दूसरा पुतला जिसकी सींक मुँह से निकल आई थी वह कोई बात सुनकर कह डालता था, इसीलिए उसका दाम १ मोहर था।

बादशाह इस फ़ैसले को सुनकर बहुत खुश हुए और सौदागर को खूब इनाम दिया तथा बीरबल की बुद्धि की बहुत ही प्रशंसा की।

नेकबख़्त और कमबख़्त

लेखिका—कुमारी कमलादेवी सेठ

कुछ समय की बात है। एक नगर में एक राजा राज्य करता था। किन्तु उसके कोई सन्तान न थी। भाग्यवश कुछ दिनों बाद उसके यहाँ एक पुत्र पैदा हुआ। राजा साहब के मंत्री की एक कन्या थी। दोनों बच्चे एक ही पाठशाला में पढ़ने भेजे गये। लड़की थी होशियार परन्तु राजकुमार मूर्ख था। मास्टर साहब लड़की को नेकबख़्त और कुमार को कमबख़्त पुकारते थे। बड़े होने पर कुमार ने सोचा कि मैं तो सोने का सिक्का देता हूँ, और नेकबख़्त ताँबे का; फिर भी मास्टर साहब मुझे कमबख़्त क्यों पुकारते हैं। उसे इस बात का बहुत दुःख था—

उसने सारी बात अपने पिता से कही, राजा ने सब कुछ अपनी आँख से देखने के लिए कहा। दूसरे दिन वे स्वयं स्कूल गये, और चुपके से दीवार के पीछे खड़े हो गये। जब उन्होंने सब बातें सुन लीं तो मास्टर साहब से इसका कारण पूछा। मास्टर ने उत्तर दिया, "राजकुमार मूर्ख है। इसलिए मैं इसको कमबख़्त पुकारता हूँ।" राजा ने इस बात की परीक्षा करनी चाही। मास्टर साहब ने पहले राजकुमार को पुकारा और कहा, "यह कटोरा लो, और यह एक पैसा लो। बाज़ार से कटोरा चिकना करा लाओ और पैसा भी वापस लाना।" राजकुमार बनिये की दूकान पर गया, और सरल स्वभाव से कहने लगा, "लाला जी, यह कटोरा चिकना कर दो, परन्तु पैसा मत लेना" बनिया था, कंजूस वह बिगड़ने लगा, "अरे! यह कैसा बेवक़ूफ़ छोकरा है। पैसा तो देना नहीं चाहता और चला है कटोरा चिकना करवाने। चल, दूर हो।" कुमार दूसरी दूकान पर गया। वहाँ भी ऐसा ही उत्तर मिला। अन्त में लड़का हताश होकर वापस आया और कहने लगा, "मास्टर जी बग़ैर पैसे के कटोरा चिकना नहीं हो सकता। तब मास्टर ने राजा साहब के सामने नेकबख़्त को बुलाया और कहा, "बेटी, पैसा का पैसा लौटाल लाना, और कटोरा भी चिकना करा लाना"। लड़की शान्तभाव से कटोरा और पैसा लेकर बनिये की दूकान पर पहुँची और कहा, "लाला जी एक पैसे का घी देना" बनिये ने घी दे दिया। लड़की घी लेकर थोड़ी दूर गई। और फिर वापस आकर बनिये से बोली, "हमारे मास्टर जी ने घी पसन्द नहीं किया इसे फेर लो"। बनिये ने घी ले लिया और पैसा दे दिया। कटोरा चिकना हो ही गया था।

नेकबख़्त मास्टर साहब के पास आकर बोली, "लीजिए यह चिकना कटोरा और यह पैसा।" मास्टर साहब अत्यन्त प्रसन्न हुए और राजा से कहा, "देखिए लड़की कितनी

होशियार है और राजकुमार कितना मूर्ख है।" राजा साहब बहुत लज्जित हुए, किन्तु उन्हें दुःख भी हुआ।

दूसरे दिन राजा साहब की आज्ञानुसार स्कूल में एक दीवार खड़ी कर दी गई। लड़के एक ओर पढ़ने लगे और लड़कियाँ दूसरी ओर। यह इसलिए किया गया कि नेकबख्त राजकुमार से न मिल सके, परन्तु उन दोनों में प्रेम पहले ही से हो गया था। उन्होंने दीवार में सूराख करके पत्र-द्वारा बातचीत करनी शुरू कर दी।

अन्त में राजकुमार ने अपने पिता से कहा, "मैं अपना विवाह नेकबख्त को छोड़ कर और किसी से भी न करूँगा।" राजा ने उसे बहुत कुछ समझाया और मना किया। फिर कहा, "मंत्री हमारा नौकर है। उसकी कन्या से विवाह करना योग्य नहीं। तुम्हें तो किसी राजकुमारी से विवाह करना चाहिए।" लेकिन कुमार ने एक न मानी और विवाह हो गया।

राजकुमार मूर्ख तो था ही, कुछ समय बीतने पर उसका मन बदल गया, उसने नेकबख्त को नहीं बुलाया, बेचारी मायके में पड़ी रहती थी। लड़की बुद्धिमती थी। एक दिन अपने पिता से कुछ मर्दाने कपड़े माँगे। और उन्हें पहन कर तोता मैना को साथ लेकर ससुराल चल दी। वह बिलकुल आदमी-सी जान पड़ती थी। नगर में पहुँचकर एकान्त स्थान में रहने लगी, और धीरे धीरे कुमार से दोस्ती बढ़ाई। राजकुमार को एक दिन कुछ शक हुआ। उसने अपनी माँ से कहा। माँ बोली, "बेटा, मैं आज खाना पकाती हूँ। किसी चीज़ में नमक अधिक डालूँगी, और किसी में बहुत कम। यदि स्त्री होगी तो अवश्य कहेगी कि इसमें नमक अधिक है या कम।" नेकबख्त बड़ी चालाक थी। उसके तोता और मैना सारी बात सुन कर उसे बता देते थे। खाना तैयार हुआ। दोनों मित्र खाने बैठे, कुमार ने कहा, "मित्र देखिए, तरकारियों में नमक अधिक है।"

नेकबख्त ने कहा, "यार, ये तो स्त्रियों के काम हैं। मर्दों को इन बातों से क्या मतलब।" राजकुमार उसे पहचान न सका। अब की बार माता ने उसे दूसरी तरकीब बताई। और कहा, "साथ साथ नहाने जाओ यदि स्त्री होगी तो मालूम पड़ जायगी," कुमार प्रसन्न हुआ और दोनों मित्र गंगा नहाने गये। नेकबख्त चालाक तो थी ही। झटपट पार उतर गई, और स्नान कर लौट आई।

कुमार देखते ही रह गया। अवसर निकल गया और पहचान न पाया। फिर अपनी माँ के पास गया। और बोला—

"भेष ज़नाना है मर्दाना, इस औरत पर हुआ दिवाना, अम्मा, तेरी बहू-सी लगती है।" माँ बोली मूर्ख अभी तक नहीं पहचान पाया। इसे बाग़ में ले जा और बढ़िया बढ़िया गुलाब के फूल दिखा यदि स्त्री होगी तो सूँघ कर जेब में रख लेगी और यदि आदमी होगा सूँघ कर फेंक देगा।" ऐसा ही किया गया। कुमार

ने उत्तम सुगंधित भाँति भाँति के फूल दिखा कर उसका मन ललचाया। किन्तु वह समझ गई, और धोखे में न आई। राजकुमार फिर निराश होकर लौटा।

अब की बार राजकुमार की माँ ने भंग पिलाने का प्रस्ताव रक्खा, और कहा यदि स्त्री होगी तो नशे में शीघ्र बेहोश होकर बकने लगेगी। फिर क्या था। भंग तैयार हुई। नेकबख़्त ने कहा, "थोड़ी भंग का क्या पीना इतनी तो स्त्रियाँ तक पी जाती हैं। एक एक लोटा भंग पीने की ठहरी, कुमार मूर्ख था ही, बातों में आ गया। और लोटे भर भंग चढ़ा गया। परन्तु नेकबख़्त बर्तन को मुँह से लगाये रही, और मौक़ा पाकर भंग बालू में उलट दी। कुमार नशे में बेहोश होकर गिर पड़ा। नेकबख़्त ने एक परचे में यह लिखकर टाँग दिया कि "वह मनुष्य ही क्या जो अपनी स्त्री को भी न पहचान सके।" यह सब करके नेकबख़्त अपने पिता के घर चली गई।

जब राजकुमार को होश आया। उसने यह सब बातें पढ़ीं और अत्यन्त लज्जित हुआ, और क्रोध के आवेष में नेकबख़्त का सिर काटने चल दिया। नेकबख़्त समझती थी कि यही होगा, इसलिए उसने पहले ही से अपनी शक्ल की एक आटे की औरत बनाकर बिस्तरे पर बैठा दी थी। उस नक़ली औरत के अन्दर शहद भरा था। नेकबख़्त ने जब सुना पति महाशय उसका सिर काटने के लिए आये हैं तो वह उसी चारपाई के नीचे बैठ रही।

कमबख़्त साहब पधारे और अपनी सास से पूछ कर ऊपर उसी कमरे में पहुँचे। तो देखा कि नेकबख़्त सुन्दर वस्त्रालंकारों से सजी हुई बैठी है। कुमार ने कहा, "क्यों री नेकबख़्त, तूने मेरे साथ इतना छल किया?" उत्तर मिला "हाँ।" राजकुमार ने इसी प्रकार कई प्रश्न किये। सबका उत्तर केवल "हाँ" मिला। कुमार का शरीर क्रोध से जलने लगा, आँख से आग बरसने लगी। झट तलवार खींच कर आटे की स्त्री का सिर काट डाला। शहद की एक छींट कुमार के होंठ पर गिर पड़ी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मन में कहा। "अरे! इस स्त्री का रक्त इतना मीठा! मैंने यह क्या किया? ऐसी अपूर्व और सुन्दर स्त्री पाकर मैंने खो दी अब मेरा जीवन व्यर्थ है। इसी तलवार से मैं भी अपना काम तमाम किये देता हूँ।" इतना कह कर ज्यों ही उसने तलवार का वार गर्दन पर करना चाहा। नेकबख़्त ने पलँग के नीचे से निकल कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "जनाब, आप तो पुरुष हैं। यह क्या मूर्खता कर रहे हैं। इधर देखिए मैं तो जीवित हूँ"। राजकुमार को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने मूर्खता पर लज्जित होकर स्त्री से क्षमा माँगी। अन्त में अपनी प्यारी बीबी के साथ जीवन सुख से व्यतीत करने लगे।

सेवा के पथ पर

लेखक, श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, मगनवाड़ी वर्धा

प्यारे बालको ! आज मैं आप लोगों के सामने जिनकी बहुत ही संक्षेप में रामकहानी लिखने जा रहा हूँ, उनकी कहानी आप लोग अब तक कहीं पर नहीं पढ़े होंगे। आप लोगों में से शायद ही कोई इन्हें कहीं पर देखे होंगे। यदि आपमें से कोई इन्हें आज के समय में देखे होंगे या भविष्य में देखेंगे तो एक मामूली इन्सान की भाँति अपने दिल में कल्पना किये होंगे या आगे करेंगे। लेकिन मैं आप लोगों को शुरू शुरू में ही बतला देना चाहता हूँ कि ये मामूली इन्सान नहीं हैं। ये तो भारत को आज़ादी के रूप में जल्दी से जल्दी देखनेवालों में से भारत के एक भाग्यविधाता हैं। लेकिन ये ठोस काम करनेवालों में से सर्वप्रथम पुजारी हैं। थोड़ा काम और नाम अधिक चाहनेवालों में से नहीं हैं। ये तो नाम के इच्छुक नहीं हैं। काम के इच्छुक अत्यधिक हैं। इसी लिए इनका नाम आप लोगों को नहीं मालूम हुआ है। अब आप लोगों को इनका नाम तथा शिक्षा इत्यादि जानने की बड़ी उत्सुकता होगी।

इनका पूरा नाम श्री जे० सी० कुमारप्पा जी है लेकिन अधिक लोग इन्हें कुमारप्पा के नाम से कह कर पुकारते हैं। इनका जन्म ४ जनवरी सन् १८९२ में मद्रास सूबे के एक धन-सम्पन्न क्रिश्चियन (ईसाई) परिवार में हुआ था, और इन्होंने सन् १९१३ ईसवी में साइन्स लेकर एफ० ए० मद्रास से पास किया था। तत्पश्चात् सन् १९१३ से लेकर सन् १९१८ तक लंदन में संयुक्त ख़ज़ानचीगोरी की ट्रेनिंग ली और फिर लंदन ही में सन् १९१८ से १९१९ तक संयुक्त ख़ज़ानची के पद पर काम करते रहे।

सन् १९१९ ईसवी से लेकर सन् १९२६ तक बम्बई में संयुक्त ख़ज़ानची और देवार के व्यापारिक कालेज में प्रोफ़ेसरी का काम करते रहे। अब यहाँ पर एक सवाल पैदा होता है। इस सवाल को जानने के लिए आप लोग बहुत उत्कण्ठित हो उठेंगे। वह सवाल यह कि जब ये प्रोफ़ेसर रहे होंगे तब इन्हें प्रतिमास क्या वेतन मिलता रहा होगा? लगभग इनको डेढ़ हज़ार रुपया मासिक वेतन मिलता जाता था। लेकिन इस काम को भी कुछ साल करने के बाद छोड़ कर ये सन् १९२६ में संयुक्त-राज्य अमेरिका में चले गये और वहाँ पर सन् १९२८ ईसवी में बिजिनिस एडमिनिष्ट्रेशन में एम० ए० बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। जब ये अमेरिका में पढ़ रहे थे तो वहीं से अपनी प्रतिभा की रोशनी हिन्दुस्तान को देने लगे। वह यों कि वहाँ के मासिक पत्रों में हिन्दुस्तान के आय और ख़र्च पर सुन्दर विवेचनात्मक लेख ये लिखने लगे। कुछ समय के बाद आपने इसी विषय पर अमेरिका में एक किताब भी लिखी। जब आपकी पुस्तक प्रेस से छप कर विशाल मैदान में आई और विशाल मैदान में रहनेवालों को जब पढ़ने को मिली तब लोग दंग रह गये और आपकी क़लम की मैदान के बसनेवाले बड़ी प्रशंसा करने लगे। महात्मा जी भी इस पुस्तक से ख़ुश हुए। और किताब को शुरू से लेकर अंत तक पढ़ डाली और पढ़ कर इस

नतीजे पर पहुँचे कि हाँ अमेरिका में भी एक ऐसा हिन्दुस्तानी है जो कि भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति पर अच्छा ज्ञान रखता है। उस वक्त ये अमेरिका से बम्बई में आ गये थे। महात्मा जी ने पत्र लिख कर इन्हें साबरमती-आश्रम में मिलने के लिए बुलवाया। उस वक्त की एक घटना श्री कुमारप्पा जी ने आज से कुछ दिन पहले कालेज के कुछ विद्यार्थियों से कही थी वह मुझे अब तक याद बनी हुई है। उस बातचीत को मैं नीचे की सतरों में लिख रहा हूँ।

"जब मैं साबरमती-आश्रम में महात्मा जी से मिलने के लिए आया, जिस जगह पर महात्मा जी रहते थे मैं वहाँ पर गया। क्या देखता हूँ कि एक आदमी पास में ज़मीन पर बैठ कर चर्खा चला रहा है। उसके शरीर पर जो कपड़े थे वह भी एक मामूली आदमी के कपड़े की तरह थे। मैंने समझा कि यह कोई मज़दूर आदमी है। गांधी जी के पास ज़मीन पर बैठ कर चर्खा कात रहा है। जब उसने अँगरेज़ी में मुझसे कुछ सवाल पूछे, तब यह हाल देखकर मैं तो हैरत में पड़ गया। मन में नाना तरह के विचार उठने लगे कि एक गुलाम देश के मज़दूर को अँगरेज़ी भाषा जो इतनी महँगी है कैसे आयेगी। पीछे पता चला कि ये तो महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल जी हैं। मैं इस सरलता को देखकर बहुत ही आश्चर्य में पड़ गया, फिर महात्मा जी से मिलने के बाद मैं बम्बई वापस चला गया।"

प्यारे बालको! ऊपर लिखी हुई सरलता की छाप को देखकर श्री कुमारप्पा जी हिन्दुस्तान की सेवा की ओर अपना पैर बढ़ाते हैं। इनका
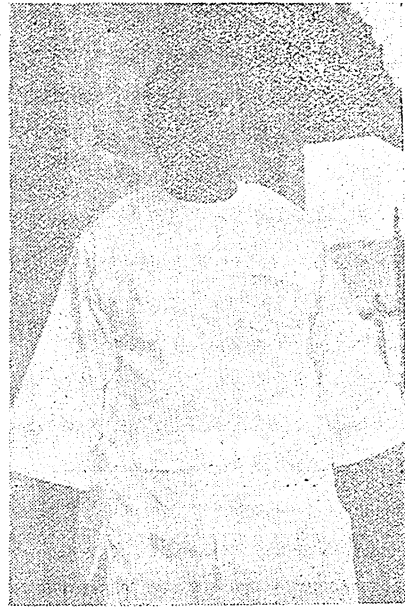
श्री जे० सी० कुमारप्पा

जीवन बहुत ही ऐश और आराम का जीवन था। आप लोग स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि जो लंदन और अमेरिका में कई साल रह कर ऊँचे दर्जे की शिक्षा हासिल करता है उसका जीवन कैसा होगा? तिस पर भी एक बहुत धनसम्पन्न क्रिश्चियन परिवार का बालक।

श्रद्धेय काका साहब कालेलकर जी ने ग्राम-सेवक-विद्यालय के जलसे के अवसर पर एक दिन कहा था कि "आज जिस कुमारप्पा जी को हम लोग एक मामूली से मज़दूर की भाँति अपने बीच में देख रहे हैं पहले ये इस रूप में नहीं थे। जिस वक्त ये महात्मा जी से मिलने के लिए साबरमती-आश्रम में आये थे उस वक्त ये कुर्सी और मेज़ के ऊपर बैठने के आदी थे। ज़मीन पर बिलकुल ही नहीं बैठ पाते थे। इनके लिए गांधी जी ने बाहर से बैठने के लिए कुर्सी मँगवाई
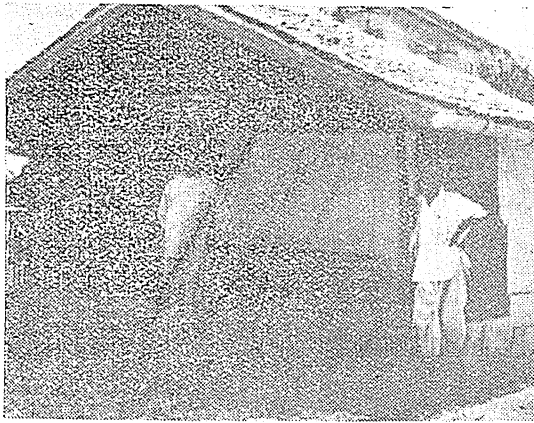
श्री कुमारप्पा जी अपनी कुटी के द्वार पर

तब कहीं जाकर अच्छी तरह से महात्मा जी से बातचीत कर सके। इससे आप लोग जान सकते हैं कि कुमारप्पा जी कितने आराम से अपना जीवन बिता रहे थे।" यह बातचीत हम तो आगे की पंक्तियों में बताना चाहते थे किन्तु हमें शुरू में ही बतला देना ठीक लगा।

अब यहीं से श्रीकुमारप्पा जी की जीवनी सार्वजनिक क्षेत्र में आती है। अब ये महात्मा जी से बातचीत करके बम्बई वापस चले गये। कुछ दिनों के बाद शायद इन्होंने महात्मा जी को ख़त लिख कर अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं भी हिन्दुस्तान की ख़िदमत करना चाहता हूँ। महात्मा जी को सोने में सुगन्ध मिल गया वे तो ऐसे आदमियों को सेवा के पथ की ओर लाना ही चाहते थे। तत्काल ही इन्हें साबरमती-आश्रम में बुला लिया और ये सन् १९२९ से गुजरात-विद्यापीठ (अहमदाबाद) में अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर की जगह पर मुक़र्रर कर दिये गये। कुछ दिनों के पश्चात् आपके ज़िम्मे मातर तालुक़ा के गाँवों की आर्थिक जाँच करने का काम सौंप दिया गया। सन् १९२९ के शुरू दिसम्बर में आप विद्यापीठ के कुछ छात्रों को लेकर मातर तालुक़ा के गाँवों की जाँच करने के लिए चले गये। आपको गुजराती भाषा का बिलकुल ज्ञान न था इसलिए आपके साथ त्र्यंबकलाल जी भट्ट और झवेर भाजी पटेल दुभाषिया बन कर गये और आपको मातर तालुक़ा के किसानों की आर्थिक जाँच करने में बहुत मदद पहुँचाई। इन्हीं दिनों के बीच में सत्याग्रह की लड़ाई छिड़ गई और महात्मा जी भी जेल में चले गये थे। सन् १९२९ से १९३० तक यंगइण्डिया पत्र का भार श्री महात्मा जी ने आपके सिर पर लाद दिया क्योंकि इस पत्र का सम्पादन स्वयं महात्मा जी कर रहे थे। आप जैसे योग्य आदमी को छोड़ कर एक सुप्रसिद्ध पत्र का सम्पादन का भार किसके सिर पर देते।

श्री कुमारप्पा जी अपने भोजन के बर्तन साफ़ कर रहे हैं

मातर तालुक़ा की आर्थिक जाँच करते वक़्त में ही आपके सभी सहयोगी जेल चले गये। इसी में आपको अपना अधूरा काम छोड़ कर अहमदाबाद चला जाना पड़ा। आप केवल चार

महीने तक पैदल चल कर मातर तालुका के गाँवों की आर्थिक जाँच कर पाये थे कि सन् १९३० की ११ वीं मार्च को विवश होकर अपने आर्थिक जाँच के काम को छोड़ देना पड़ा।

जब आप अहमदाबाद में रह कर यंगइण्डिया का सम्पादन कर रहे थे इसी बीच में सरकार की ओर से आपके ऊपर नोटिस दिया गया और थोड़े ही दिन के बाद आपको जेल की हवा खानी पड़ी। जब गान्धी और इर्विन सुलह हो गई तब आपको सरकार ने जेल से छोड़ दिया।

जेल से छूटने के बाद सन् १९३० में भारत और इँगलेंड के आर्थिक मामलों की जाँच करने की एक कमेटी बनी। आप ने उस कमेटी के उप-समिति के मेम्बर बनकर उसमें भी लगभग १ साल तक काम किया।

शायद आप लोगों को यह याद होगा कि हमारे हिन्दुस्तान में सन् १९३२ से लेकर सन् ३३ तक भारत की ग़रीबी को दूर करने के लिए बहुत ही भीषण सत्याग्रह की लड़ाई हुई थी। और इस भीषण सत्याग्रह की लड़ाई में भारत के लाखों नर-नारी तथा सुकोमल बालक भी जेल गये थे। बहुतेरे हिन्दुस्तानी बन्दूक और लाठी की गहरी चोट से मौत के घाट उतारे गये थे। तब आप लोग मुझसे प्रश्न करेंगे कि क्या कुमारप्पा जी भी इस भीषण सत्याग्रह की लड़ाई में जेल गये थे? तो मेरा जवाब क्या होगा आप लोग जानते ही हैं कि जी हाँ। श्री जे० सी० कुमारप्पा जी भी सन् १९३२ से लेकर सन् ३३ तक हमारी सरकार के मेहमान बने रहे।

जेल से छूटते ही महात्मा जी ने आपको बिहार सूबे की सेवा करने के लिए ख़त लिख कर बम्बई से पटना में बुला लिया और सेवा के पथ पर तैनात कर दिया। आप लोग जानते ही होंगे कि बिहार सूबे में कितना बड़ा भीषण भूकम्प आया हुआ था। जहाँ कि करोड़ों रुपये की हानि हुई और करोड़ों रुपयों से भी बढ़ कर हमारे असंख्य नर-नारी तथा नन्हें नन्हें सुकोमल बालक और पशुओं की अपार क्षति हुई। ऐसा कौन-सा भारतवासी होगा कि जिसे बिहार-भूकम्प और उस निर्दयी पन्द्रहवीं जनवरी सन् १९३४ के दिन की याद न हो? हमारे त्याग के सजीव मूर्ति श्री जे० सी० कुमारप्पा जो बिहार के कम्पायमान जनता की लगातार एक साल तक सेवा करते रहे। जब वहाँ की जनता के दिल में कुछ जान पैदा हुई तब आप वर्धा की ओर बढ़े। (लेकिन अभी तक भी बिहार-भूकम्प के सिलसिले का काम करते रहते हैं)। इस भूकम्प से भी आपके दिल पर सेवा करने का भाव दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा।

यहाँ पर एक सवाल उठ खड़ा होता है कि श्री कुमारप्पा जी बिहार छोड़ कर वर्धा क्या करने के लिए पहुँच गये? यह भी मैं आप लोगों को बतला देना चाहता हूँ।

महात्मा जी जब बिहार में हरिजनों के लिए भीख माँग रहे थे और उनके दुखों को दूर कराने के लिए सतत प्रयत्न कर रहे थे उस वक्त उनके दिमाग़ में यह ख़याल पैदा हुआ कि हिन्दुस्तान के गाँवों की तकलीफ़ों को दूर करने के लिए अखिल भारत-ग्राम-उद्योग संघ नामक एक संस्था का निर्माण होना चाहिए। और उस

संस्था का काम यह होना चाहिए कि वह दिन रात नई नई चीज़ों की खोज करके भारत के सात लाख गाँवों में रहनेवाले किसानों और मज़दूरों का भला करे। इसी दरमियान में बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस का सालाना जलसा हुआ और उस जलसे में महात्मा जी ने हिन्दुस्तान में एक अलग से ग्राम-उद्योग-संघ-नाम की संस्था का निर्माण होने के लिए एक प्रस्ताव रक्खा। बिहार-प्रान्त के रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी की अध्यक्षता में महात्मा जी का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया।

यहाँ पर एक उलझन फिर सामने आती है। महात्मा जी को ग्राम-उद्योग-संघ नाम की संस्था का निर्माण करने की क्यों ज़रूरत पड़ती है। मैं तो इस उलझन को आप ही लोगों से हल कराने की कोशिश करूँगा।

आप लोगों में से अधिकांश लोग गाँवों के बसनेवाले होंगे। और वहाँ की दयनीय दशा आप लोगों से छिपी नहीं होगी? और न तो यह सवाल छिपने ही वाला है। यदि आप में से चन्द लोग शहर के बाशिन्दे होंगे तो उन्हें भी शहर की तंग गलियों में और सड़कों पर झुंड के झुंड फटे पुराने कपड़े और मैले कुचैले रहते हुए नित्य प्रतिदिन हर घड़ी देखते होंगे? इनमें भी अधिकतर नंगधड़ंग ही लोग रहते हैं। क्या आप लोग बतला सकते हैं ये कौन लोग हैं? ये हमारे सारी दुनिया के अन्नदाता किसान मजदूर हैं।

.........हमारी सारी दुनिया को किसान और मज़दूर ही खाने के लिए अन्न और पहनने के लिए कपड़ा देते हैं लेकिन वहाँ वे स्वयं ही भूख की ज्वालाओं से और सर्दी व धूप से मरे जाते हैं। आप लोग जो ये बड़े बड़े शहरों में चमकीले भड़कीले सामान देखते हैं, और जो बड़े बड़े न्यायालय, मदर्से और कालेज, तथा विशालकाय विश्वविद्यालय इत्यादि के रूप में बने हुए देखते हैं ये सब किसके बनाये हुए हैं, क्या आप लोग हमें बतला सकते हैं? थोड़ा-सा आगे और बढ़िए हमारे जो बड़े बड़े डाक्टर, वकील, और बैरिस्टर तथा धनिक लोग जीवित हैं वे किस चिड़िया का हर वक्त अपने दिल में ख़याल करते रहते हैं। हमारे किसान मज़दूर भाइयों के ही न?

जब हमारे किसान और मज़दूर भाई शरीर को झुलस देनेवाली तेज़ धूप में मैदान में काम करते रहते हैं, उस वक्त चन्द पूँजीपति लोग बिजली के पंखों तले आराम की ठंढी नींद में लोटते-पोटते रहते हैं न? लेकिन जब हमारे किसान मज़दूर भाई जेठ और आषाढ़ तथा माघ-पूस की कड़ाके की सर्दी में कुछ अन्न और धन अपनी गाढ़ी कमाई से अपने घर में लाते हैं तब ये बिजली के पंखों के नीचे रहनेवाले नाना तरह के फर्द जुर्म लगा कर उनका अन्न और धन छीन ले जाते हैं। उनका सारा परिवार आह आह की मधुर आवाज़ में दिन-रात चिल्लाया करता है। इनकी आवाज़ें कलेजे तक बेधनेवाली होती हैं। लेकिन इतनी बड़ी जमात की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता है।

इन्हीं ग़रीब और बेबस किसान व मज़दूरों के दुखों को दूर करने के लिए, महात्मा जी की

प्रेरणा से एक धनसम्पन्न कुटुम्ब से निकल कर अपने जीवन को हम लोगों के लिए और पूँजी-पतियों के लिए भी फ़कीरी का बाना धर आदर्श के तुल्य अपने हाथों में सन् १९३५ ई० के मध्य में ग्राम-उद्योग-संघ का भार अपने सिर पर ले लेते हैं। और अवैतनिक काम करते हैं।

ग्राम-उद्योग-संघ में कुमारप्पा जी अपना जीवन कैसे व्यतीत करते हैं, यह भी आप लोगों को बहुत ही संक्षेप में बतला देता हूँ। अपने शरीर पर केवल एक आधे बाँहों की मामूली सी खादी का एक कुर्त्ता और एक सफ़ेद साधारण खादी का निकर तथा पैर में आठ नौ आने की चप्पल पहन कर सदैव जाड़े, बरसात में ग्राम-उद्योग का काम करते रहते हैं। जहाँ पर विश्राम करते हैं वहाँ का भी हाल सुन लीजिए। बाँसों की ठठ-रियों की बनी हुई एक छोटी-सी कोठरी में अपना जीवन बिताते हैं। इस कोठरी से तो अच्छा बड़े आदमियों के मोटर रखने के कमरे होते हैं। लेकिन नहीं साधारण जीवन बिताने का यह नमूना है। स्वयं ही अपने हाथों से अपने खाने के बर्तनों को साफ़ कर लिया करते हैं। आपके खाने का सामान भी बहुत ही मामूली होता है। खाने का खर्च महीने भर में सात, आठ रुपये के लगभग आता है। स्वयं ही चक्की चला कर कुछ महीने तक गेहूँ का आटा भी ग्राम-सेवक-विद्यालय को देते रहे। ज़रूरत पड़ जाने पर जाते ही काम करने लगते हैं। कुमारप्पा जी को चक्की चलाते हुए बहुत लोग देखकर अचम्भा भी करते थे और हँसते भी थे, हँसते क्यों थे? इसलिए कि जब आप बम्बई में नौकरी कर रहे थे तब आपके पास बढ़िया कार और कई नौकर भी थे। अब वह स्वयं ही चक्की चलाते हैं।

आप बहुत ही स्वतंत्र विचार के आदमी हैं। धार्मिकता के पुरानी रूढ़ियों के माननेवाले भी नहीं हैं। प्रचण्ड विद्वत्ता की झलक आपकी मूर्ति के देखते ही मालूम होने लगती है। आपको अर्थशास्त्र की विद्या से बड़ा ही घनिष्ठ प्रेम है। जब से आप देशसेवा के पथ के पुजारी बने हैं तभी से आप अपने जीवन को धीरे-धीरे सरलता की कसौटी पर कसने लगे। अब तो आप सरलता की ऊँची चोटी पर ही पहुँच गये हैं। यही सेवा के पथिक की सरल कहानी है।

बाल-महाभारत

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

अर्जुन के विवाह

कोई नहीं राजा बाक़ी था जिस पर करते वार
तीरथ करने अरजुन निकले पहुँचे हरिद्वार।
रोज़ सवेरे हवन वो करते गंगा नित्य नहाते,
साधू संतों की संगत में सारा काल बिताते।
गंगातट से अरजुन चलकर पहुँचे सागर-तीर
सुन्दर वह स्थान बहुत था स्वच्छ वहाँ का नीर।
नाम मणिपुर उस नगरी का राजा वाहन चित्र*
छोटे-मोटे राज पड़ौसी वे सब उसके मित्र।
अरजुन का बस नाम सुना था कोई नहीं पहचाने
दूर बहुत नगरी से अपने कोई उन्हें क्या जाने।
राजकुमारी एक दिन निकली संग सहेली साथी
चित्रांगदा यों ही फिरती थी साथ न घोड़े हाथी।
नई जवानी सुन्दर मुखड़ा अरजुन को बहु भाया
सीधे राजा के पास जाकर अपना नाम बताया।
"तीरथ करने घर से निकला यहाँ विचरते आया
राजकुमारी के मुखड़े ने क़ैदी मुझे बनाया॥
अब मेरी इच्छा ऐसी है राजकुमारी ब्याहूँ
जाऊँ लौट नगर जब अपने उत्सव वहाँ मनाऊँ।"
राजा ने यह मान लिया पर ऐसी उनकी शर्त
पहला लड़का वे ले लेंगे उनका ऐसा बर्त।
राजकुमारी ब्याही जावे वर हैं अरजुन वीर
धूम हुई नगरी में ऐसी मँडवा सागर-तीर।
तीन बरस अरजुन ने काटे चित्राङ्गदा के साथ
उसकी सम्मति लेकर चले लिये कमंडल हाथ।

नगर-नगर वन वन फिर फिर कर चले द्वारका ओर
दूर बहुत उनको जाना था मारग बहुत कठोर।
उनके मित्र बड़े थे यादव कृष्णचन्द्र बलराम
स्वागत करने दूर गये वो छोड़ स्वयं आराम।
अरजुन श्रेष्ठ विचरते आये पुरवासी सुन पावें
घर-घर उतसव करें नगर में मंगल मोद मचावें।
यादव-वंशी अधिक भोज रचावें उतसव भारी
हाथी घोड़े बहुत जमा हों लाखों नर औ नारी॥
तरह तरह के रचें तमाशे खेल बहुत दिखलावें
राजा रानी उतसव देखें अरजुन संग में आवें।
उस उतसव में आई विचरती यादव-राजकुमारी
नाम सुभद्रा उसका कहते वासुदेव की प्यारी।
अरजुन की जो नज़र पड़ी दिल उसने लिया चुराय
कैसे पावें राजकुमारी क्या क्या करें उपाय।
अरजुन की यह देख दशा मुसकाय जसोदानंदन
पास खड़े जो देख रहे थे घिसे बदन में चंदन।
"बहन हमारी यह आई है इस पर जो दिल आया
"मित्र पुराने मेरे होकर मुझे न क्यों बतलाया।
"कहूँ पिता से जाके इस दम अरजुन इस पर रीझे
"राज़ी हो गर बहन हमारी ब्याह उन्हीं से दीजे।
"मित्र मगर यह तो बतलाओ अगर न उसने माना
"पूछे बाद नहीं जब कर दें होवे उसे न पाना।
"क्षत्री को अधिकार है ये भी बल से हरे वो कन्या
"इच्छा उसकी नहीं भी होवे पीछे वरे वो कन्या।"
अरजुन ने जब ऐसी शिक्षा कृष्णचन्द्र से पाई
उस उतसव से भगनी उनकी हर लेनी ठहराई।

---

* चित्रवाहन।

चले गये जिस ओर विचरती यादव-राजकुमारी,
पकड़ लिया रथ पर बैठाया क्या करती बेचारी।
घोड़े जायँ हवा-से उनके राजकुमारी संग
नर नारी यह देख के घटना खड़े रहे सब दंग।
यादव-वंशी राजा सैनिक खबर जब इसकी पावें
कैसा यह अन्याय हुआ है ऐसा उधम मचावें।
कोई कहे तलवार ले आना कोई मँगावे तीर
दौड़ो पकड़ो अरजुन को, लो रस्सी लो जनज़ीर।
बाँधो मारो काटो पीटो यही मचाते गुल
कैसा यह मेहमान हमारा हमें दिया है जुल।
क्रोध करें राजा एकत्रित कृष्ण रहे चुपचाप
ऐसा देख उन्हीं से पूछें उनके भाई बाप।
"क्या सम्मत है कृष्ण तुम्हारी अरजुन का यह काम
"करे कलङ्कित यादव-वंशी करे उन्हें बदनाम।
"कहाँ गया है चक्र तुम्हारा किधर गये हैं शस्त्र
"कहें तुम्हें डरपोक यह सारे सैनिक जो एकत्र।"
"सुनो पिता जी सुनो वीरवर सुनो हमारे भाई
"अरजुन ने बेशक ये की है हमसे बड़ी ढिठाई।
"क्षत्री तुम भी क्षत्री अरजुन क्षत्री राजकुमारी
"हानी कौन तुम्हारी इसमें वो गर उनकी प्यारी।
"अरजुन से बढ़कर वर कोई मुझे बता दो आप
"लाऊँ बाँध अभी अरजुन को सच कहता हूँ बाप।
"मेरी सम्मत यही है प्यारो अरजुन लेव बुला
"राजी-खुशी सुभद्रा ब्याहो उनको लेव मिला।"
दूत पठाये राजा ने बहु आदर-सहित बुलाया
बुला पुरोहित पुत्री का फिर उनसे ब्याह कराया।
बिदा हुए यादव से अरजुन हाथी घोड़े साथ
कृष्ण गये नगरो को उनकी दिये हाथ में हाथ।

बदमाशों की हजामत

लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर हटा (दमोह), सी० पी०

कंचन नाई किसी रईस के बाल बना रहा था।

इतने में एक आदमी आकर कहने लगा कि महाराज आज-कल चरवाहे बड़ी बदमाशी करने लगे हैं। क्या किया जाय? रईस ने पूछा—कैसी बदमाशी?

वह आदमी बोला—"मेरी गाय को जो बरेही चराता है वह हार ही में उसका दूध लगा कर पी जाता है।" रईस ने कहा अच्छा कल उसे मेरे पास लाना। मैं बदमाशों की एकदम हजामत कर देता हूँ। नाई चुपचाप बाल बनाता रहा। जब बाल बन चुके, तब रईस ने उसे चार पैसे दिये। नाई ने पैसे लौटा कर कहा—"माफ़ कीजिए, एक पेशेवाले आपस में अपने पेशे की मज़दूरी नहीं लेते।" रईस ने पूछा—"इसका क्या अर्थ है?" नाई ने उत्तर दिया—"मैं रईसों की हजामत बनाता हूँ और आप बदमाशों की। अब आप ही कहिए, मैं कैसे मज़दूरी लूँ?"

रईस ने गुस्से में आकर कहा—"तू बड़ा बदमाश मालूम होता है।" नाई ने हाथ जोड़ कर कहा—"मैं बदमाश होता तो आप अभी तक मेरी हजामत ही न कर देते।" यह सुनकर रईस हँसने लगे।

एक शिक्षाप्रद कहानी

ज्योतिषी और लड़की

लेखिका, कुमारी शकुन्तला

एक राजा था। वह बहुत दयालु था। वह अपने मन्त्रियों और ऊँचे पदाधिकारियों के बिना राज्य नहीं कर सकता था इसलिए वह उनके हाथों का खिलौना बना हुआ था। राजा को ज्योतिषियों पर बहुत विश्वास था।

उसकी एक लड़की थी। वह पूरे चाँद की सुन्दरता को मात करती थी। जो उसे देखता, उसकी सुन्दरता की ओर आकर्षित हो जाता। एक ज्योतिषी उससे प्रेम करने लगा। उसने उसे भी अपने साथ प्रेम करने के लिए कहा परन्तु सब व्यर्थ। उसकी कोशिशें चिकने पत्थर पर पानी की तरह बह गईं। अन्त में वह उससे क्रुद्ध हो गया और उसका नाश करने के उपाय सोचने लगा।

एक दिन उसने राजा से कहा, "आपसे एक बात कहूँ। यदि आप नाराज़ न हों तब कह सकता हूँ।"

राजा ने कहा, "क्रुद्ध होने की इसमें क्या बात है। तुम्हें तो भविष्यत् की बात बतानी है, चाहे अच्छी हो या बुरी। बताओ।"

ज्योतिषी बोला, "यदि आपने राजकुमारी को घर में रखा तो आपकी हालत एक भिक्षुक तक पहुँच जायगी। इसलिए इसको सोने के सन्दूक में बन्द करके नदी में डाल दीजिए।" पहले तो राजा को विश्वास न पड़ा। परन्तु धीरे धीरे समय के फेर से उसका मन बदल गया और उसने लड़की को निकाल देने की सोची। उस ज्योतिषी की सलाह के अनुसार उसे सोने के सन्दूक में बन्द करके नदी में गिरा दिया गया।

इस घटना से पहले, राजकुमारी की शादी एक राजकुमार से हो चुकी थी। सौभाग्य से वह सन्दूक उसी राजकुमार के हाथ लगा। उसके माता-पिता उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ज्यों ही सन्दूक खोला एक भोली भाली सुन्दर कुमारी निकल आई। बड़ी शान व शौकत से उसकी शादी राजकुमार से हो गई। उसने उनको सारी कहानी सुनाई। वे उसे अपनी पुत्र-वधू जान कर और प्रसन्न हुए।

उन्होंने सन्दूक में एक भूखा रीछ डाल कर उसे फिर नदी में बहा दिया। ज्योतिषी नदी के किनारे उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। एक ज़ोर की लहर आई और सन्दूक उसके पास पहुँच गया। वह सन्दूक लेकर घर आया। खोलते ही वह हैरान रह गया। जब उसने राजकुमारी के स्थान पर एक भूखा रीछ पाया। रीछ ने उसे गले से पकड़ कर वहीं खत्म कर डाला।

हालाँ कि यह एक कहानी है परन्तु इसकी शिक्षा बहुत अच्छी है। "जो दूसरों के लिए खाई खोदता है वह पहले आप उसमें गिरता है।"

संगीतप्रेमी राजा

लेखिका, श्री कमलमनि हालदार

राजा विक्रमादित्य और उनके सिंहासन की सैकड़ों कहानियाँ हैं। उस समय संगीत का बड़ा मान था। दरबार में दूर दूर से सैकड़ों गुणी लोग आया करते और राजा उनका सम्मान किया करता। राजा को मुरली बजाने का बड़ा शौक था। उनकी मधुर मुरली की ध्वनि सुनकर सभी जीव-जन्तु मुग्ध हो जाते थे। प्रजा सुख से थी, रात को राजा भेष बदल कर अपनी आँखों से प्रजा का हाल जानने के लिए नगर में घूमता। उनके न्याय की धूम दूर दूर देशों में थी। नगरवासी राजा-रानी को अपनी जान से अधिक प्रिय समझते थे।

वसन्त-ऋतु थी, प्रातःकाल का सुहावना समय था। रानी अपनी दो दासियों को लेकर वाटिका में टहल रही थी। रात में अधिक गर्मी पड़ने के कारण रानी को नींद नहीं आई थी। वह एक अशोक के पेड़ के नीचे एक शिला पर लेट गई। थोड़ी ही देर में उनको नींद आ गई। दोनों दासियाँ भी वहीं बैठकर रानी को देखती रहीं। सहसा कोई भयंकर स्वप्न देखकर रानी चिल्ला उठी। उनकी यह दशा देखकर दासियाँ घबड़ा उठीं। फिर साहस करके एक दासी ने रानी को जगाया। जागने पर भी रानी पागलों की भाँति रोती चिल्लाती रही। दासियाँ किसी प्रकार रानी को महल में लिवा ले गईं। दूसरी दासियाँ भी सहायता के लिए आ गईं, परन्तु रानी की दशा वैसी ही रही। अन्त में यह समाचार राजा के कानों तक पहुँचा और वह सब काम छोड़ कर दौड़े हुए महल में आये। रानी ने भयभीत नेत्रों से राजा की ओर देखा, फिर शान्त होकर कहना आरम्भ किया, "वे लोग ज़बरदस्ती मुझे अपने साथ ले जाना चाहते थे। मैंने बार बार जाने से इनकार किया। मैंने पूछा, मुझे कहाँ ले जाओगे। उन्होंने कहा अपनी रानी के महल में। उसी समय उनकी रानी भी वहाँ आ गई। वह एक सुन्दर सफ़ेद घोड़े पर सवार थी। वह मुझे अपने सुन्दर महल में जो हीरे और जवाहिरातों की चमक से जगमगा रहा था लिवा ले गई और मुझसे कहा, अब सदैव के लिए तुम्हें यहाँ निवास करना पड़ेगा। तुम आज जाकर अपने प्रिय रिश्तेदारों से विदा होकर कल उसी पेड़ के तले आ जाना। मेरे शूरवीर तुमको रथ में बिठा कर यहाँ ले आयेंगे, उनको धोखा देने की चेष्टा न करना"। राजा ने इसको स्वप्न-मात्र समझा और कहा कि भय की कोई बात नहीं है। कल हम सब उस अशोक के पेड़ के पास चलेंगे, देखें वहाँ आने का कौन साहस करता है। दूसरे दिन राजा अपने बहुत-से वीर सिपाहियों को लेकर रानी की

सहायता के लिए वाटिका में पहुँचा। रानी के नेत्रों में उस समय भी भय के चिह्न दिखाई पड़ रहे थे। सहसा रानी चिल्ला उठी—"बचाओ! मुझे बचाओ वे आ रहे हैं।" राजा ने अपने चारों ओर देखा, किन्तु कहीं कुछ न दिखाई पड़ा और सबके देखते ही देखते रानी वहाँ से गायब हो गई। राजा के बहादुर सिपाही मुँह खोले आकाश की ओर देखते ही रह गये। राजा के ऊपर दुःख का भारी पहाड़ टूट पड़ा। वे पागलों की भाँति इधर-उधर रानी को खोजने लगे। किन्तु वह कहीं भी न दिखलाई पड़ी।

राजा ने अपने सब अमूल्य आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों को उतार कर फेंक दिया और गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। फिर अपने मंत्री और दरबारियों को एकत्रित करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया। "स्वामिभक्त मंत्री और दरबारियो तुम लोगों ने सदैव मुझे राज्य के काम में सहायता पहुँचाई है। आज मैं इस बड़े राज्य को मंत्री के हाथों में सौंपकर कुछ समय के लिए देशाटन करने जा रहा हूँ। रानी के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।" मंत्री ने राजा को रोकने की अनेक चेष्टायें कीं परन्तु राजा केवल अपनी मुरली लेकर वहाँ से चल पड़े।

संसार में दुःख-सुख का चक्र इसी भाँति चलता रहता है वही राजा जो सदा सुख से महल में रहता था वही अब राह का भिखारी होकर अनेकों कष्टों को झेलता हुआ वन में मारा मारा फिरने लगा। शरीर सूख कर काँटा हो गया। फिर भी राजा अपने चित्त को प्रसन्न करने की चेष्टा करता था।

एक दिन चन्द्रमा के धुँधले प्रकाश में राजा ने एक निर्जन वन में बहुत ही सुन्दर स्त्रियों को श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत घोड़ों पर सवार उसी ओर आते देखा। राजा को उनके देखने की उत्सुकता बढ़ी और वह एक पेड़ की ओट में हो गया। थोड़ी देर में वे स्त्रियाँ उसी ओर से आगे बढ़ने लगीं। राजा ने अपनी प्रिय रानी को भी एक श्वेत घोड़े पर उनके साथ देखा। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अन्त में पेड़ की आड़ से निकल कर उसने रानी को पुकारा। रानी ने चौंक कर पीछे की ओर देखा किन्तु एक शब्द भी न बोली। रानी के साथवाली स्त्रियों ने भी राजा को वहाँ देख लिया। और देखते ही अपने घोड़ों को तेज़ दौड़ाकर वापस चली गईं। रानी भी पुतली की भाँति उन्हीं के पीछे चली गई। राजा भी अपने को छिपाता उसी ओर चल पड़ा। बहुत दूर चलने के बाद उसे एक सुरंग का द्वार दिखाई पड़ा और वह साहस करके उसके भीतर चला गया। आगे एक सुन्दर हराभरा मैदान दिखाई पड़ा। उसके मध्य में स्वच्छ जल की एक झील थी, जिसके बीचोंबीच एक विशाल भवन था। जिसमें सैकड़ों दीपक जल रहे थे। राजा की दाईं आँख फड़कने लगी। दरबान ने एक अपरिचित मनुष्य को देखकर राजा से पूछा—"तुम कौन हो? यहाँ क्यों आये हो"? राजा ने उत्तर दिया, "भाई, अपनी रानी के पास मुझे ले चलो? मैं गाना सुनाकर बड़े बड़े लोगों का दिल बहलाता हूँ और इसी से मेरी जीविका चलती है। दरबान ने डाँट कर कहा, कि यदि तुझे अपनी जान प्यारी है तो एकदम सिर पर पैर रखकर यहाँ से भाग

जा। महल में अनजान पुरुष के जाने की आज्ञा नहीं है। राजा ने कहा कि रानी को केवल एक राग सुनाने की इच्छा से इतनी दूर से आया हूँ। इतना कहकर राजा ने अपनी मुरली बजाना आरम्भ किया। मुरली की ध्वनि सुनकर दरवान मुग्ध हो उसकी ओर देखता रहा। राजा बहुत देर तक मुरली बजाता रहा।

महल के और भी दास दासियाँ आकर मुरली की तान सुनने लगीं। राजा की मधुर मुरली की तानों ने सबके मन को मोह लिया। स्वयं परियों की रानी ने झरोखे से झाँक कर भिखारी के भेष में राजा को देखा। उसने तुरन्त एक दासी को उस अपरिचित पुरुष को बुला लाने की आज्ञा दी। थोड़ी ही देर में एक छोटी डोंगी पानी में तैरती हुई दिखलाई पड़ी। दासी बहुत ही आदर-पूर्वक राजा को महल में लिवा ले गई। महल में जाकर राजा ने देखा कि एक रत्नजड़ित सिंहासन पर परियों की रानी बैठी है। बहुत-सी दासियाँ उसकी सेवा कर रही हैं। राजा ने अपनी प्रिय रानी को भी वहीं एक ओर चन्दन की चौकी पर बैठे हुए देखा। परियों की रानी के समीप पहुँच कर राजा ने फिर मुरली बजाना आरम्भ किया। ऐसी मधुर वंशी राजा ने कदाचित् अपने जीवन में पहले कभी नहीं बजाई थी। परियों की रानी उसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और कहा, "गवैये, मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ। जो इनाम चाहो माँगो, मैं अवश्य दूँगी"। राजा ने अपनी प्रिय रानी की ओर संकेत करके कहा कि मैं केवल इस सुन्दरी को अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। परियों की रानी ने कहा—"नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। एक साधारण भिखमंगा और ऐसी अपूर्व सुन्दरी को पाने का साहस करे"। यह मेरी सबसे प्रिय सखी है। तुम जानते नहीं यह महाराजा विक्रमादित्य की पटरानी है। इसकी अपूर्व सुन्दरता पर ही रीझ कर मैंने इसे अपने महल में चुरा भगाया है। इसको मैं कदापि अपने से अलग न करूँगी।" अन्त में राजा को अपना परिचय और वहाँ आने का कारण बताना पड़ा। परियों की रानी अपनी भूल पर बहुत लज्जित हुई। उसने राजा के चरणों पर गिरकर अपने अपराधों की क्षमा माँगी।

दूसरे दिन राजा रानी सहित अपनी राजधानी को लौट आये। परियों की रानी ने एक नौलखा हार रानी को भेंटस्वरूप दिया। नगरवासी अपने राजा-रानी को इतने दिन बाद पाकर आनन्द से प्रफुल्लित हो गये।

सम्पादक का पृष्ठ
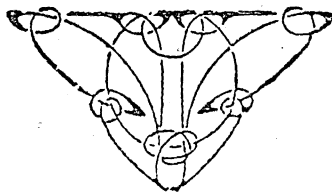
धन्यवाद और बधाई

इस अङ्क से बाल-सखा का २१ वाँ वर्ष समाप्त होता है। इस अवसर पर हम अपने प्यारे ग्राहकों, पाठकों और लेखक-लेखिकाओं को इस वर्ष की सुख-समाप्ति पर बधाई देते हैं। बाल-सखा का यह वर्ष पिछले सब वर्षों से बहुत अच्छा रहा। इस वर्ष बिना किसी प्रयत्न के इसके ग्राहकों की संख्या बहुत बढ़ी और हमें अच्छी से अच्छी चीज़ें छापने को मिलीं। सबसे बड़ी बात यह हुई कि इस वर्ष प्रत्येक महीने में बाल-सखा का आवरण-पृष्ठ बदला गया। आवरण-पृष्ठ के लिए इन सुन्दर तिरङ्गे चित्रों को प्राप्त करने में हमें काफ़ी परिश्रम और धन व्यय करना पड़ा पर हमें प्रसन्नता है कि पाठकों ने इन्हें बहुत पसन्द किया। इससे हम सोचते हैं कि हमारा प्रयत्न व्यर्थ नहीं गया।

शुभ सूचना

जनवरी के बाल-सखा के लिए हम बहुत ही सुन्दर तिरंगा आवरण-पृष्ठ बनवा रहे हैं। इसके साथ ही हम यह भी प्रयत्न कर रहे हैं कि उसके भीतर के पृष्ठ भी वैसे ही सुन्दर और आकर्षक हों। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि सदा की भाँति इस बार भी जनवरी में बाल-सखा का विशेषाङ्क निकलेगा।

विशेषाङ्क में क्या होगा ?

इस विशेषाङ्क में सदा की भाँति बालक-बालिकाओं के लिए सुन्दर सुन्दर कहानियाँ, कविताएँ और चित्र तो रहेंगे ही पर इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होगी कि इसमें बालिकाओं के लिए ख़ास तौर से अच्छी अच्छी रचनाएँ छापी जायँगी। बाल-सखा पढ़नेवाली बालिकाओं की यह शिकायत बराबर चली आती है कि बाल-सखा का ऐसा कोई विशेषाङ्क नहीं निकला जो ख़ास तौर से लड़कियों के काम का हो। इस विशेषाङ्क में हम बाल-सखा की प्यारी पाठिकाओं की यह शिकायत दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

पाठक क्या लिखें ?

बाल-सखा के विशेषाङ्कों को सुन्दर बनाने में प्रतिवर्ष उसके पाठकों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। इस वर्ष भी वे बाल-सखा की ज़रूर सहायता करना चाहेंगे। इस अङ्क में वे हमारी सहायता इस प्रकार कर सकते हैं—लड़के लिखें—"मैं और मेरी बहन" और लड़कियाँ लिखें—"मैं और मेरा भाई।" यह लेख का शीर्षक होगा। लेख में पाठकों को बताना चाहिए उनके कितने भाई बहन हैं वे आपस में एक दूसरे की क्या सहायता करते हैं। एक दूसरे का किस तरह मन बहलाते हैं। एक दूसरे से अगर कभी झगड़े हों तो उसका भी ज़िक्र करें। माँ बाप भाई को ज़्यादा प्यार करते हैं या बहन को या दोनों को बराबर यह भी लिखें। इसके अलावा वे जो भी मुनासिब समझें लिखें और हो सके तो अपना और भाई बहन का फ़ोटो साथ साथ भेजें।

नई पहेलियाँ

इस वर्ष नई पहेलियाँ कम छपीं। पर जनवरी के विशेषाङ्क में हम बहुत-सी सुन्दर सुन्दर पहेलियाँ छापेंगे और बूझनेवालों को पारितोषिक भी देंगे। आगामी वर्ष में प्रतिमास नये बुझौवल छपेंगे।

शाबास श्यामस्वरूप मुंशी

गत मास में हमने श्री श्यामस्वरूप मुंशी का चित्र प्रकाशित किया था और लिखा था कि यदि वे हमें पत्र लिखेंगे तो हम उन्हें एक पुस्तक उपहार-स्वरूप भेजेंगे। श्री श्यामस्वरूप मुंशी ने हमारे पास बाल-सखा पाते ही पत्र लिखा है। इससे उनकी मुस्तैदी साबित होती है। इस अङ्क के साथ उनके पास हम पुरस्कार की पुस्तक भी भेज रहे हैं।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.